“tSu lkfgR; esa vkfFkZd fpUru%
,d fo'ys"k.k”

“ECONOMIC THOUGHTS IN JAIN LITERATURE: AN ANALYSIS”

egkjktk xaxkflag fo'ofo|ky;] chdkusj

को ih,p-Mh- उपाधि हेतु प्रस्तुत

'kks/k izcU/k

¼okf.kT; ladk;½

&% 'kks/kdrkZ %&

f'kYik tSu

&% 'kks/k funs'kd %&

MkW- vks-ih- dqojk

lsokfuo`Ùk mi izkpk;Z

Jh c-t-fl- tSu jkeiqfj;k egkfo|ky;

nkÅ th jksM] chdkusj

& o"kZ 2015 &

Dr. O.P. Kuvera

(M.Com. Ph.D.)
Ex. Vice Principal
B.J.S. Jain Rampuria College
Dauji Road, Bikaner 334001

Res. & Postal Address

Dr. O.P. Kuvera
Near Gaur Sabha Bhawan
Rani Bazar Industrial Area
Bikaner-334001
Mobile:- 9460504800

CERTIFICATE

It is certified that the

1. Thesis Entitled “tSu lkfgR; esa vkfFkZd fpUru% ,d fo'ys"k.k” submitted by Mrs. Shilpa Jain is an original piece of research work carried out by the candidate under my supervision.

2. Literary Presentation is satisfactory and the thesis is in a form suitable for publication.

3. Work evinces the capacity of the candidate for critical examination and independent judgment.

4. Candidate has put in at least 200 day of the attendance every year.

Signature of Supervisor

Place : Bikaner

Date :

y[kdh;

संसार अर्थ के इर्द–गिर्द घूम रहा है। अर्थ को इतना महत्व मिला कि इसकी प्राप्ति के लिए हित–अहित विवेक को भी उपेक्षित किया जाने लगा। यहाँ तक, अर्थ के जो शास्त्र बने या बनाये गये, उनमें भी नीति–अनीति और हिंसा–अहिंसा के विवेक की प्रायः अवहेलना हुई है। फलस्वरूप सुख–शांतिमय सह–अस्तित्वपूर्ण जिस आदर्श अर्थ समाजव्यवस्था की अपेक्षा सबको है, उसकी पूर्ति नहीं हो पा रही है। ढ़ेर सारी सुख–सुविधाओं और अत्याधुनिक उपकरणों के बीच आदमी अशान्त है। इस अशान्ति को मिटाने के लिए वह और अधिक चीजें प्राप्त करना चाहता है। उपभोक्तावादी व्यवस्था उसकी चाहत को और अधिक हवा देती है। परन्तु स्थायी सुख महज भौतिक सम्पदाओं पर आश्रित नहीं है। भीतर और बाहर की संपदाओं के विवेक सम्मत सुमेल पर आदर्श आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के छः अध्यायों में जैन साहित्य में प्रतिपादित आर्थिक चिन्तन का कई दृष्टियों से मूल्यांकन किया गया है। प्रथम अध्याय में जैन आगम साहित्य का परिचय दिया गया है। इस समीक्षा से यह अनुमान लगाना आसान है कि जैन आगम साहित्य का परिमाण विपुल है और विषय सामग्री विविध है।

द्वितीय अध्याय में जैन परम्परा में स्पष्ट या गर्भित रूपों में प्राप्त अर्थ सम्बन्धी तथ्यों पर विचार किया गया है। यह विचार अर्थ के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण विकसित करता है। अर्थोपार्जन के साधनों, मुद्रा और राजस्व के आगमिक उल्लेखों का विवेचन भी इस अध्याय में किया गया है।

तीसरे अध्याय में जैन साहित्य में वर्णित आर्थिक जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यह अध्याय प्राचीन भारत के जैन आगमों में उल्लेखित व्यापार, वाणिज्य और उद्योगों की जानकारी प्रदान करता है। इसके माध्यम से तत्कालीन समाज के आर्थिक जीवन तथा आगमों में अंकित अपरिग्रही, संयमी और साहसी उद्यमियों के प्रेरक चरित्र भी उजागर हुए है, जो आज के भौतिकवादी मानव को अर्थ और आध्यात्म के समन्वय से निष्पन्न जीवन जीने की उत्तम कला सीखाते हैं।

चतुर्थ अध्याय में जैन साहित्य में मूल्यपरक व्यवस्था का उल्लेख है। इसमें अहिंसा के शाकाहार पक्ष और संयम के ब्रह्मचर्य पक्ष का आर्थिक मूल्यांकन किया गया है जो हिंसा, भोग और विलासिता पर खड़ी अर्थव्यवस्था के लिए समाधानकारी है। इन साधनों के आगमिक आधार अत्यन्त मौलिक और वैज्ञानिक हैं। अणुव्रत के नियमों की जो सीख है, वह व्यक्ति को एक नीतिवान व श्रेष्ठ नागरिक बनाती है।

पंचम अध्याय में आगमिक व आधुनिक अर्थशास्त्र पर विचार किया गया है। इस अध्याय में भगवान महावीर के अर्थशास्त्रीय व्यक्तित्व के बाद उनके अपरिग्रह के दर्शन पर चिन्तन किया है। आज के समय में महावीर के विचारों की क्या प्रासंगिकता है, इसका उल्लेख भी किया गया है। तत्पश्चात् विभिन्न आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं की समीक्षा के साथ उनकी आगमिक अर्थव्यवस्था से तुलना की गई है।

षष्ठ्म अध्याय में विश्व बिना सीमाओं के (उदारीकरण व वैश्वीकरण नीति) नई विश्व व्यवस्था तथा आर्थिक अवधारणा के बारे में वर्णन दिया है तथा विश्वशांति में जैन दर्शन की भूमिका के बारे में चर्चा की है व आधुनिक अर्थव्यवस्था की समीक्षा भी की गई है। साथ ही मनुस्मृति व शुक्रनीति में प्रस्तुत आर्थिक विचारों के साथ ही कौटिल्य, महात्मा गांधी, पण्डित दीनदयाल एवं प्रो. जे.के. मेहता के विचारों पर भी प्रकाश डाला है।

सप्तम अध्याय में सभी अध्यायों का सार प्रस्तुत किया गया है। सार रूप में आगमिक अर्थशास्त्र, व्यक्तिगत स्तर पर श्रम और स्वतन्त्रता, कौटुम्बिक स्तर पर स्नेह और सहयोग, सामाजिक स्तर पर निष्ठा और प्रामाणिकता, राष्ट्रीय स्तर पर कर्तव्य और कुशलता तथा वैश्विक स्तर शांति और पर्यावरण संरक्षण को सुनिश्चित करता है।

जैन साहित्य में आर्थिक चिन्तन तथा आगमों के अर्थशास्त्रीय मूल्यांकन पर बहुत कम काम हुआ है। इस संदर्भ में डॉ. जगदीशचन्द्र जैन की पुस्तक 'जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज', आचार्य श्री महाप्रज्ञ की पुस्तक 'महावीर का अर्थशास्त्र', डॉ. कमल जैन की पुस्तक 'प्राचीन साहित्य में आर्थिक जीवन' तथा डॉ. दिनेश चन्द्र जैन की पुस्तक 'इकोनोमिक लाइफ इन एंशेन्ट इण्डिया एज डेपिक्टेड इन जैन कैनोनिकल लिटरेचर' दिशा–निर्देश करती है। इस शोध कार्य का स्वरूप, दृष्टिकोण और उद्देश्य

पूर्व कार्यों से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक आर्थिक प्रणालियों के व्यापक परिपेक्ष्य में आगमिक आर्थिक व्यवस्था, आचार व्यवस्था, सिद्धान्तों और मान्यताओं के व्यवहारिक पक्ष को इसमें सुसंगत ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है।

d'rKrk Kkiu

माँ सरस्वती के आशीर्वाद से ''जैन साहित्य में आर्थिक चिन्तनः एक विश्लेषण'' शीर्षक के इस शोधकार्य के पूर्ण होने पर परम हर्ष की अनुभूति हो रही है। शोधकार्य की पूर्णता किसी एक व्यक्ति के प्रयासों से संभव नहीं है। प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से यह सभी स्वजनों के सहयोग, प्रेरणा एवं मार्गदर्शन का परिणाम है, जिसे शब्दबद्ध कर धन्यवाद का रूप दे पाना मेरे लिए कठिन है, फिर भी अपने सीमित ज्ञान से भावों को साकार रूप देने का प्रयास कर रही हूँ।

शोध प्रबंध प्रस्तुत करते समय मैं सर्वप्रथम चौबीस तीर्थंकरों, भगवान श्री गणेश, माँ सरस्वती, रामभक्त वीर हनुमान तथा सुसवाणी माता के चरणों में प्रणाम करती हूँ। मेरे इस शोधकार्य की पूर्णता पर मैं अपने धर्मगुरू आचार्य श्री तुलसी, महाप्रज्ञ, महाश्रमण, आचार्य वल्लभसूरि व सम्पूर्ण धर्मसंघ को नमन करती हूँ।

जैन विद्या के प्रति मेरे मन में आरम्भ से ही सहज श्रद्धा एवं जिज्ञासा रही है। इसी वजह से जैन विद्या के मनीषियों के प्रति भी सदैव आदर का भाव रहा है। वर्ष 2008 में वाणिज्य संकाय से एम.फिल. करने के बाद जैन साहित्य में गवेषणा के मनोभाव मैंने प्रो. ओम प्रकाश कुवेरा के समक्ष व्यक्त किये। मेरे विचारों को जानकर सर ने तुरन्त मेरे शोध प्रबन्ध का विषय सुझाया। उनके अनुभवपूर्ण और विद्वतापूर्ण सुझावों से मेरे शोध कार्य को नई दिशाएँ मिली। शोध मार्गदर्शन के लिये जब–जब मैं उनसे मिली, उनके अनुभवपूर्ण और विद्वतापूर्ण सुझावों से मेरी सभी समस्याओं का समाधान आसानी से हो गया। गुणवत्ता और मौलिकता उन्हें प्रिय है। मैं सम्मानीय शोध निदेशक डॉ. ओ.पी. कुवेरा, सेवानिवृत्त उप प्राचार्य, बी.जे.एस. रामपुरिया कॉलेज के प्रति हृदय से आभार ज्ञापित करती हूँ। ऐसे दीर्घ अनुभवी विद्वान के निर्देशन में शोध कार्य करने का मुझे हर्ष और गर्व है।

मैं अपनी परम पूज्य दादीजी स्व. श्रीमती उदय देवी बोथरा, माता–पिता (श्रीमती कमला–श्री गोपीकिशन बोथरा), सास–ससुर (श्रीमती सीमा– श्री अशोक सुराणा), मेरे अनुज भाई–बहन (मयंक बोथरा– सोनम बोथरा), जेठ–जेठानी (श्रीमती सुरभि– श्री श्रेयांस सुराणा), मेरी ननंद (श्रद्धा सुराणा) तथा मेरी बेटी श्रेष्ठा सुराणा

को हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ जिनकी स्वीकृति, आशीर्वाद एवं सहयोग से यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ। साथ ही मैं अपने पति श्री श्रेणिक सुराणा का विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके विशेष प्रोत्साहन की वजह से मैं अपना शोधकार्य समय पर सम्पन्न कर पायी।

मैं श्रीमती शुक्लाबाला पुरोहित प्राचार्या बी.जे.एस. रामपुरिया कॉलेज, डॉ. अजय जोशी, डॉ. अशोक शर्मा, डॉ. अनिल कुमार शर्मा, डॉ. नृसिंह बिन्नाणी, डॉ. धनपत जैन, डॉ. चन्द्रशेखर श्रीमाली, डॉ. दिलीप ढ़ींग, प्रो. शालिनी आरी, प्रो. मनोज सेठिया, प्रो. सुधा कोचर, प्रो. नीति सिंह, प्रो. वैशाली सोनी का हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। समय–समय पर जब भी मुझे शोधकार्य में किसी भी तरह की कठिनाई हुई, उसका समाधान करने में सबने सहयोग किया। इन सबके मार्गदर्शन, प्रेरणा व सहयोग के लिए मैं हमेशा इन सबकी ऋणी रहूंगी।

शोध विषय से संबंधित आँकड़ों व सूचनाओं के बिना शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत कर पाना मुश्किल होता है। अतः मैं अगरचन्द नाहटा जैन पुस्तकालय एवं वाचनालय, बीकानेर, अग्रसेन भैंरूदान सेठिया जैन पुस्तकालय, बीकानेर, समता पुस्तकालय, रामपुरिया कॉलेज पुस्तकालय, बीकानेर, अहिंसा समता प्राकृत संस्थान, अम्बागुरू शोध संस्थान (उदयपुर), दादाबाड़ी महरौली पुस्तकालय (दिल्ली) के सभी स्टाफ को धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे हर तरह से सहयोग दिया। इसके अलावा मैं मुनि श्री शांति कुमार व मुनि श्री पीयूष कुमार व हेमन्त सिंगी की विशेष आभारी हूँ जिन्होंने जैन धर्म से सम्बन्धित सभी जिज्ञासाओं का समाधान किया।

मैं अपनी मित्र श्रीमती मनीषा गाँधी, आयुषी कँवर, कविता शर्मा, सुमन शर्मा, कीर्ति बैद, राजेश पुरोहित, दीप्ति अग्रवाल की भी आभारी हूँ जिन्होंने शोध कार्य हेतु मुझे पूर्ण रूप से सहयोग दिया।

समस्त शोध प्रबन्ध को त्रुटि रहित एवं निश्चित समय पर पूर्ण करने के लिए मैं कम्प्यूटर ऑपरेटर श्री रूपेन्द्र शर्मा (ए–वन कम्प्यूटर) की विशेष आभारी हूँ जिन्होंने यह सुन्दर शोध प्रबन्ध तैयार किया।

समय–समय पर उत्साहवर्धन करने वाले समस्त परिवारजनों व मित्रों का भी आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सम्बल से यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ।

अन्त में मैं सभी सहयोगियों को पुनः आभार व्यक्त करते हुए भगवान महावीर के चरणों में इस सूक्ष्मतम प्रयत्न (शोध–प्रबन्ध) को अर्पित करती हूँ।

भवदीय

(शिल्पा जैन)

v.kØef.kdk

Ø-l-	v/;k; dk uke	i"B l-
1	v/;k; iFke & tu lkfgR; % ifjp;	
	ifjPNn iFke & जैन साहित्य एक विश्लेषण	2–28
	ifjPNn f}rh; & जैन साहित्य में अर्थ संबंधी अवधारणाएँ	29–36
	ifjPNn r`rh; & जैन साहित्य में पुरूषार्थ चतुष्टय और अर्थ	37–44
2	v/;k; f}rh; & tu ijEijk e vFkkikTu	
	ifjPNn iFke & अर्थोपार्जन के प्रमुख साधन	45–57
	ifjPNn f}rh; & मुद्रा व विनिमय की स्थिति	58–67
	ifjPNn r`rh; & राजस्व एवं कर प्रणालियाँ	68–77
3	v/;k; r`rh; & 0;kikj] okf.kT;] m|kx % tu lkfgR; e	
	ifjPNn iFke & प्राथमिक उद्योग	78–96
	ifjPNn f}rh; & द्वितीयक उद्योग : व्यापार व वाणिज्य	97–128
	ifjPNn r`rh;& आयात–निर्यात	129–137
4	v/;k; prFk & tu lkfgR; e eY;ijd vFk0;oLFkk vo/kkj.kk	
	ifjPNn iFke& अहिंसा का अर्थशास्त्र	138–151
	ifjPNn f}rh; & अणुव्रत का अर्थशास्त्र	152–182
	ifjPNn r`rh; & संयम का अर्थशास्त्र	183–189
5	v/;k; ipe & vkxfed vk/kfud vFk'kkL=h; fopkjk e lg&lEcU/k	
	ifjPNn iFke& भगवान महावीर का अर्थशास्त्रीय महत्व	190–200
	ifjPNn f}rh;& अपरिग्रह का अर्थशास्त्र	201–208
	ifjPNn r`rh;& जैन ग्रन्थ व समकालीन आर्थिक चिन्तन	209–232
6	v/;k; "k"Be& tu lkfgR; e vkfFkd fopkj rFkk o'ohdj.k dh vko';drk	
	ifjPNn iFke& प्रमुख आर्थिक विचार	233–243
	ifjPNn f}rh;& आधुनिक अर्थव्यवस्था	244–259
	ifjPNn r`rh; & विश्व शांति और आर्थिक विकास में जैन दर्शन की भूमिका	260–279
7	v/;k; lIre % lexz eY;kdu	280–306
	lUnHk xUFk lph	

iFke v/;k;

tSu lkfgR; % ifjp;

ifjPNsn iFke

tSu lkfgR; % ,d fo'ys"k.k

- जैन आगम परिचय
- व्याख्या साहित्य
- शौरसेनी आगम साहित्य

ifjPNsn f}rh;

tSu lkfgR; esa vFkZ lEcU/kh vo/kkj.kk,¡

- कर्मभूमि और अर्थ
- अर्थशास्त्र के आदि संस्थापक ऋषभदेव
- आगमों में अर्थशास्त्र के संदर्भ

ifjPNsn r`rh;

tSu lkfgR; esa iq:"kkFkZ prq"V; vkSj vFkZ

- चार पुरूषार्थ
- चारों पुरूषार्थों के अन्तर्सम्बन्ध
- अर्थोपार्जन की तीन दृष्टियाँ

v/;k; iFke

tSu lkfgR; % ,d ifjp;

जैन साहित्य विश्व–साहित्य की अनमोल निधि है। विभिन्न कालखण्डों में प्राचीन विश्व और प्राचीन भारत का दिग्दर्शन आगम साहित्य के माध्यम से सम्भव है। प्राकृत संसार की प्राचीनतम भाषा और सब भाषाओं की दादी माँ मानी जाती है। इसी भाषा में जैन आगम साहित्य निबद्ध है। आगमों में वर्णित घटनाएँ और उल्लेखित तथ्य ऐतिहासिक भी हैं और प्रागैतिहासिक भी। आगमों में वर्णित विषयो और तथ्यों को देखते हुए वर्तमान इतिहास की अवधि अत्यन्त छोटी है। आगमों में इतिहास के पार भी अनेक महत्वपूर्ण स्थापनाएँ हैं, जो चाहे ऐतिहासिक हो या न हों, सत्य और तथ्य से सीधी जुड़ी हुई हैं। वस्तुतः सिद्धान्त और जीवन–जगत के मूलभूत/सार्वकालिक नियमों का ऐतिहासिकता से कोई सह–सम्बन्ध नहीं होता है।

भारतीय साहित्य के इतिहास में जैनों द्वारा लिखे विविध साहित्य की उपेक्षा होती आई है। उदाहरण के तौर पर संस्कृत साहित्य के इतिहास में जब पुराणों या महाकाव्यों पर लिखना हो, तब इतिहासकार प्रायः हिन्दु पुराणों और हिन्दु महाकाव्यों से ही सन्तोष कर लेते हैं। इतिहासकारों को इतनी फुर्सत कहाँ कि वह एक–एक ग्रन्थ पढ़े और उसका मूल्यांकन करे।[1] यह तथ्य है कि जैन इतिहास को इतिहासकारों ने बहुत उपेक्षित किया, मनमाने ढ़ंग से प्रस्तुत किया और अनेकानेक महत्वपूर्ण साक्ष्यों को मिटा तक दिया। यदि जैन राजाओं गणतंत्र प्रमुखों, सेनापतियों, सार्थवाहों, गृहस्थों आदि का विवरण इतिहासकारों ने गायब न किया होता तो सिद्ध हो जाता कि लिच्छवी, वजवी आदि गणतन्त्र भगवान महावीर के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार चलते थे तथा इस सम्बन्ध में और अनेक अद्‌भुत बातें हमारे समक्ष होतीं।[2]

इनके अलावा भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् हजार वर्ष की अवधि में दीर्घकालीन तीन दुर्भिक्ष आये और गये। दुर्भिक्ष के विकट समय में निर्ग्रन्थ श्रमण आगम–साहित्य की वाचना, पृच्छना, परिवर्तन और अनुप्रेक्षा नहीं कर सकें।[3] वीर निर्वाण के 160 वर्ष पश्चात् (इस्वी सन् के पूर्व लगभग 367 में) आचार्य भद्रबाहु ने पाटलीपुत्र में

पहली आगम वाचना करवाई। बारह में से ग्यारह अंगों का संकलन इस वाचना में किया गया।[4] ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य सम्राट खारवेल ने उड़ीसा के कुमारी पर्वत पर प्रवचनोद्धार के लिए जैन श्रमणों का एक संघ बुलाया और मौर्य काल में विस्मृत हुए अंगों का पुनः उद्धार करवाया। कुछ विद्धानों के अनुसार वीर निर्वाण के 827 वर्ष पश्चात् मथुरा में आचार्य स्कन्दिल के नेतृत्व में तथा वल्लभी में आचार्य नागार्जुन के नेतृत्व में जो वाचनाएँ हुई उनमें आगम लिपिबद्ध हो गये थे।[5] तत्पश्चात् वीर निर्वाण के 980 वर्ष बाद आचार्य देवर्द्धि क्षमाश्रमण ने आगमों को व्यवस्थित रूप से लिपिबद्ध करावाया। आगमों के लिपिबद्ध होने के पश्चात् 1400 वर्षों की अवधि में पड़े दुष्कालों से भी अनेक आगमों का नुकसान हुआ। आचारांग का सातवाँ महापरिज्ञा अध्ययन तथा दसवाँ अंग प्रश्नव्याकरण पूर्ण रूप से टीकाकारों के युग में भी उपलब्ध नहीं थे। नन्दी सूत्र में जिन कालिक और उत्कालिक सूत्रों की एक लम्बी सूची दी गई है, उनमें से अनेक आगम वर्तमान में अनुपलब्ध हैं।[6]

यूँ तो जो श्रुत–सम्पदा बची या बचायी जा सकी है, वह थोड़ी है। परन्तु जितना भी उपलब्ध आगम और आगमों पर आधारित प्रकीर्णक साहित्य है, उसमें भी विविध विषयों पर विपुल शोध की संभावनाएँ हैं।

ifjPNsn iFke

tSu lkfgR; % ,d fo'ys"k.k

जैन शास्त्रों को आगम कहा जाता है। प्राचीन साहित्य में 'श्रुत' शब्द अधिक प्रयुक्त होता था। सूत्र, सिद्धान्त, ग्रन्थ, वचन, प्रवचन, आप्त–वचन, जिनवचन, आज्ञा, उपदेश, प्रज्ञापना, एतिह्म आदि शब्द भी आगम के अर्थ के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु ये शब्द इनके स्वतन्त्र अर्थों में भी प्रयुक्त हुए हैं। सारतः आगम साहित्य दीर्घ साधनाओं के पश्चात् निर्मल हुई चेतना की अतल गहराइयों की निष्पत्ति है। वह सबके लिए सदैव कल्याणकारी है।

tSu vkxe ifjp;

मुख्य तौर पर जैन आगमों को दो भागों में बाँटा गया– अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य। सर्वप्रथम यह वर्गीकरण तत्वार्थ सूत्र, नन्दी सूत्र और पाक्षिक सूत्र में किया गया है। अंग प्रविष्ट आगम तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट और गणधरों द्वारा रचित होते हैं जबकि अंग बाह्य आगमों की रचना स्थविर करते हैं।[7] आवश्यक मलयगिरी वृत्ति पत्र 48 के अनुसार गणधर तीर्थकर के समक्ष जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि भगवन्! तत्व क्या है? (भगवं किं तत्तं?) उत्तर में तीर्थंकर गणधरों को ''उप्पनेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा'' (उत्पाद, व्यय और धौव्य रूप) यह त्रिपदी प्रदान करते हैं। त्रिपदी के फलस्वरूप रचित आगम अंग–प्रविष्ट और शेष सभी अंग–बाह्य होते हैं।[8]

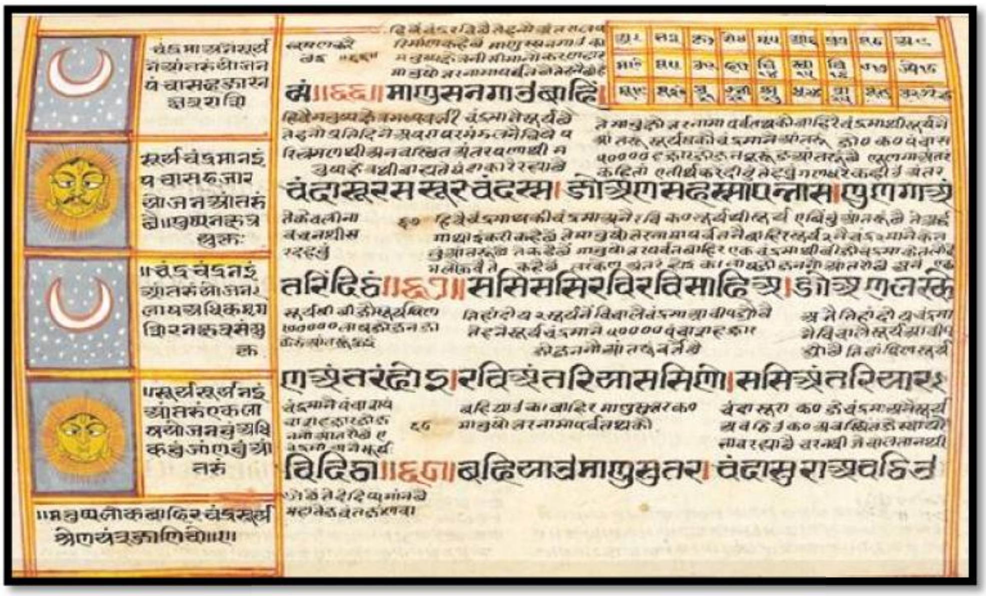

0;k[;k iz.kfIr

जैन शास्त्रों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ अंग हैं, इन्हें वेद भी कहा गया है।[9] अंग–प्रविष्ट आगमों की संख्या बारह है, इसलिए द्वादशांग कहा जाता है। द्वादशांग का दूसरा नाम गणिपिटक है।[10] ये श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओं में समान रूप से स्वीकृत हैं। इनके नाम और क्रम में भी दोनों परम्पराएँ एकमत हैं।

}kn'kkxh

बारह अंग आगमों को द्वादशांगी कहा जाता है। उनका क्रमिक संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

1. **vkpkjkx** : आचार को अंगों का सार कहा गया है।[11] द्वादशांगी में इसका प्रथम स्थान है।[12] दो श्रुतस्कन्धों में विभाजित इस आगम में आचार ओर दर्शन का निरूपण हुआ है। इसमें भगवान महावीर के जीवन प्रसंगों का मौलिक और मार्मिक उल्लेख है। प्रथम श्रुतस्कन्ध भाषा, छन्द योजना आदि की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। आचारांग में 25 अध्ययन, 85 उद्देश्क, 5 चूलिका एवं 18000 पद हैं। 2500 श्लोक परिणाम उपलब्ध पाठ हैं, जिनमें 401 गद्य सूत्र एवं 154 पद्य सूत्र हैं।[13] महापरिज्ञा नामक एक अध्ययन लुप्त होने से इसके 24 अध्ययन 78 उद्देशक ही शेष बचे हैं।
2. **l=d`rkx** : द्वादशांगी का यह द्वितीय अंग है। तत्व चर्चा के साथ–साथ दार्शनिक और ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी विषय–वस्तु का विशेष महत्व है। इसमें 363 मतों की चर्चा है। जिनमें 180 क्रियावादी, 84 अक्रियावादी, 67 अज्ञानवादी और 32 विनयवादी हैं। यह सूत्र भी दो श्रुतस्कन्धों में विभाजित है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में 15 तथा द्वितीय में 7 अध्ययन हैं, जिनमें कुल 36 हजार पद हैं। समवायांग, नन्दी और अनुयोगद्वार में इसका नाम 'सूयगडो' है। इसकी 2100 श्लोक परिणाम उपलब्ध सामग्री में 85 गद्य–सूत्र और 719 पद्य–सूत्र हैं।[14]
3. **LFkkukx** : जैनागमों में बताए गए तीन प्रकार के स्थविरों में से श्रुत–स्थविर को ठाणांग और समवायांग का ज्ञाता बताया गया है। इससे इस आगम के महत्व का पता चलता है। कोश शैली में ग्रथित इस आगम में एक श्रुत–स्कन्ध, 10 स्थान, 21 उद्देशक और 72 हजार पद बताए जाते हैं। उपलब्ध पाठ 3770 श्लोक परिणाम है। 783 गद्य और 169 पद्य–सूत्र है।[15] इस आगम में नयों की दृष्टि से पदार्थ मीमांसा की गई है।
4. **Lkeok;kx** : इस सूत्र में एक से लगाकर कोड़ाकोड़ी संख्या तक की वस्तुओं का संग्रह है।[16] गोम्मटसार के अनुसार इसमें जीवादि पदार्थों का

सादृश्य सामान्य से निर्णय लिया गया है। अतः इसका नाम समवाय है। नन्दी–सूत्र में वर्णित और उपलब्ध समवायांग में बहुत परिवर्तन है। विषय–वस्तु की दृष्टि से समवायांग में वस्तु विज्ञान, जैन सिद्धान्त और जैन इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी है। कुछ विद्वानों के मतानुसार ठाणांग और समवायांग की रचना नौ आगमों के बाद (दसवें और ग्यारहवें क्रम पर) हुई थी, परन्तु स्मृति, धारणा और विषय अन्वेषण की दृष्टि से इन्हें अंगों में (तीसरे व चौथे क्रम पर) स्थान दिया गया।[17]

5. 0;k[;k&iKfIr : भगवती सूत्र के नाम से विख्यात इस विशालकाय आगम में 36 हजार प्रश्न और उनके उत्तर हैं। प्रश्नकर्ता गणधर इन्द्रभूति गौतम हैं और उत्तर प्रदाता तीर्थंकर महावीर हैं। आरंभ में मंगालाचरण के रूप में पहली बार पंच परमेष्ठी को नमन रूप नमस्कार सूत्र का उल्लेख है। साथ ही ''णमों बम्भीए लिविए'' तथा ''णमो सुयस्स'' पदों से ब्राह्मी लिपि और श्रुत को भी नमस्कार किया गया हैं 15वें, 17वें, 23 वें और 26वें शतक की शुरूआत में ''णमो सुयदेवायाए भगवईए'' पद के द्वारा मंगलाचरण को गिनते हुए इस आगम में कुल छः स्थानों पर मंगलाचरण है। जबकि अन्य आगमों मे ऐसा नहीं है। विज्ञान, वाणिज्य, इतिहास, भूगोल, राजनीति, धर्म, सम्प्रदाय, रीति–रिवाज आदि विश्व के अनेकानेक विषयों का इसमें स्पष्ट या गर्भित रूप से वर्णत है। आज धार्मिक सहिष्णुता की बात बहुत की जाती है। सामाजिक सौहार्द्र के लिए उसे आवश्यक माना जाता है। ज्ञान–विज्ञान का इस महत्वपूर्ण कोष में धार्मिक उदारता के अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। वहाँ किसी विचारधारा और धार्मिक जीवन पद्धति को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता था।[18] इसमें एक श्रुतस्कन्ध, 138 शतक, 1627 उद्देशक, 288000 पद, 5293 गद्य सूत्र और 72 पद्य सूत्र हैं।[19]

6. Kkrk/keZdFkkx : इस कथा प्रधान आगम में दो श्रुत–स्कन्ध हैं। प्रथम ज्ञान श्रुतस्कन्ध में 19 और दूसरे धर्मकथा श्रुतस्कन्ध में 10 वर्ग हैं।[20] इसका उपलब्ध पाठ 5500 श्लोक प्रमाण है, जिसमें 159 गद्य–सूत्र और 62 पद्य सूत्र हैं। इसके पाँचवे अध्ययन में थावच्चा सार्थवाही से पता चलता है कि महिलाएँ भी वाणिज्य में कुशल होती थीं। सातवें अध्ययन के रोहिणी

कथानक से भी यह बात स्पष्ट होती है। बाहरवें अध्ययन उदकज्ञात में गन्दे पानी को साफ करने की पद्धति बताई गई है। यह पद्धति वर्तमान कालीन फिल्टर पद्धति से मिलती–जुलती हैं।[21] भगवान पार्श्वकालीन समाज–व्यवस्था का चित्रण भी मिलता है। इसमें जन्तुकथाओं का सूत्रपात होता है, जो आगे चलकर जन्तुकथा साहित्य का प्रमुख अंग बनी। सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि दृष्टियों से भी यह अंग महत्वपूर्ण है।

7. mikldn'kkx : द्वादशांगी के इस सातवें अंग में भगवान महावीर युग के दस प्रसिद्ध श्रावकों का वर्णन है। इन दस उपासको ंके माध्यम से तत्कालीन धाार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का जीवन्त चित्रण हमें प्राप्त होता है। धर्मकथानुयोग प्रधान इस अंग में एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन और दस उद्देशक हैं। 11 लाख 52 हजार पदों वाले इस आगम में उपलब्ध पाठ 812 श्लोक परिणाम हैं। जिसमें 272 गद्य सूत्र हैं।[22] व्रत, नियम और संयम पूर्वक जीवन जीने के लिए यह ग्रन्थ आदर्श आचार–संहिता प्रस्तुत करता है। इसमें आर्थिक नीतिशास्त्र का सुन्दर निरूपण है।

8. vUrd`rn'kk : यह अंग तप और आत्म साधना के वर्णन से ओत–प्रोत है। इसमें 1 श्रुतस्कन्ध, 8 वर्ग, 90 अध्ययन, 8 उद्देशन काल, 8 समुदेशन काल और परिमित वाचनाएँ हैं।[23] वर्तमान में यह 900 श्लोक परिमाण है। 22वें तीर्थकर भगवान अरिष्टनेमी और 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर के समय के 90 तपस्वी साधकों का इसमें वर्णन है। वासुदेव श्रीकृष्ण के जीवन–प्रसंगों के उल्लेख इस आगम में प्राप्त होते हैं। वर्तमान में यह आगम जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा में पर्युषण काल में पढ़ा सुना जाता है।

9. vUkÙkjkSikfrd n'kk : इसमें ऐसे साधकों का वर्णन हैं, जिन्होने कालधर्म प्राप्ति के बाद अनुत्तर विमानों में जन्म लिया तथा पुनः मनुष्य जन्म लेकर आत्म कल्याण करेंगे। वर्तमान में उपलब्ध यह आगम स्थानांग और समवायांग की वाचना से अलग है।[24] यह आगम तीन वर्गों में विभक्त हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय वर्ग में क्रमशः 10, 13 और 10 अध्ययन हैं। कुल 33 अध्ययनों में 33 महान साधकों का वर्णन हैं। 33 में से 23 राजकुमार

राजा श्रेणिक के पुत्र हैं। इसमें भगवान महावीर कालीन सामाजिक –सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी उल्लेख हुआ है।

10. i'u0;kdj.k : नन्दीचूर्णि[25] एवं समवायांगवृत्ति[26] के अनुसार इस सूत्र में 9216000 पद थे। धवला में यह संख्या 9316000 बताई गई है।[27] परन्तु वर्तमान में उपलब्ध श्लोक संख्या लगभग 1256 है। इसके अलावा वर्तमान में उपलब्ध अध्ययन स्थानांग में बताए गए अध्ययनों से बिल्कुल अलग हैं। यह दो श्रुत–स्कन्धों और दस अध्ययनों में वर्गीकृत है।

11. foikd l= : इस ग्यारहवें अंग में कथाओं और उदाहरणों द्वारा अच्छे कर्मों का अच्छा फल और बुरे कर्मों का बुरा फल बताया गया है। प्रथम श्रुतस्कन्ध दुखविपाक और द्वितीय श्रुतस्कन्ध सुखविपाक है। कुल 20 अध्ययन और 20 उद्देश्यक हैं। 1216 अनुष्टुप श्लोक प्रमाण इसका उपलब्ध पाठ है।[28] इसके पात्र ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक और पौराणिक हैं। यह ग्रन्थ हिंसा, चोरी, मांसाहार, मदिरापान, कुव्यसन और अनाचार के दुष्परिणाम तथा संयम, दान आदि के सुपरिणाम बतलाता है।

12. nf"Vokn : भगवान महावीर के निर्वाण के 170 वर्ष पश्चात् श्रुतकेवली भद्रबाहु हुए। उनके देवलोकगमन के बाद दृष्टिवाद का शनैःशनैः लोप होने लगा और भगवान महावीर के हजारवें निर्वाण वर्ष तक वह पूर्णतः (शब्द रूप से पूर्णत और अर्थ रूप से अधिकांशतः) लुप्त हो गया।[29] दृष्टिवाद में विपुल ज्ञानराशि थी। चौदह पूर्वों में वर्गीकृत इस आगम के एक–एक पूर्व में लाखों करोड़ों श्लोक–परिमाण की सामग्री बताई जाती है। आचार्य शीलांक ने सूत्रकृतांग–वृत्ति में पूर्व को अनन्त अर्थ वाला बताया। दिगम्बर परम्परा की मान्यतानुसार सम्पूर्ण द्वादशांगी का विच्छेद हो गया, केवल दृष्टिवाद का कुछ शेष रहा, जो षट्खण्डागम के रूप में आज भी विद्यमान है।[30]

vxcká vkxe

अंगबाह्य श्रुत स्थविरकृत और बिना प्रश्न किये तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित माना जाते हैं। अंगबाह्य आगमों के विभिन्न मान्यताओं और संदर्भों के अनुसार विभिन्न भेद

मिलते हैं। यहाँ उपांग, मूल और छेद के वर्गीकरण के अनुसार परिचय दिया जा रहा है।

ckjg mikx

1. **vkiikfrd** : अंगों में जो स्थान आचारांग का है वही स्थान उपांगों में औपपातिक का है। यह आगम कथानुयोग प्रधान है। इसमें 1 अध्ययन, 1 उद्देशक, 43 गद्य सूत्र, 32 पद्य सूत्र तथा कुल 1167 शलोक प्रमाण उपलब्ध पाठ हैं।[31] भाषा, स्थापत्य, संस्कृति और समाज की दृष्टि से भी इस आगम का महत्व है।[32]
2. **jktil'uh;** : नन्दी सूत्र में द्रव्यानुयोग प्रधान इस उपांग का नाम 'रायपसेणिय' मिलता है। इसमें 1 अध्ययन, 1 उद्देशक, 65 गद्य सूत्र तथा कुल 2100 श्लोक प्रमाण उपलब्ध पाठ हैं।[33] भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमण केशीकुमार और राजा प्रदेशी का महत्वपूर्ण संवाद, स्थापन्य, संगीत, कला, नाटक, दण्ड नीति आदि अनेक विषय इस आगम में समाविष्ट हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार इस ग्रन्थ का नायक कौशल का इतिहास प्रसिद्ध राजा प्रसेनजित् रहा, जिसे बाद में चलकर प्रदेशी कर दिया गया।[34]
3. **thokfHkxe** : द्रवानुयोग प्रधान इस उपांग में 1 अध्ययन, 18 उद्देशक, 272 गद्य सूत्र, 81 पद्य गाथाएँ तथा कुल 4750 श्लोक प्रमाण उपलब्ध पाठ है।[35] जीवाजीव के वर्णन के अतिरिक्त इसमें द्वीप, सागर, रत्न, शस्त्रास्त्र, धातु, आभूषण, भवन, वस्त्र, ग्राम, नगर, राजा, त्यौहार, उत्सव, नट, यान, उद्यान, प्रसाधन आदि का वर्णन भी मिलता है।[36]
4. **iKkiuk** : इसके रचियता श्यामाचार्य माने जाते हैं। जो सुधर्मा स्वामी की 23वीं पीढ़ी में हुए और भगवान महावीर निर्वाण के 376 वर्ष बाद मौजूद थे।[37] इसमें प्रश्नोत्तर शैली में तत्व निरूपण के साथ–साथ धर्म, दर्शन, इतिहास और भूगोल के तथ्य भी उल्लेखित है। कर्मार्य और शिल्पार्य की चर्चा इस आगम में है। इसमें 1 अध्ययन, 36 पद, 44 उद्देशक, 614 गद्य सूत्र, 195 पद सूत्र तथा कुल 7787 अनुष्टुप श्लोक प्रमाण उपलब्ध पाठ हैं।[38]

5. tEc}hi iKfIr : यह आगम गणितानुयोग प्रधान है। इसमें प्राचीन भूगोल का वर्णन है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत, जिनके नाम से हमारे देश का नाम भारत हुआ, का वर्णन भी इस आगम में मिलता है। इसमें 1 अध्ययन, 7 वक्षस्कार, 178 गद्य सूत्र, 52 पद्य सूत्र तथा कुल 4146 अनुष्टुप श्लोक प्रमाण उपलब्ध पाठ हैं।[39]

6–7. pUniKfIr o l;iKfIr : दोनों उपांग गणितानुयोगमय है। प्रत्येक में 1 अध्ययन, 20 प्राभृत, 31 प्राभृत–प्रभृत तथा 2200 श्लोक परिमाण उपलब्ध पाठ हैं, जिनमें 108 गद्य–सूत्र और 103 पद्य गाथाएँ हैं। दोनों के अध्ययन, प्राभृत, पाठ, सूत्र और गाथा परिमाण बराबर हैं।[40] आचार्य भद्रबाहु द्वारा सूर्यप्रज्ञप्ति पर लिखी निर्युक्ति वर्तमान में अनुपलब्ध है।[41] प्राचीन गणित और ज्योतिर्विज्ञान की दृष्टि से ये ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं। विद्वानों की दृष्टि में इन ग्रन्थों का वैज्ञानिक और ऐतिहासिक महत्व भी है।

8.–12. fuj;kofy;k] dfli;k] dlioMfl;k] ifIQ;k] iIQpfy;k vkj of.gnlk : इन पाँचों उपागों में 1 श्रुतस्कन्ध, 52 अध्ययन और पाँच वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग एक–एक उपांग का प्रतिनिधित्व करता है। उपलब्ध मूल पाठ 1100 श्लोक प्रमाण है।[42] ये आगम कथानुयोग प्रधान है। बाईसवें, तेवीसवें और चौबीसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमी, पार्श्वनाथ और महावीर के समय की विभिन्न घटनाओं का रोचक वर्णन है। जिससे तत्कालीन लोक जीवन, राज और समाज व्यवस्था का पता चलता है।[43] प्रो. विण्टरनित्ज के अनुसार ये पाँचों उपांग निरयावलियका सूत्र के नाम से ही कहे जाते थे, लेकिन आगे चलकर उपांगों की संख्या का अंगों की संख्या के साथ साम्य करने के लिए इन्हें अलग–अलग गिना जाने लगा।[44]

ey&l=] Nn&l=] idh.kd vkj 0;k[;k lkfgR;

ey l=

आगमों के वर्गीकरण के क्रम में अलग–अलग विद्वानों ने मूल सूत्रों के अन्तर्गत अलग–अलग आगमों का रखा है। विक्रम संवत् 1334 में लिखित प्रभावक चरित्र के श्लोक क्रमांक 241 में सर्वप्रथम अंग, उपांग, मूल और छेद का वर्णन मिलता है। उसके

बाद उपाध्याय समय सुन्दर ने समाचारी शतक (पत्र 76) में इस विभाग का उल्लेख किया है। इस प्रकार 13वीं सदी के उत्तरार्द्ध में मूल सूत्र विभाग बन गया था। जिन आगमों में मुख्य रूप से श्रमणाचार सम्बन्धी मूल गुणो (5 महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि) का निरूपण तथा जो श्रमण चर्या में मूल रूप से सहायक हों उनहें मूल सूत्र कहा जाता है।[45] डॉ. शुब्रिंग ने उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आवश्यक, पिण्डनिर्युक्ति व ओघ–निर्युक्ति को मूल सूत्र माना है।[46] वर्तमान में निम्न आगम ग्रन्थों को मूल सूत्र में परिगणित किया जाता है।[47]

1. mÙkjk/;;u : यह सूत्र भगवान महावीर की अन्तिम देशना का संकलन माना जाता है। इसे जैन धर्म की गीता भी कहा जाता है। चारों अनुयोगों का इसमें समावेश हो जाता है। इसमें छत्तीस अध्ययन, 1656 पद्य–सूत्र, 89 गद्य सूत्र और कुल 2100 श्लोक प्रमाण उपलब्ध मूल पाठ हैं। भाषा और विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ प्राचीन है। इस आगम के अनेक सुभाषित और संवाद बौद्ध ग्रन्थों में भी मिलते हैं। डॉ. विण्टरनित्स ने इसे श्रमण–काव्य कहते हुए इसकी तुलना धम्मपद, महाभारत और सुत्तनिपात से की है।[48] शिक्षाशास्त्र, आचारशास्त्र, नीतिशास्त्र, मानवीय एकता, सामाजिक समता, कर्मकाण्डों की व्यर्थता आदि अनेक उपयोगी विषयों को विभिन्न दृष्टियों और दृष्टान्तों द्वारा इसमें समझाया गया है।
2. n'koSdkfyd : मूल आगमों में दशवैकालिका का विशिष्ट महत्व है। आचार्य शय्यम्भव रचित यह आगम निर्यूढ़ माना जाता है, स्वतन्त्र नहीं। इसका समावेश चरणकरणानुयोग में किया जाता है। इसमें 10 अध्ययन, 2 चलिकाएँ, 14 उद्देशक तथा 700 श्लोक प्रमाण उपलब्ध मूल पाठ हैं; जिसमें 514 पद्य–सूत्र और 31 गद्य सूत्र हैं।[49]
3. uUnh : यह ग्रन्थ आगम साहित्य के अध्ययन में परिशिष्ट जैसा हैं इसलिए इसे चूलिका–सूत्र भी कहा जाता है। इसमें पाँच ज्ञान का विस्तृत विवेचन है। सम्भवतः इसीलिए निर्युक्तिकार ने 'नन्दी' शब्द को ज्ञान का पर्यायवाची माना है। इसमें 1 अध्ययन व 700 श्लोक परिमाण मूल पाठ हैं; जिसमें 57 गद्य सूत्र, और 97 प़द्य–गाथाएँ हैं। द्रव्यानुयोगमय इस ग्रन्थ के उचनाकार आचार्य देववाचक

माने जाते हैं। डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री, मुनि पुण्यविजय, पं. दलसुख मालवणिया आदि के मतानुसार आदि के मतानुसार देववाचक देवर्द्धिक्षमाश्रमण से भिन्न हैं।[50]

4. vu;kx}kj : अनुयोग का अर्थ है– व्याख्या या विवरण और द्वार का अर्थ है– प्रश्न। इस प्रकार प्रश्न या प्रश्नो के मनन द्वारा वस्तु के तह तक पहुँचने को अनुयोगद्वार कहते हैं।[51] पंच–ज्ञान के मंगलाचरण से इस आगम का प्रारंभ होता है। इसे सभी आगमों तथा उनकी व्याख्याओं को समझने में कुंजी सदृश माना गया है। जैन दर्शन के रहस्य को समझने के लिए अनुयागद्वार का अध्ययन बहुत उपयोगी है। दार्शनिक सिद्धान्तों के अलावा इस ग्रन्थ में सामाजिक–सांस्कृतिक सामग्री भी पर्याप्त मिलती है। द्रव्यानुपयोग प्रधान इस आगम में 4 द्वारा और 1899 श्लोक प्रमाण मूल पाठ है; जिसमें 152 गद्य–सूत्र और 143 पद्य–सूत्र हैं। इसका रचना काल वीर निर्वाण संवत् 827 से पूर्व माना जाता है तथा आचार्य आर्यरक्षित इसके रचनाकार माने जाते हैं।[52]

Nn& l=

श्रमण परम्परा का मुख्य आधार है इसका आचार–शास्त्र। आचार–संहिता के विवेचन को चार भागों में बाँटा गया है–उत्सर्ग, अपवाद, दोष और प्रायश्चित। इस प्रकार के विवेचन का समग्र विवरण छेद–सूत्रों में मिलता है। छेद शब्द पर आचार्य कुन्दकुनद का कहना है कि सोना, बैठना, चलना आदि क्रियाओं में साधक की जो अनायास प्रवृत्ति होती है, उसमें यदि असजगता रखी जाती है तो वह हिंसा रूप होती है और शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म के छेद (विनाश) का कारण होने से उसे छेद (अशुद्ध उपयोग रूप) कहा जाता है।[53] प्रो. एच.आर. कापड़िया के अनुसार छेद का अर्थ छेदन है और छेद सूत्रों का अभिप्राय उन शास्त्रों से है, जिनमें श्रमणों द्वारा नियमों का अतिक्रमण कर देने पर उनकी वरिष्ठता (दीक्षा पर्याय) का छेदन करने वाले नियम होते हैं। अन्य अर्थ के अनुसार जिन शास्त्रों की शिक्षा केवल परिणत (योग्य व समर्थ) शिष्य को दी जा सकती है, अपरिणत या अतिपरिणत को नहीं, वे छेद–सूत्र कहे जाते हैं।[54] छेद–सूत्रों में दोषों से बचने और दोष लग जाने पर प्रायश्चित का विधान होता है। इन छेद सूत्रों में अनुशासन के जो नियम प्राप्त होते हैं, उन्हें शासन, प्रशासन, सेना और

प्रबन्ध में अनुशासन के लिए उत्तम मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। डॉ. जैकोबी और शुब्रिंग के अनुसार प्राचीन छेद सूत्रों का समय ई. पूर्व चौथी सदी का अन्त और तीसरी का प्रारंभ माना गया है।[55] डॉ. विण्टरनित्ज छः छेद सूत्रों के नाम देते है– कल्प, व्यवहार, निशीथ, महानिशीथ, पिण्ड–निर्युक्ति और ओघ–निर्युक्ति।[56] वर्तमान में स्थानकवासी और तेरापन्थ द्वारा मान्यता प्राप्त चार छेद–सूत्रों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

1. n’kkJ|rLdU/k : ठाणांग में इसका अपर नाम आचार दशा प्राप्त होता है। इसमें दस अध्ययन है। 216 गद्य–सूत्र और 52 पद्य–सूत्रों में 1830 अनुष्टुप श्लोक प्रमाण उपलब्ध पाठ हैं।[57] कल्पसूत्र को दशाश्रुतस्कन्ध का आठवाँ अध्ययन माना जाता है। इसमें भगवान महावीर की जीवनी और साधकों के आचार–विधान पर प्रकाश डाला गया है।
2. cgRdYi : इसमें 6 उद्देशक हैं; जिनमें 81 अधिकार, 206 सूत्र और 473 श्लोक प्रमाण उपलब्ध मूल पाठ हैं। जैन श्रमणों के प्राचीनतम आचारशास्त्र का यह महाशास्त्र है।[58] साधु किस स्थान पर कितने समय ठहर सकता है, इसका विशेष विवरण इस सूत्र में है। जिन 16 प्रकार के स्थानों का वर्णन इस ग्रन्थ में है, उससे प्राचीन आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। ये सोलह स्थान हैं।[59]
   1. ग्राम (जहाँ 18 प्रकार के कर लिये जाते हों)
   2. नगर (जहाँ 18 प्रकार के कर नहीं लिये जाते हों)
   3. खेट (जिसके चारों ओर मिट्टी की दीवार हो)
   4. कर्बट (जहाँ कम लोग रहते हों)
   5. मडम्ब (जिसके बाद ढाई कोस तक कोई गाँव न हो)
   6. पत्तन (जहाँ सब वस्तुएँ उपलब्ध हों)
   7. आकर (जहाँ धातु की खानें हों)
   8. द्रोणमुख (जहाँ जल व स्थल को मिलाने वाले मार्ग हों, जहाँ समुद्री माल आकर उतरता हो)
   9. निगम (जहाँ व्यापारियों की बस्ती हो)

10. राजधानी (जहाँ राजा का आवास और राजकाज हो)
11. आश्रम (जहाँ तपस्वी आदि रहते हैं)
12. निवेश / सन्निवेश (जहाँ सार्थवाह आकर उतरते हों)
13. सम्बाध–सम्बाह (जहाँ किसान रहते हो अथवा अन्य गाँव के लोग अपने गाँव से धन आदि की रक्षा के निमित्त पर्वत, गुफा आदि में आकर हरे हुए हो)
14. घोष (जहाँ ग्वाले आदि रहते हों)
15. अंशिका (गाँव / नगर का अर्ध, तृतीय या चतुर्थ भाग) और
16. पुटभेदन (जहाँ व्यापारी अपनी चीजें बेचने आते हों)

3. **0;ogkj&l=** : चरणानुयोगमय इस आगम में दस उद्देशक हैं। 267 सूत्र संख्या और 373 अनुष्टुप श्लोक प्रामण उपलब्ध मूल पाठ हैं। आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत– ये व्यवहार के पाँच प्रकार हैं। इसके रचयिता श्रुतकेवली भद्रबाहु माने जाते हैं।
4. **fu'khFk&l=** : निशीथ भाष्य श्लोक 64 के अनुसार निशीथ का अर्थ अप्रकाश है। उसमें कहा गया कि जो रहस्य को धारण कर सके यानि गोपनीयता बनाए रख सके वहीं निशीथ को पढ़ने का अधिकारी है। चरणानुयोगमय इस आगम में विशेषतः प्रायश्चित का विधान है। 20 उद्देशकों के 1405 ग़द्य–सूत्रों में 812 अनुष्टुप श्लोक प्रमाण उपलब्ध मूल पाठ हैं।[60]

इन चार छेद–सूत्रों सहित इकतीस आगम–ग्रन्थों का परिचय हुआ। बत्तीसवाँ है– आवश्यक–सूत्र : इसे प्रतिक्रमण–सूत्र भी कहा जाता है। इसमें इन छः आवश्यकों की आराधना का निर्देश है– सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। प्रतिक्रमण के अन्तर्गत 99 अतिचार एवं मिथ्यात्व, प्रमाद, कषाय, अविरति व अशुभ–योग का प्रायश्चित किया जाता है। गृहस्थ और साधु दोनों के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक बताया गया है। प्रतिक्रमण उत्तम जीवन जीने की कला की शिक्षा देता है। आवश्यक में 100 श्लोक प्रमाण मूल पाठ हैं, जिसमें 91 गद्य–सूत्र और 9 पद्य–सूत्र हैं। इसमें वर्णित गृहस्थाचार का अर्थशास्त्रीय महत्व आगे बताया गया है।

i:dh.kd lkfgR;

शौरसेनी आगम साहित्य के परिचय से पूर्व प्रकीर्णक–साहित्य का परिचय दिया जा रहा है। श्वेताम्बर जैन परम्परा द्वारा आगम ग्रन्थों की मान्यता की दो विचारधाराएँ है– 32 आगम ओर 45 आगम। पैंतालीस आगमों के अन्तर्गत आवश्यक सूत्र को छोड़ते हुए ऊपर वर्णित इकतीस आगम तथा दस प्रकीर्णक, जीत–कल्प, महानिशीथ, आवश्यक–निर्युक्ति और पिण्ड–निर्युक्ति को सम्मिलित किया जाता है।[61] प्रकीर्णक आगम साहित्य का किंचित परिचय यहाँ समाचीन होगा, क्योंकि आगमों को व्यापक रूप से समझने के लिए प्रकीर्णकों का अध्ययन आवश्यक है।

नन्दी–सूत्र के टीकाकार आचार्य मलयगिरी के अनुसार तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट श्रुत के आधार पर श्रमण प्रकीर्णकों की रचना करते हैं अथवा श्रमणों की श्रुताधारित धर्मकथाओं/धर्मोपदेशों से रचित कृतियाँ प्रकीर्णक कहलाती है। माना जाता है कि भगवान महावीर के तीर्थ में चौदह हजार प्रकीर्णक थे। वर्तमान में दस प्रकीर्णक माने जाते हैं। इनमें नाम और क्रम भेद भी हैं। प्रकीर्णकों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।[62]

1. pr%'kj.k : इसमें चार शरणों को उत्कृष्ट और कल्याणकारी बताया गया है– अरहन्त, सिद्ध, साध और सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म। ये चार शरणें सर्व–कुशलता की मुख्य कारण हैं; इसलिए इसे 'कुशलानुबन्धी' नाम से भी जाना जाता है। अन्तिम 63वीं गाथा में वीरभद्र का उल्लेख होने से इसे वीरभद्र रचित माना जाता है।
2. vkrj iR;k[;ku : सत्तर गाथाओं के इस ग्रन्थ के रचयिता भी वीरभद्र हैं। मरण (बाल, बाल–पण्डित और पण्डित) से सम्बन्धित सामग्री होने से इसे अन्तकाल प्रकीर्णक भी कहा जाता है।
3. egkiR;k[;ku : 142 गाथाओं में त्याग–प्रत्याख्यान के स्वरूप और महिमा का वर्ण है।
4. HkDr&ifjKk : वीरभद्र रचित इस ग्रन्थ में 172 गाथाएँ हैं।

5. rUnqy oSpkfjd : इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से गर्भ के विषय में सामग्री मिलती है। इससे पता चलता है कि प्राचीन समय के अध्यात्म मनीषी आश्चर्यजनक वैज्ञानिक जानकारी रखते थे। इसमें 139 गाथाएँ हैं।

6. laLrkjd : मृत्यु संसार की अटल नियति है। समाधि मरण से उसे मंगलमय बनाया जा सकात है। समाधि मरण के लिए संस्तारक यानि संथारा आवश्यक है। ग्रन्थ की 123 गाथाओं में संथारे की विधि और महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

7. xPNkpkj : इसमें 137 गाथाएँ हैं। गाथा 135 के अनुसार यह ग्रन्थ महानिशीथ, बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्रों के आधार पर लिखा गया। इसमें गच्छ अर्थात समूह में रहने वाले श्रमण श्रमणियों के आचार तथा श्रमण और श्रमणियों के बीच आचारगत मर्यादाओं का वर्णन है।

8. xf.kfo|k : ज्योतिर्विज्ञानी की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। 82 गाथाओं में दिवस, तिथि, नक्षत्र, करण, ग्रह, मुहूर्त, शकुन, लग्न और निमित्त इन नौ विषयों का विवेचन है।

9. noSUnzLro : 307 गाथाओं के इस प्रकीर्णक में बत्तीस देवेन्द्रों का विस्तृत वर्णन है। देवताओं, देवलोक तथा जैन खगोल–भूगोल का परिचय इस ग्रन्थ से प्राप्त होता है। ग्रन्थ की मूल गाथाओं में रचनाकार के रूप में ऋषिपालित का उल्लेख है। कल्पसूत्र की स्थविरावली में ऋषिपालित का नाम एक प्रभावशाली आचार्य और ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में उल्लेखित है। देवेन्द्रस्तव का रचना–काल ईस्वीपूर्व प्रथम शताब्दी के आसपास है।[63]

10. ej.k&lekf/k : मरण विभक्ति, मरण विशोधि, मरण समाधि, संलेखना श्रुत, भक्त परिज्ञा, आतुर प्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान और आराधना इन आठ प्राचीन श्रुतस्कंधों को आधार पर इस प्रकीर्णक की रचना हुई।[64] यह सबसे बड़ा प्रकीर्णक है।

11. pUnzkos/;d : इसमें विनय, आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनय निग्रह गुण, ज्ञान गुण, चरण गुण और मरण गुण इन सात विषयों का विस्तार से विवेचन है। ग्रन्थ में अप्रमाद का उपदेश है। 175 गाथाएँ हैं।

12. **ohjLro** : 43 गाथाओं में भगवान महावीर की स्तुति की गई है। महावीर के अन्य अनेक नाम इस ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं।[65]

इन प्रकीर्णकों के अलावा अन्य अनेक प्रकीर्णकों के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। यथा– तित्थोगाली, अजीव कल्प, सिद्ध पाहुड, आराधना पताका, द्वीप सागर प्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक, अंगविद्या, तिहिपईण्णग, सारावलि, पर्यन्ताराधना, जीवविभक्ति, कवच प्रकरण, जोणि पाहुड आदि। धर्म, दर्शन, अध्यात्म, जीवन–मूल्यों की चर्चा के साथ–साथ तत्कालीन समाज की प्रतिच्छवि भी इन ग्रन्थों में मिलती है। आगम और व्याख्या साहित्य के बीच कड़ी के रूप में प्रकीर्णकों का महत्व है।[66] अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों का परिचय भी यहाँ दिया जा रहा है।

egkfu'khFk % छः अध्ययन और दो चूलाओं के इस ग्रन्थ में 4554 श्लोक प्रमाण पाठ हैं। नन्दी में उल्लेखित महानिशिथ से यह भिन्न है। इसकी अनेक बातें मूल आगम ग्रन्थों से मेल नहीं खाती हैं। आचार्य हरिभद्रसूरि इस ग्रन्थ के उद्धारक माने जाते हैं।

thr&dYi % इसके रचनाकार निभ्रदगणि श्रमाश्रमण हैं। इसमें 103 गाथाएँ हैं श्रमण श्रमणियों के पापस्थान और उनके प्रायश्चित की दस प्रकार की विधियों का वर्णन है।

vk?k&fu;qfDr % इसमें श्रमणें के आचार–विचार का प्रतिपादन है इसलिए कहीं इसे मूल सूत्र और कही ंछेद सूत्र के अन्तर्गत माना जाता है। आचार्य भद्रबाहु ने इसकी रचना की तथा अनेक विज्ञों की राय में यह आवश्यक निर्युक्ति का ही एक भाग है। इसमें 811 गाथाएँ हैं।[67]

पिण्ड–निर्युक्ति : आचार्य भद्रबाहु ने इसकी रचना की तथा इसमें 671 गाथाएँ हैं। इसमें श्रमणों की आहार चर्या पर चिन्तन किया गया है।

_f"kHkkf"kr % इसे अर्धमागधी आगम साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का किंचित परवर्ती तथा सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन व दशवैकालिक जैसे प्राचीन आगम ग्रन्थों की अपेक्षा पूर्ववर्ती सिद्ध होता है। भाषा, इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें

धार्मिक उदारता का अनूठा दिग्दर्शन है। ऋषिभाषित न सिर्फ जैन संस्कृति अपितु समग्र भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है।[68]

fu;|fDr&lkfgR;

मूल आगमों और प्रकीर्णकों पर मनीषी आचार्यों द्वारा विपुल साहित्य की रचना की गई। यह व्याख्यात्मक साहित्य एक लम्बे काल–खण्ड की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि घटनाओं और विषयों पर विपुल महत्वपूर्ण सामग्री जुटाता है। व्याख्या साहित्य में निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि के अलावा संस्कृत टीकाएँ तथा लोक भाषा में रचित सामग्री का समावेश किया जाता है। निर्युक्तियों के मुख्य रचनाकार आचार्य भद्रबाहु हैं। उन्होंने आचारांग, सूत्रकृतांग, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार और अन्य ग्रन्थों पर निर्युक्तियाँ लिखीं। आचार की दृष्टि से कुछ निर्युक्तिया इतनी महत्वपूर्ण है कि वे आगम साहित्य में स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठित हो गई, जैसे पिण्ड–निर्युक्ति और ओघ निर्युक्ति।[69] मूल ग्रन्थों के भावार्थ और रहस्य को जानने के लिए निर्युक्ति–साहित्य का बहुत बड़ा महत्व है।

Hkk";&lkfgR;

निर्युक्तियों के बाद भाष्यों की रचना हुई। मूल ग्रन्थों और निर्युक्तियों पर भाष्य साहित्य की रचना हुई। भाष्यों में शब्दों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। भाष्य साहित्य में विभिन्न प्राकृतों के विशिष्ट प्रयोग मिलते हैं। निजभद्रगणी क्षमाश्रमण और संघदासगणी मुख्य भाष्यकार हुए हैं। इन भाष्यकारों के प्राकृत गाथाओं में आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन बृहत्कल्प, पंचकल्प, व्यवहार, निशीथ, जीतकल्प, ओघ निुर्यक्ति, पिण्ड निर्युक्ति आदि पर भाष्य उपलब्ध होते हैं।[70] भाष्य साहित्य में एक दीर्घ कालखण्ड की प्रचुर धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और राजनैतिक जानकारी हमें प्राप्त होती है।[71] जैन परम्परा और प्राचीन भारतीय आर्थिक परिदृश्य को जानने–समझने के लिए भाष्य साहित्य का गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। इस साहित्य में प्राचीन अनुश्रुतियाँ, लौकिक कथाएँ और परम्परागत प्राचीन आचार–विचार का विशुद्ध विवेचन हमें मिलता है। मूल ग्रन्थों और निर्युक्तियों की तरह भाष्य की भाषा भी मुख्य रूप से अर्द्धमागधी है।[72]

pf.k& lkfgR;

निर्युक्तियों और भाष्यों के पश्चात् आगमों पर चूर्णियां लिखी गई। चूर्णि साहित्य प्राकृत और संस्कृत मिश्रित प्राकृत में रचा गया। जिसमें संस्कृत कम और प्राकृत अधिक है। अभिधान राजेन्द्र कोश में चूर्णि की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि जिसमें अर्थ की बहुलता हो, महान अर्थ हो; हेतु निपात और उपसर्ग से युक्त हो, गम्भीर हो, अनेक पदों से सम्बन्धित हो, जिसमें अनेक गम (जानने के उपाय) हो और जो नयों से शुद्ध हो, उसे चूर्णि समझना चाहिये।[73] निर्युक्ति और भाष्य की भांति चूर्णि–साहित्य भी सभी आगम ग्रन्थों पर नहीं मिलता है। आचारांग, सूत्रकृतांग, व्याख्या–प्रज्ञप्ति, जीवाभिगम, निशीथ, महानिशीथ, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, पंचकल्प, जीतकल्प, ओघनिर्युक्ति, व्यवहार, नन्दी, अनुयोगद्वार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों पर चूर्णियाँ लिखी गई।[74] जिनदासगणि महत्तर ने सर्वाधिक चूर्णि साहित्य की रचना की। चूर्णियाँ सरल सुबोध भाषा में हैं तथा इनमें भी तत्कालीन जीवन और समाज की प्रचुर सामग्री है।[75]

Vhdk lkfgR;

आगम, निर्युक्ति और भाष्य प्राकृत में रचित हैं। चूर्णियाँ मुख्य रूप से प्राकृत और गौण रूप में संस्कृत में रचित हैं। टीकाएँ संस्कृत में रचित हैं। वह समय संस्कृत के उत्कर्ष का था, इसलिए आचार्यों ने टीकाओं में संस्कृत को अपनाया। निर्युक्तियों में आगमिक शब्दों की व्याख्या, भाष्यों में विस्तृत विवेचन तथा चूर्णियों में निगूढ़ भावों को लोक कथाओं के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है जबकि टीका साहित्य में आगमों का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन है। टीकाओं के लिए अनेक नाम प्रयुक्त हुए हैं यथा– वृत्ति, विवृत्ति, विवरण, विवेचन, व्याख्या, वार्तिक, दीपिका, अवचूरि, अवचूर्णि, पंजिका, टिप्पण, टिप्प्णक, पर्याय, स्तकब, अक्षरार्थ आदि। टीकाकारों में जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण, आचार्य हरिभद्र, आचार्य अभयदेव, आचार्य शीललांक, कोटयाचार्य, आचार्य गन्धहस्ती, मलयगिरी, मलधारी हेमचन्द्र नेमीचन्द्र आदि प्रमुख हैं। आधुनिक समय में भी पर्याप्त टीका–लेखन का कार्य हुआ है तथा आधुनिक भाषाओं में उल्लेखनीय अनुवाद कार्य हुए हैं।[76]

'kkSjlsuh vkxe lkfgR;

उपलब्ध आगम साहित्य की दृष्टि से शौरसेनी सबसे प्राचीन साहित्यिक प्राकृत मानी जाती है।[77] इसे शूरसेन जनपद में बोली जाने वाली लोक भाषा माना जात है। इसकी राजधानी मथुरा थी।[78] इस जनपद में 84 वन थे। जिसमें 12 बड़े वन और 72 छोटे वन थे। बाद में अनेक स्थानों पर नगर बस गये। जैसे— वृन्दावन, मधुवन, विधिवन, महावन आदि। अग्रवन के स्थान पर वर्तमान में आगरा बसा हुआ है। शौरसेनी के प्रभाव और विस्तार में वृद्धि के लिए देश—विदेश के व्यापारियों का बड़ा योगदान है।[79] दिगम्बर जैन परम्परा मान्यता माना जाता है। बारहवें अंग दृष्टिवाद का कुछ अंग शेष रहा, उसके आधार पर आचार्य धरसेन के सानिध्य में विशाल ग्रन्थ षट्खण्डागम की रचना की गई।[80]

"kV~[k.Mkxe

आचार्यद्वय की पुष्पदन्त और श्री भूतबलि षट्खण्डागम के सर्जक है। विक्रम की प्रथम शताब्दी इसका रचनाकाल माना जाता है। छः खण्डों में विभक्त होने इसका नाम षट्खण्डागम है। प्रथम खण्ड जीवस्थान के अन्तर्गत सत्प्ररूपणा की रचना आचार्य पुष्पदन्त ने तथा शेष आगम की रचना भूतबलि ने की।[81] छः खण्डों का क्रमशः परिचय दिया जा रहा है।

1. **thoLFkku %** इसमें आठ प्ररूपणाओं में जीव का वर्णन किया गया है। पहली सत्प्ररूपणा का आरम्भ पंच नमस्कार से किया गया है। चौदह गुणस्थानों तथा चौदह मार्गणाओं के माध्यम से जीव का वर्णन किया गया है। इसमें 177 सूत्र हैं। दूसरी द्रव्य प्रमाणानुगम प्ररूपणा में 192 सूत्र हैं; जिनमें गुणस्थान और मार्गणाक्रम से जीवों की संख्या बताई गई है। तीसरी क्षेत्र प्ररूपणा में 92 सूत्रों द्वारा जीवों के क्षेत्र का कथन किया गया है। चौथी स्पर्शना प्ररूपणा में बताया गया है कि गुणस्थान और मार्गणा के अनुसार जीव कितने क्षेत्र का स्पर्श करता है। इसमें 185 सूत्र हैं। पाँचवी कालानुयोग प्ररूपणा के 342 सूत्रों में जीव की अवस्था विशेष की काल मर्यादा का निरूपण है। छठी अन्तर प्ररूपणा में 397 सूत्र है; जिनमें विभिन्न गुणस्थानों में संक्रमण की अन्तर अवधि का वर्णन है।

सातवीं भावानुयोग प्ररूपणा में 93 सूत्र हैं। इसमें जीवों के औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक भावों का विवेचन हैं। आठवीं अल्प–बहुत्व प्ररूपणा में विभिन्न गुणस्थानवर्ती तथा मार्गणास्थानवर्ती जीवों की संख्या के न्यूनाधिक्या का विवेचन है। आठ प्ररूपणाओं के अतिरिक्त जीवस्थान में नौ चूलिकाएँ हैं– समुत्कीर्तन, स्थान समुत्कीर्तन, प्रथम महादण्डक, द्वितीय महादण्डक, तृतीय महादण्डक, उत्कृष्ट स्थिति, जघन्य स्थिति, सम्यक्त्वोत्पति एवं गत्यागति। प्रथम खण्ड सत्रह अधिकारों में विभाजित है। इसमें कुल 2375 सूत्र हैं।[82]

2. {kqnzdcU/k % मार्गणा स्थानों के अनुसार कौनसा जीव बन्धक और कौनसा अबन्धक है, इसका विवेचन इस खण्ड में है। इसमें तेरह अधिकार और ग्यारह अनुयोग हैं। कुल 1582 सूत्र हैं। कर्म सिद्धान्त की दृष्टि से यह उपयोगी है।
3. cU/kLokfeRo fop; % कौनसे गुणस्थानवर्ती और मार्गणावर्ती जीव कौनसे कर्मबन्ध करते हैं, इसका इसमें वर्णन है। कुल 324 सूत्र हैं। प्रश्नोत्तर शैली में कर्म सिद्धान्त का सुबोध वर्णन है।
4. osnuk [k.M % इस खण्ड में में 1449 सूत्र हैं। आरम्भिक 44 सूत्रों से मंगलाचरण किया गया है। इसमें कृति और वेदना इन दो अनुयोगों के माध्यम से कर्म सिद्धान्त का निरूपण है।
5. oxZ.kk [k.M % इसमें स्पर्श, कर्म और प्रकृति नामक अनुयोग द्वारों का प्रतिपादन किया गया है। इन तीन अनुयोग द्वारों में क्रमशः 63, 31 और 142 सूत्र हैं। इनमें कर्म–बन्ध, बन्धम और बन्धनीय पर विचार किया गया है।
6. egkcU/k % कर्म–बन्ध के चार भेद हैं– प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश। महाबंध में इन चारों पर इतने विस्तार से विवेचन है कि यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाता है। यह खण्ड 3000 श्लोक प्रमाण है जबकि इससे पूर्व के सभी पाँच खण्ड 6000 श्लोक प्रमाण हैं।

d"kk; ikgqM % आचार्य गुणधर रचित इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'पेज्जदोसपाहुड' भी है। 'पेज्ज' अर्थात् राग और 'दोस' अर्थात् द्वेष। राग–द्वेष के कषाय के आधार होते है, इसलिए इसका यह नाम भी उपयुक्त लगाता है। डॉ. नेमी चन्द्र शास्त्री के अनुसार

ग्रन्थ का रचनाकाल ईस्वी की प्रथम शती है।[83] 180 मूल और 53 भाष्य गाथाओं को मिलाकर इसमें कुल 233 सूत्र गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ सोलह अधिकारों के माध्यम से सिद्धान्त की व्याख्या करता हैं इसमें मोहनीय कर्म का विस्तृत विवेचन है।

शौरसेनी आगम ग्रन्थों पर समय–समय पर अनेक टीकाओं की रचना हुई। विषय और विस्तार की दृष्टि से इन टीकाओं का महत्व व स्थान स्वतन्त्र ग्रन्थ जैसा है। टीका साहित्य में मूल ग्रन्थ के विषय के अलावा भी दूसरी उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। यहाँ षट्खण्डागम पर लिखी ख्यात टीकाएँ धवला और जय–धवला का परिचय प्रस्तुत है।

/koyk % यह टीका षट्खण्डागम के पाँच खण्डों पर लिखी गई। टीकाकार आचार्य वीरसेन ने 2 हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत मिश्रित संस्कृत में इसकी रचना की। इसका तीन चौथाई हिस्सा प्राकृत और एक चौथाई हिस्सा संस्कृत में है। डॉ. नेमी चन्द शास्त्री ने इस ग्रन्थ को विश्व–कोष की संज्ञा दी है। उनके अनुसार धवना की मुख्य विशेषताएँ उल्लेख्य हैं[84.]– कर्म सिद्धान्त का निरूपण, पूर्ववर्ती आचार्यों और समकालीन राजाओं का उल्लेख, दर्शनशास्त्र की मान्यताओं का समावेश, लोक–स्वरूप के विवेचन में नया दृष्टिकोण, अन्तर्मुहूर्त के सम्बन्ध में नई मान्यता, गणित शास्त्र की विभिन्न प्रवृत्तियों का प्ररूपण, ज्योतिर्विज्ञान और निमित्त–ज्ञान की प्राचीन मान्यताओं का विश्लेषण, सम्यक्त्व के स्वरूप का विवेचन, भाषा और कुभाषा का वर्णन, सांस्कृतिक तत्वों का प्राचुर्य, श्रुत ज्ञान के पदों की संख्या का निरूपण, गुणस्थान और जीव–समासों का विवेचन इत्यादि।

t ;&/koyk % आचार्य वीरसेन ने जय–धवला लिखना शुरू किया। बीस हजार श्लोक लिखने के बाद वे स्वर्गलोक सिधार गये। उनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने चालीस हजार श्लोक और लिखकर ई. सन् 837 में इस टीका को पूर्ण किया। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल 60 हजार श्लोक प्रमाण सामग्री है। कर्म सिद्धान्त, अनुयोगद्वार, मार्गणा, लेश्या आदि अनेक विषयों का समावेश इसमें हुआ है।

d|Und|Unkpk;l dk lkfgR;

शौरसेनी आगम साहित्य के सृजेताओं में आचार्य कुन्दकुन्द का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी तेईस रचनाएँ प्राप्त होती हैं। उनकी रचनाओं में निश्चयनय पर अधिक बल दिया गया है।[85] प्रवचनसार, समयसार और पंचास्तिकाय ये तीन विशाल ग्रन्थ आध्यात्म–त्रयी के रूप में विख्यात हैं।

i:opulkj % आचार्य अमृतचन्द्र की टीका के अनुसार प्रवचनसार की गाथा संख्या 275 है जबकि आचार्य जयसेन के अनुसार यह संख्या 317 है। ग्रन्थ में तीन अधिकार हैं– ज्ञान, ज्ञेय और चारित्र। ज्ञानाधिकार में आत्मा और ज्ञान का एकत्व, अन्यत्व, सर्वज्ञ की परिभाषा, इन्द्रिय और अतिन्द्रिय सुख, अशुभ, शुभ और शुद्ध उपयोग एवं मोहक्षय आदि का विवेचन है। ज्ञेयाधिकार में द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप, सप्तभंगी, ज्ञान, कर्म और कर्मफल, चेतना का स्वरूप, मूर्त–अमूर्त द्रव्यों के गुण, जीव का लक्षण, जीव और पुद्गल का सम्बन्ध, निश्चय और व्यवहार आदि पर विचार किया गया हैं चारित्राधिकार में श्रमणचर्या और आचार संहिता व मोक्ष तत्व पर विमर्श है।[86]

le;lkj % अध्यात्म प्रधान इस ग्रन्थ की तुलना उपनिषद्–साहित्य से की जाती है। इसकी गाथा संख्या भी अमृतचन्द्र और जयसेन के अनुसार अलग–अलग है। आाचार्य अमृतचन्द्र की टीका के अनुसार समयसार की गाथा संख्या 415 है जबकि आचार्य जयसेन यह संख्या 439 बताते हैं। समय बहुत अर्थपूर्ण शब्द है। काल, पदार्थ और आत्मा इसके मुख्य अर्थ हैं। समयसार आत्मा के सार पर केन्द्रित है। इसमें आत्मा और अनात्मा के भेद –विज्ञान को स्पष्ट किया गया है। जीवाजीव, कृर्तकर्म, पुण्य–पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष, सर्व विशुद्ध ज्ञान और अनेकान्त दृष्टि से आत्म–स्वरूप का विवेचन इन दस अधिकारों का इस ग्रन्थ में वर्णन है।[87]

i:pkfLrdk; % विश्व की संरचना छः द्रव्यों से से मिलकर हुई। काल–द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश, अस्तिकाय के अन्तर्गत परिगणित किये जाते हैं, क्योंकि ये बहुप्रदेशी द्रव्य होते हैं। दो अधिकारो में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम अधिकार में द्रव्य, गुण और पर्याय का विवेचन तथा द्वितीय अधिकार में पुण्य, पाप, जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्वों का वर्णन है।

अमृतचन्द्राचार्य की टीका के अनुसार पंचास्तिकाय की गाथा संख्या 173 है। जबकि जयसेनाचार्य ने यह संख्या 181 बताई है।

आचार्य कुन्दकुन्द के इन्य ग्रन्थों में निम्नलिखित प्रमुख हैं–

- fu;elkj % इसमें रत्नत्रय (सम्यक, ज्ञान, दर्शन व चरित्र) का विवेचन है। इसमें पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप व्यवहार चारित्र के निरूपण के साथ पंच परमेष्ठी का स्वरूप भी बताया गया है। इसमें 186 गाथाएँ है। विक्रम की तेरहवीं शती में पद्यप्रभ मलधारी ने इस पर महत्वपूर्ण टीका लिखी थी।
- }kn'kkui{kk % इसमें बारह भावनाओं (अनुप्रेक्षाओं) का 91 गाथाओं में वर्णन है। आध्यात्मिक और व्यावहारिक, दोनों दृष्टियों से इन भावनाओं का बहुत महत्व है।
- n'ku&ikHkr % इसमें सम्यक चरित्र पर 44 गाथाएँ हैं; जिनमें श्रावक और श्रमण धर्म का निरूपण है। दर्शन का ज्ञान के साथ आचरण चारित्र है। इसमें सम्यक्त्व के आठ गुण बताये हैं– शंकारहितता, कांक्षारहितता, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना। इन गुणों के सहारे व्यक्ति सन्मार्ग पर अग्रसर रहता है।
- l=&ikHkr % इसकी 27 गाथाओं में आगम का महत्व बताया गया है।
- ck/k&ikHkr % इसमें आयतन, चैत्य–गृह, जिन–प्रतिमा, दर्शन, जिन–बिम्ब, जिन–मुद्रा, आत्म–ज्ञान, देव, तीर्थ, अर्हन्त और प्रव्रज्या इन ग्यारह बातों का बोध दिया गया है। इसमें 62 गाथाएँ है।
- Hkko&ikHkr % इसमें 163 गाथाओं में भाव शुद्धि और पुरूषार्थ पर विचार किया गया है।
- ek{k&ikHkr % इसकी 106 गाथाओं में मोक्ष का स्वरूप बतलाया गया है। इसमें बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का वर्णन है।
- fyx&ikHkr % इसमें 22 गाथाएँ है तथा इसमें मुनि धर्म का निरूपण है।

- 'khy&ikHkr ¼ इसमें विषयासक्ति से दूर रहने का निर्देश है। जीव–दया, इन्द्रिय–दमन, पंच महाव्रत, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व तप को शील के अन्तर्गत परिगणित किया गया हैं
- fl)&HkfDr ¼ इसमें 12 गाथाओं में सिद्धों का वर्णन है।
- J|r&HkfDr ¼ इसकी 11 गाथाओं में स्तुति रूप में श्रुत ज्ञान का स्वरूप बताया गया है।
- Pkfj=&HkfDr ¼ इसके 10 अनुष्टुप छन्दों में पाँच प्रकार के चारित्र का वर्णन है।
- ;kx&HkfDr ¼ इसमें 23 गाथाएँ हैं; इनमें योगियों की विभिन्न अवस्थाओं को बताया गया है।
- vkpk;l&HkfDr ¼ इसकी 10 गाथाओं में आचार्य के गुण बतलाए गये हैं।
- fuokl.k&HkfDr ¼ इसकी 27 गाथाओं में निर्वाण का स्वरूप तथा निर्वाण प्राप्त तीर्थंकरों की स्तुति है।
- i|px|:&HkfDr ¼ इसमें 7 गाथाएँ हैं तथा इनमें पंच परमेष्ठी की स्तुति की गई है।
- dkLlkfe Lr|fr ¼ इसकी 8 गाथाओं में नाम सहित तीर्थंकर स्तुति है।
- j;.klkj ¼ इसमें रत्नत्रय का विवेचन है। ग्रन्थ के कहीं 167 पद्य और कहीं 155 पद्य प्राप्त होते हैं। कुछ विज्ञों की राय में रयणसार कुन्दकुन्दाचार्य की रचना नहीं है।[88]

इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द का योगदान न सिर्फ जैन दर्शन के लिए अपितु सम्पूर्ण भारतीय दर्शन, संस्कृति, अध्यात्म और भाषा के लिए भी अनुपम है। द्रव्य, गुण और पर्याय में उन्होंने विश्व के सभी पदार्थों का समावेश कर दिया।[89] आगम ग्रन्थों में उल्लेखित निश्चय और व्यवहार की अवधारणा को उन्होंने नवीन अर्थ और विस्तार दिया। शौरसेनी आगम साहित्य के सृजेताओं में कुन्दकुन्दाचार्य के अलावा आचार्य यतिवृषभ, वट्टकेर, शिवार्य, नेमीचन्द्र, कुमार कार्तिकेय आदि नाम प्रमुख हैं। इन मनीषियों के ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

vU; xUFk

f=ykd iKfIr% तिलोय पण्णत्ति में तीन लोक के स्वरूप, आकार, प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल, परिवर्तन आदि का वर्णन है। आचार्य यतिवृषभ रचित इस ग्रन्थ में पुराण और भारतीय इतिहास विषयक सामग्री भी प्राप्त होती है। नौ महाधिकारों में विभक्त इस ग्रन्थ में प्राचीन खगोल–भूगोल सम्बन्धी जानकारियों का समावेश है।

eykpkj % इस ग्रन्थ की रचना आचार्य वट्टकेर ने की। पं. जुगल किशोर मुख्तार, आचार्य कुन्दकुन्द का ही वट्टकेर मानते हैं। परन्तु अन्य विद्वान मुख्तार से सहमत नहीं है। निःसन्देह वे स्वतन्त्र आचार्य हैं।[90] दक्षिण भारत के बेट्टकेरी स्थान के निवास वट्टकेर दिगम्बर परम्परा में मूल संघ के प्रमुख आचार्य थे। मूलाचार में उन्होंने श्रमण आचार संहिता का सुव्यवस्थित, विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचन किया है।[91] इस ग्रन्थ में बारह अधिकार हैं और 1252 गाथाएँ हैं। मूलाचार तथा दर्शवैकालिक, आवश्यक निर्युक्ति, पिण्ड निर्युक्ति, भक्त परिज्ञा, मरण समाधि आदि ग्रन्थों की अनेक गाथाओं में समानता है।

Hkxorh vkjk/kuk % विक्रम की तीसरी शताब्दी में हुए आचार्य शिवार्य के इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में मुख्यतः श्रमणाचार की चर्चा है। इसमें सम्यक्, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की आराधनाओं का स्वरूप और इसके नाम के साथ भगवती (आराहणा भगवदी–गाथा 2162) शब्द लगाया गया है। इसके टीकाकार श्री अपारिजत सूरि ने अपनी टीका के अन्त में इसका नाम आराधना टीका ही दिया है।[92] विशेष तौर पर अन्तिम समय की आराधना (मरणसमाधि या समाधिमरण) की विधि और महिमा का इसमें वर्णन है। इसमें 2166 गाथाएँ हैं, तो 40 अधिकारों में वर्गीकृत हैं।

dkfrZd;kuqis{kk % इसमें 497 गाथाएँ हैं। स्वामी कार्तिकेय इसके रचयिता हैं। इसमें 12 अनुप्रेक्षाओं (भावनाओं) के अतिरिक्त सप्त तत्व, जीव समास, मार्गणा, द्वादशव्रत, दान, और उसके प्रकार, धर्म के दस प्रकार, सम्यक्त्व के आठ अंग, बाहर प्रकार के तप, ध्यान आदि का वर्णन भी है। यह ग्रन्थ जैनाचार को ऊँचाइयाँ देता है।

xkEeVlkj % ग्रन्थ के दो भाग हैं– जीव–काण्ड और कर्म काण्ड। जीव–काण्ड में 733 गाथाएँ तथा कर्म–काण्ड में 912 गाथाएँ हैं।

yfC/klkj % इस ग्रन्थ में दर्शन–लब्धि, चारित्र–लब्धि और क्षायिक चारित्र ये तीन अधिकार हैं। आत्म विकास के लिए आवश्यक लब्धियों को पाँच भेदों में बाँट कर सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए मूल करण–लब्धि को सर्वोत्तम बताया गया है।

pkfj=&yfC/k % इस ग्रन्थ में सम्यक्दर्शन प्राप्ति की प्रक्रिया और सम्यक्त्व की विभिन्न श्रेणियों का निरूपण है।

f=ykd lkj % इस ग्रन्थ में सम्यक्दर्शन प्राप्ति की प्रक्रिया और सम्यक्त्व की विभिन्न श्रेणियों का निरूपण हैं

nO; laxg % सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्र की इस छोटी रचना की बड़ी प्रसिद्धि है। इसमें षट् द्रव्यों का व्यवस्थित वर्णन है।

tEc}hi iLkfIr laxg% करणानुयोग से सम्बन्धित इस ग्रन्थ में खगोल व भूगोल का भी वर्णन है। 13 उद्देशक और 2393 गाथाओं में मुनि पद्यनन्दी ने इसकी रचना की।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त धर्म रसायन, आराधना, सार, तत्व सार, दर्शन सार, सिद्धान्त सार, वसुननछी श्रावकाचार, श्रुतस्कन्ध, निजात्माष्टक, छेद–पिण्ड, भाव त्रिभंगी, अंग, पण्णत्ति, कल्लाणा लोयणा, ढाढसी गाथा, छेद शास्त्र आदि अनेक छोटे बड़े ग्रन्थ और सूत्र आगम तुलय स्थान प्राप्त है। इन ग्रन्थों का अनुयोग दृष्टि से भी वर्गीकरण प्राप्त होता है।[93]

pkj vuq;ksx

1- **pj.kdj.kkuq;ksx %** इसमें आचार पक्ष को स्पष्ट करने वाले ग्रन्थों को लिया जाता है। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उपभोक्ता के व्यवहार, उत्पादन, वितरण और उपयोगिता के सिद्धान्तों के अध्ययन में चरणकरणानुयोग का महत्व है।
2- **/keZdFkkuq;ksx %** धर्म और आध्यात्म के साथ–साथ तत्कालीन समय के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन का जीवन्त वर्णन इस अनुयोग में वर्गीकृत आगमों में मिलता है।

3. xf.krku|;kx % गणित और गणितीय सूत्रों के बिना अर्थशास्त्र का अध्ययन पूरा नहीं हो सकता है। बहत्तर कलाओं में गणित की गणना भी है। अनेक आगमों में गणित सम्बन्धी आश्चर्यजनक सामग्री प्राप्त होती है। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि आगम–युग में अर्थशास्त्र सम्बन्धी स्वतन्त्र विषय था। मध्यकाल में महावीराचार्य (आठवीं–नौवीं सदी) ने तो गणित पर स्वतन्त्र ग्रन्थ 'गणित सार संग्रह' लिखकर जैन–गणित अथवा गणितानुयोग को नये आयाम दिये।[94]
4. n0;ku|;kx % द्रव्यानुयोग के अर्थशास्त्रीय अध्ययन में पर्यावरण और उसके संरक्षण की तर्कसंगत समझ बढ़ती है। पर्यावरण आर्थिकी (Economics of Environment) के अध्ययन में द्रव्यानुयोग का महत्व है।

डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ने आगम साहित्य की अनेक विशेषताएँ बतलाई हैं।[95] उनमें से कुछ विशेषताएँ दृष्टव्य हैं–

- मानवता की प्रतिष्ठा हेतु जातिभेद और वर्गभेद की निस्सारता।
- शील, सदाचार और संयम का निरूपण।
- शोषित और शोषक में समता लाने के लिए आर्थिक विषमताओं में सन्तुलन उत्पन करने हेतु अपरिग्रहवाद और संयम को जीवन में उतारने की प्रवृत्ति।
- क्रियाकाण्डों का वैचारिक विरोध।
- साधना के लिए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का निरूपण।
- अपने पुरूषार्थ पर विश्वास कर सर्वतोमुखी विशाल दृष्टि का विकास।
- अपने को स्वयं अपना भाग्य विधाना समझ कर परोक्ष शक्ति का पल्ला छोड़ पुरूषार्थ में प्रवृत्त होने की प्रेरणा।
- विविध आख्यानों द्वारा जीवन की अनेक दृष्टियों से व्याख्या।
- मिथ्याभिमान छोड़कर उदारतापूर्णक विचार सहिष्णु बन अपनी भूल को सहर्ष स्वीकार करने की प्रवृत्ति।

- विरोधी विचारों को महत्व देना तथा अपने विचारों के समान अन्य के विचारों का भी आदर करना।
- निर्भय और निर्वेर होकर शान्ति के साथ जीवन और दूसरों को जीवित रहने देने की प्रवृत्ति।
- वैयक्तिक विकास के लिए हृदय की वृत्तियों से उत्पन्न अनुभूतियों को विचार के लिए बुद्धि के समक्ष प्रस्तुत करना और बुद्धि द्वारा निर्णय हो जाने पर कार्य में प्रवृत्ति करना।
- दया, ममता, करूणा आदि के उद्घाटन द्वारा मानवता की प्रतिष्ठा।
- संस्कृति और समाज के इतिहास का यथार्थ परिज्ञान आगम साहित्य के माध्यम से प्राप्त किया जात सकता है। जीवन और जगत के विविध अनुभवों की जानकारी इस साहित्य में निहित है।[96]

ऊपर वर्णित आगम शास्त्रों के परिचय से स्पष्ट है कि आत्म–विद्या इनका केन्द्रीय विषय है। इसकी परिधि में जीवन और जगत् की जो अन्य विधाएँ है, उनके आर्थिक–पक्ष की मीमांसा करना इस शोध का उद्देश्य है।

ifjPNsn f}rh;

tSu lkfgR; esa vFkZ lEcU/kh vo/kkj.kk,¡

जैन धर्म का अपना मौलिक और स्वतन्त्र दर्शन है। अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी कालखण्ड, पुद्‌गल, परावर्तन, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य जैसी मौलिक वैज्ञानिक अवधारणाएँ सृष्टि को शाश्वत सिद्ध करती हैं। इन अवधारणाओं के आधार पर जैन परम्परा में उल्लेखित अनन्त चौबीसियों की मान्यता सही सिद्ध होती है। इसका फलित यह है कि निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा अनादिकालीन है और अनन्त काल तक इसका अस्तित्व रहेगा। अर्थात् यह शाश्वत है। नन्दी और समवायांग में इसी दृष्टि से जैनागमों को भी अनादि–अनन्त कहा गया है।[97]

deZHkwfe vkSj deZ

प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में पाँच–पाँच आरे होते हैं। वर्तमान में अवसर्पिणी काल चल रहा है। इसके तीसरे आरे के अन्त तक कल्पवृक्षीय व्यवस्था रही, जिसे 'भोग भूमि' कहा गया। शनैः शनैः भोग भूमि की व्यवस्थाएँ समाप्त होने लगी। उसके बाद 'कर्म भूमि' युग आरम्भ होता है। कर्म का आशय पुरूषार्थ से है। जीवन के भौतिक अभौतिक सभी क्षेत्रों में पुरूषार्थ आवश्यक है। जिसे आधुनिक सभ्यता का प्रारंभिक युग कहा जाता है, जैन परम्परा में उसे कर्मभूमि कहा गया। पुरूषार्थ की बुनियाद पर ही सभ्यता और संस्कृति का मंगलाचरण होता है। भारतीय सभ्यता के प्रारंभिक युग के पूर्व की मानव सभ्यता का जो विवरण जैन परम्परा में प्रस्तुत किया गया है, उसमें सच्चाई के साथ–साथ वैज्ञानिकता भी है। इस परम्परा को विकसित करने में मुख्यतया तीन आधार हैं– प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव, उनके बाद के 22 तीर्थंकर एवं 24 वें तीर्थंकर भगवान महावीर और उनकी शिष्य परम्परा।[98]

Je.k lLdfr vkj Je

श्रमण परम्परा का आरम्भ जिस संस्कृति से हुआ वह आर्य एवं वैदिक संस्कृति के पूर्व की थी। श्रमण परम्परा में 'समण' शब्द के तीन अर्थ हैं– सम, शम और श्रम। इसका अर्थ है– मानसिक–वैचारिक सन्तुलन व परिपक्वता के साथ सबके प्रति समता और समानता का व्यवहार करते हुए श्रमपूर्वक जीवन जीना। समकी सम्पूर्ण साधना विवेकसम्मत श्रम और पुरूषार्थ पर अवलम्बित है। पुरूषार्थ की इस व्यवस्था को आरंभिक तौर पर जिन्होंने सम्भाला और नेतृत्व किया उन्हें 'कुलकर' कहा गया। कुल यानि समुदाय और कुलकर यानि समुदाय का प्रमुख। कुलकरों को मानव सभ्यता का सूत्रधान माना जाता है। उन्होंने प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं के विधिपूर्वक व विवेकसम्मत उपयोग की कला सिखाई। मानव समाज को कृषि और औद्योगिक संस्था की ओर प्रवृत्त करने में कुलकरों की आरम्भिक भूमिका मानी जाती है। उन्हें ग्राम और नगर संस्कृति का जनक भी माना जाता है।[99]

कुलकर चौदह हुए। विमलवाहन प्रथम और नाभि अन्तिम कुलकर थे। परन्तु महापुराण और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में ऋषभ को पन्द्रहवें कुलकर की संज्ञा दी गई है। आचार्य जिनसेन के अनुसार नाभि ने आहार, भक्ष्याभक्ष्य विवेक और पात्र–निर्माण की कला सिखाई थी।[100] कर्मभूमि के अनुरूप समाज निर्माण के क्रम में कुलकरों ने अनेक नई व्यवस्थाएँ दी। हाकार, मकार और धिक्कार जैसी न्यायसंगत दण्ड–व्यवस्थाएँ भी उस समय शुरू हो चुकी थी।

rhFkZadj dh ek; dk y{eh vkSj jRu&jkf'k dk LoIu

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव नाभिराय के पुत्र थे। माता मरूदेवी की कुक्षी में जब ऋषभ का अवतरण हुआ, तब उनकी माता ने चौदह[101] स्वप्न देखे। प्रत्येक तीर्थंकर की माता उत्तम स्वप्नों का दर्शन करती है। इन स्वप्नों के अन्तर्गत एक स्वप्न होता है– लक्ष्मी। लक्ष्मी समृद्धिदायिनी तथा धन की देवी मानी जाती है। लक्ष्मी का स्वप्न कुल में धन की वृद्धि का सूचक माना जाता है।[102] इसके अलावा अन्य स्वप्नों में रत्न–राशि भी स्पष्टतः धन की प्रतीक है। गज और वृषभ भी सम्पत्ति के सूचक माने जाते रहे हैं। इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है– गजधन, गौधन, बाजधन और रतनधन खान। जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूलि समान। वर्तमान में दुपहिया, चौपहिया वाहन और अन्य यान्त्रिक वस्तुएँ सम्पत्ति की सूची में आ गई हैं।

स्वप्न प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से अनेक बातें स्पष्ट करते हैं। तीर्थंकर अहिंसा और अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर होते हैं। वे लोक में सर्वोत्तम तथा लोक/त्रिलोक के स्वामी होते हैं।[103] जिस कुल में उनका जन्म होता है, वह कुल सभी श्रेष्ठताओं से सम्पन्न होता है। वह आर्थिक और भौतिक दृष्टि से भी सम्पन्न होता है। तीर्थंकर के माता–पिता के तथा स्वयं तीर्थंकर के जीवन में किसी अभाव का कहीं कोई वर्णन नहीं प्राप्त होता है। अन्तिम तीर्थंकर महावीर तो जब माँ त्रिशला के गर्भ में आये तो समूचे राज्य में धन–धान्य और वैभव की अभिवृद्धि होने लगी। इसीलिये उनका नाम वर्द्धमान रखा गया।[104] इसके अलावा आगम ग्रन्थों में एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात कही गई है कि कैवल्य/मोक्ष प्राप्ति जैसी दुर्धर्ष/उत्कृष्ट साधना वही व्यक्ति कर सकता है जिसके शरीर का संहनन वज्रऋषभ नाराच का हो। आत्म कल्याण के लिए शारीरिक

सामर्थ्य की शर्त, कायिक बल की बात, धर्म और अर्थ के शाश्वत सम्बन्ध का स्पष्ट निदर्शन है। लोक प्रचलित सूत्र 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' यहाँ पूरी तरह लागू होता है।

जैन परम्परा में अर्थ–विचार बहुत ही गहन अर्थ लिये हुए हैं। वहाँ अर्थ है, अर्थ का विचार है, आचार है, परन्तु आसक्ति का सर्वत्र निषेध है। फलतः अर्थ के अधिकतम कल्याणमय उपयोग का विवेक वहाँ विद्यमान है।

lE;dn'kZu dh ikfIr nku ls

जैन धर्म का आरम्भ सम्यग्दर्शन से होता है। सम्यग्दर्शन जीवात्मा के लिए अनन्त निशा के बाद की स्वर्णिम भोर है। इस चिर–प्रतीक्षित सुबह के सथ हो अध्यात्म–यात्रा की शुरूआत मानी जाती है। जैन परम्परानुसार तीर्थ के संस्थापक/प्रवर्तक तीर्थंकर कहलाते हैं। आगमों में उनके पूर्व–जन्मों/भवों का उल्लेख/परिचय प्राप्त होता है। इन भवों की गणना सम्यक्–दर्शन प्राप्ति के उपरान्त की जाती है। इसमें यह बताया जाता है किस प्रकार जीवात्मा सामान्य परिस्थितियों में आत्मा की प्रतीति करता हुआ आत्म–विकास के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित हो जाता है। इस महान यात्रा के आरम्भ के साथ कितने सन्दर्भ अर्थ से जुडे हुए हैं, यह यहाँ बताया जा रहा है।

बात प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के प्रथम भव से शुरू करते हैं। आवश्यक निर्युक्ति, आवश्क चूर्णि, आवश्यक मलयगिरी वृत्ति, त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित्र तथा कल्पसूत्र की टीकाओं में ऋषभदेव के तेरह भवों का उल्लेख है। प्रथम भव में उनका जीवन अपर महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठ नगर में धन्ना सार्थवाह होता है।[105] धन्ना के पास विपुल धन वैभव था। देश–विदेश में उसका व्यावसायिक साम्राज्य फैला हुआ था। एक बार धन्ना को वसन्तपुर में व्यवसाय के लिए जाना था। सहयोग की भावना से सैकड़ों व्यक्तियों को उसने अपने साथ लिया। उधर जैनाचार्य धर्मघोष भी उनके शिष्य समुदाय के साथ धर्म प्रचारार्थ वसन्तपुर को जाना चाहते थे। बीहड़ और भयानक मार्ग होने की वजह से वे विहार नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने धन्ना के यात्रा दल के साथ विहार की इच्छा व्यक्त की। आचार्य की इच्छा का सम्मान करते हुए धन्ना ने दल के

सदस्यों को निर्देशित किया कि आचार्य और उनके शिष्यों का पूरा ध्यान रखा जाये। आचार्य ने धन्ना को श्रमणाचार और आहार सम्बन्धी नियमों से अवगत कराया। धन्ना श्रमणचर्या को ध्यान में रखते हुए मुनि–वृन्द की सेवा भक्ति करता है।

वर्षा ऋतु की वहह से मार्ग में सबको ठहरना पड़ा। सब अपनी–अपनी व्यवस्थाओं में लग गये। इस दौरान धन्ना भूलवश आचार्य और उनके शिष्यों का ध्यान नही ंरख पाया। वर्षाकाल की समाप्ति पर एकाएक उसे आचार्य का स्मरण हुआ। उसने भूल के लिए क्षमा याचना करके आचार्य से आहार के लिए अभ्यर्थना की। उत्कृष्ट भावों के साथ धन्ना ने आचार्य और उनके शिष्यों को घृत बहराया। परमोज्जवल भावों के साथ विधिपूर्वक किये गये इस दान से धन्ना दुर्लभ सम्यक्त्व की प्राप्ति कर लेता है। अन्तिम तीर्थंकर महावीर के सम्यक्त्व प्राप्ति की घटना भी आहार दान से जुड़ी हुई है। ऐसी और अन्य घटनाएँ भी शास्त्रों में प्राप्त होती है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि धर्म अर्थ का हेतु है या अर्थ धर्म का?

vFk'kkL= d: vkfn lLFkkid _"kHkno

अर्थ की स्वीकार्यता और अस्वीकार्यता सापेक्ष है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की आयु चौरासी लाख पूर्व थी। बीस लाख पूर्व तक वे कुमारावस्था में रहे तथा तिरेसठ लाख पूर्व तक उन्होंने राज्य का संचालन किया। कुल 83 लाख पूर्व तक वे गृहस्थ/सांसारिक जीवन में रहे। जीवन का लगभग 99 प्रतिशत भाग उन्होंने

समाज–निर्माण, प्रजा–पालन तथा कर्म–युग को नई व्यवस्थाएँ देने में समर्पित किया। कला, लिपि और गणित का ज्ञान सर्वप्रथम उन्होंने कराया। भरत ने बहत्तर कलाओं की शिक्षा प्राप्त की, बाहुबलि ने प्राणी–लक्षण सीखे। आर्थिक साधनो ंके रूप में मान (माण) उन्मान (तोला, मासा आदि) अवमान (गज,फुट इंच आदि) और प्रतिमान (छटांग, सेर, मन आदि) जैसी व्यापारिक कलाएँ भी शुरू हुई।[106] ऋषभदवे आदिकालीन मानव सभ्यता के सूत्रधार थे। वे प्रथम राजा थे। उन्होंने राज–व्यवस्था की स्थापना की, नगर बसाया, मन्त्री–मण्डल बनाया और राज्य की सुरक्षा के लिए समुचित व्यवस्थाएँ की। वे प्रथम समाजशास्त्री थे। उनहोंने खेती–बाड़ी, पाक–विद्या, पात्र निर्माण विद्या आदि की शिक्षाएँ दीं तथा विवाह परम्परा के माध्यम से परिवार व्यवस्था की शुरूआत की। डॉ. जगदीश चन्द जैन के अनुसार प्राकृत में अर्थशास्त्र, राजनीति, कामशास्त्र, निमित्तशास्त्र, अंगविद्या, रत्नपरीक्षण, संगीतशास्त्र आदि पर भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये थे।[107]

vfl efl o d`f"k

सर्वप्रथम ऋषभदेव ने संसार को असि, मसि और कृषि का बोध प्रदान किया। असि यानि राजतन्त्र, मसि यानि अर्थतन्त्र और कृषि यानि प्रजातन्त्र।[108] असि, मसि, कृषि को अर्थशास्त्र की त्रिपदी कहा जा सकता है। मानव सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान, कला–शिल्प, व्यापार–वाणिज्य आदि सभी प्रकार की उन्नतियों की आधारशिलाएँ इस त्रिपदी पर रखी गई। असि में आत्मरक्षा और सुशासन की व्यवस्था है। मसि में लिपि और लेखन–कला का बोध है। विज्ञों के मत में ई.पू. पाँचवीं शताब्दी में लेखन का रिवाज था।[109] राजप्रश्नीय सूत्र में पत्र, पुस्तक, पुस्तक का पुट्ठा, डोरी, गांठ, मषिपात्र, ढक्कन, जंजीर, स्याही, लेखनी, अक्षर आदि का लेखन सामग्री के रूप में उल्लेख है।[110] आगमों में अठारह लिपियों का उललेख भी सुव्यवस्थित लेखन प्रणाली का संकेत है। भगवती सूत्र में ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है– *णमो बंभिए लिवीए।*

fo|k] okf.kT; vkSj f'kYi

आचार्य जिनसेन ने भगवान ऋषभ के समय प्रचलित आजीविका के छः साधनों का उल्लेख किया है। जिनमें असि, मसि और कृषि के अलावा विद्या, वाणिज्य (व्यापार,

व्यवसाय) और शिल्प (कला, हुनर, कौशल) को सम्मिलित किया गया है। उस समय के मानवों को भी 'षट्कर्मजीविनाम्' कहा गया है।[111] प्राप्त साधनों और संसाधनों को अहिंसक तरीकों से कैसे बहुगुणित किया जाय, इसके लिए प्रजापति ऋषभ ने अपनी प्रजा को बीज का रहस्य बताया। उनके बीज के रहस्य में कृषितन्त्र, अर्थतन्त्र से लगाकर आत्मतन्त्र तक की साधनाओं के सार छुपे हुए हें।

ऋषभ प्रथम भाषाविद् थे। उन्होंने उनकी ज्येष्ठ पुत्री ब्राह्मी को अक्षर दिए, अठारह लिपियों का ज्ञान कराया और सम्पूर्ण व्याकरण सिखाया। वे प्रथम गणितज्ञ थे। उन्होंने उनकी दूसरी पुत्री सुन्दरी को अंक दिये, अंक/गणित शास्त्र दिया। कला, शिल्प सब कुछ दिया। विश्व के सारे विषय अक्षरों और अंकों में समाहित हैं।

vkxek e vFk'kkL= d lUnHk

जैन पौराणिक परम्परा में ऋषभ को तत्कालीन अर्थव्यवस्था का संस्थापक माना गया है। जिनसेनाचार्य के अनुसार ऋषभ ने उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत को अर्थशास्त्र और अन्य विद्याओं की शिक्षा दी थी।[112] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार भरत का सेनापति सुषेण अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में निपुण था।[113] प्रश्नव्याकरण से पता चलता हैं कि उस समय 'अत्थसत्थ' अर्थात् अर्थशास्त्र विषयक विषयक ग्रन्थों की रचना होती थी।[114] ज्ञाताधर्मकथांग में राजा श्रेणिक के पुत्र अभय कुमार को अर्थशास्त्र का ज्ञाता बताया गया है। अभयकुमार अर्थशास्त्र के साथ–साथ व्यवसाय नीति और न्यायनीति में भी निष्णात थे। वे राज्य, राष्ट्र, कोष, भण्डार, सेना, वाहन, नगर, महल तथा अन्तःपुर सभी की व्यवस्था देखते थे। वे अपने समय के श्रेष्ठ प्रबन्धक थे।[115] नन्दी सूत्र में बातया गया है कि विनय से उत्पन्न बुद्धि से व्यक्ति अर्थशास्त्र और अन्य लौकिक शास्त्रों में निपुण हो जाता है।[116] बृहत्कल्पभाष्य में बताया गया है कि जीविकोपार्जन के लिए गृहस्थ 'अत्थसत्थ' का अध्ययन करते थे।[117] दशवैकालिक चूर्णि में चाणक्य के अर्थोपार्जन के नियमों का उल्लेख प्राप्त होता है।[118] निशीथ चूर्णि में धनार्जन की प्रक्रिया को 'अट्ठुप्पत्ति' अर्थात् अर्थप्राप्ति कहा गया है।[119]

अर्थशास्त्र के रचयिता आचार्य कौटिल्य (ई.पूर्व तीसरी सदी) से पूर्व अनेक प्राचीन आचार्यों और विद्वानों ने अर्थशास्त्र की रचना की थी, उन सब का सार लेकर कौटिल्य

ने इस अर्थशास्त्र की रचना की है।[120] इससे स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर के समय में अर्थशास्त्र पर एक से अधिक ग्रन्थ विद्यमान थे। अर्थशास्त्र था तो समाज, राजनीति और जीवन के लिए आवश्यक सभी विद्याओं की जानकारी और सुविकसित व्यवस्थाएँ भी थी। आगम साहित्य में वर्णित धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन से यह तथ्य सुस्पष्ट होता है। वसुदवेहिण्डी में उल्लेख है कि कौशाम्बीवासी अगड़दत्त अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के लिए आचार्य दृढ़प्रहरी के पास गया था।[121] प्रो. प्रेम सुन जैन के अनुसार जैन परम्परा/प्राकृत साहित्य में आर्थिक पक्ष का जितना वर्णन है, सम्भवतः अन्य किसी साहित्य में नहीं है।[122] स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में अर्थ पर विशद् विमर्श हुआ था। फलस्वरूप अर्थशास्त्र जैसा एक सम्पूर्ण विषय भी उस समय था।

ifjPNn r'rh;

i|:"kkFk pr|"V; vkj vFk

भारतीय संस्कृति में चार पुरूषार्थ की चर्चा है– अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इनमें अर्थ की अपनी महत्ता है और जीवन के सन्तुलन के लिए चारों में सामंजस्य आवश्यक है। यह सामंजस्य इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति अर्थ का उपार्जन कैसे करता है और उसका उपयोग कैसे करता है। आगम ग्रन्थ हमें धन के सम्यक उपार्जन और सम्यक उपयोग की अनेक दृष्टियाँ और विधियाँ बताते हैं।

pkj i|:"kkFk

मानव प्रकृत्ति में चार तत्व हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। आगम साहित्य में इन चार तत्वों के लिए कहा गया है।[123]

1. dkedke– मानव कामकामी है। काम उसकी प्रकृति का एक तत्व है। मनुष्य पर्याय में मैथुन संज्ञा (कामेच्छा) को प्रबलतम बताया गया है। काम के साथ पुरूषार्थ शब्द प्रयोग पारिवारिक व सामाजिक दायित्वों का बोध कराता है। इस दायित्व बोध से व्यक्ति की काम–साधना निष्काम–साधना की ओर अग्रसर होती है। जीवन के उदात्त लक्ष्य उसके निकट आ जाते हैं या वह उन महान लक्ष्यों के निकट पहुँच जाता है। पुरूषार्थ की सफलता की और सार्थकता उसके उत्कर्ष में है।
2. vRFkykyl,– वह अर्थ का आकांक्षी है। आगम वर्णित चार संज्ञाओं (प्राणियों की मूलभूत इच्छाएँ) में एक है–परिग्रह यानि संग्रह–वृत्ति। अर्थ–पुरूषार्थ मानव की वृत्ति की संपूर्ति में श्रम, कौशल आदि को आवश्यक बनाता तथा उसे नीति–शास्त्र से अनुशासित करता है। अर्थ पुरूषार्थ के साथ आहार संज्ञा की तृप्ति भी जुड़ी है।
3. /kEe l)k– मनुष्य में धर्म की श्रद्धा है। चरित्र की श्रद्धा है। आस्था है। यह आस्था उसे भय से मुक्त होने में सहायक बनती है। काम और अर्थ अस्थायी

रूप से भय–मुक्ति का भरोसा दिलाते हैं, जबकि धर्म चिरस्थायी और आभ्यन्तर भय–मुक्ति की साधना का नाम है।

4. Lkoax– वह मुक्त होना चाहिता है। मुक्ति अभय की शाश्वत अवस्था है।

भारतीय और जैन संस्कृति में मनुष्य की जीवन की दृष्टि से इन्हें चार पुरूषार्थों के रूप में वर्णित किया गया है। प्राकृत कथाओं में इनमें से दो को ही पुरूषार्थ माना है– काम और मोक्ष। शेष दो पुरूषार्थ इनकी प्राप्ति में सहायक बताये गये हैं। धर्म पुरूषार्थ को मोक्ष और अर्थ पुरूषार्थ को काम के लिए सहायक बताया गया है।[124]

/ke vkj vFk

मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य है, साध्य है। धर्म उसे प्राप्त करने के लिए साधन स्वरूप है। फिर, मोक्ष स्वतन्त्र पुरूषार्थ कैसे? वस्तुतः धर्म पुरूषार्थ का उत्तरार्द्ध मोक्ष पुरूषार्थ है। इस प्रकार मोक्ष पुरूषार्थ की साधना में अर्थ और काम गौण हो जाते हैं। चारों पुरूषार्थों में अर्थ साध्य स्वरूप तो नही है, परन्तु आधारभूत एवं सहायक है। धर्म पुरूषार्थ के पूर्वार्द्ध में जीवन की जो साधना की जाती है, उसमें अर्थ और काम की संयमित साधना सम्मिलित है। परन्तु अणगार–धर्म में अर्थ और काम पुरूषार्थ निषिद्ध हैं। आगार–धर्म की आराधना में अर्थ से जीवन की वे समस्त सुविधाएँ और सामग्री जुटाई जाती है, जिसकी आवश्यकता शेष तीनों पुरूषार्थों के लिए होती है।

dke vkj vFk

जैन परम्परा में चारों पुरूषार्थों में सन्तुलन के लिए बार–बार निर्देश किया गया है। मोक्ष पुरूषार्थ साध्य रूप होने से तथा धर्म पुरूषार्थ सहायक रूप होने से अर्थ पुरूषार्थ कभी अनर्थ का कारण और काम पुरूषार्थ कभी अनाचार का कारण नहीं बन सका। अर्थ और काम पर यह नियन्त्रणी जीवन, समाज और देश के लिए वरदान बन गया। अर्थ और काम मनुष्य को मौज–मस्ती और प्रत्यक्ष सुख प्रदान करते हैं इसलिए वह अर्थ और काम की ओर तुरन्त प्रवृत्त हो जाता है। यदि अर्थ और काम पर धार्मिक, नैतिक और सामाजिक नियंत्रण नहीं हो तो परिवार और समाज के मूलाधार ही खिसक जायेंगे।

ek{k vkj vFk

पुरूषार्थ चतुष्टय में अर्थ पुरूषार्थ के आधारभूत स्थान से जीवन की सम्पूर्ण साधना में अर्थ की महत्ता सुनिश्चित होती है। अर्थ के साथ पुरूषार्थ शब्द कर्म, कौशल, कर्तव्य और श्रम की ओर संकेत है। धर्म और मोक्ष पुरूषार्थ के द्वारा अर्थोपार्जन में न्याय–नीति से शर्त की साधन शुद्धि की प्रबल प्रेरणा दी गई है।

pkjk i|:"kkFk d vUr lEcU/k

पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रमुखतम और आधारभूत पुरूषार्थ है ही, धार्मिक क्षेत्र में भी अर्थ ने खासा स्थान बना लिया। जिस अर्थ को धर्म के लिए सहायक माना गया, उस अर्थ की निर्विघ्न और निर्दोष प्राप्ति के लिए धर्म को भी सहायक माना गया। लोग आज भी अर्थ प्राप्ति के लिए विशेष धर्म साधनाएँ, तप, अनुष्ठान, मन्त्र जाप आदि किया करते हैं। धर्म का फैलाव भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दिशाओं में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार अर्थ और धर्म अन्योन्याश्रित हो जाते हैं और काम और मोक्ष की साधना इन पर निर्भर हो जाती है। आगम ग्रन्थों के अनेक पात्र आत्म–कल्याण के लिए धर्म करते हैं और जीविका तथा परिवार के भरण–पोषण के लिए जान जोखिम में डालकर भी अर्थोपार्जन के लिए पुरूषार्थ करते हैं। देश–देशान्तर की यात्रा करते हैं। सार्थवाह व्यापार के माध्यम से लोगों में सामुदायिक भावना जगाने और संयुक्त साहस से लाभ कमाने के लिए प्रेरित करते हैं।

न्यायपूर्ण अर्थ की इसी अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए सोमदेवसूरि कहते हैं कि अर्थ के बिना धर्म और काम संभव नहीं, इसलिए अर्थोपार्जन सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये।[125] उनका कहना है 'जो मनुष्य काम और अर्थ की उपेक्षा करके केवल धर्म की ही सतत् उपासना करता है, वह पके हुए खेत को छोड़कर जंगल को काटता है।[126] सुखी और सन्तुलित जीवन के लिए मानव धर्मिकता के साथ–साथ धनोपार्जन करे और व्यय करे तथा अपने लौकिक सुख को कायम रखता हुआ लोकोत्तर सुख की साधना करे।[127] चूंकि अर्थ से सारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं इसलिये व्यक्ति को अप्राप्त धन की प्राप्ति, प्राप्त धन की रक्षा तथा रक्षित धन की वृद्धि करनी चाहिये, जिससे वह धनवान

हो सके।[128] अर्थ होगा तो उसे दान के रूप में विसर्जित और भलाई के कार्यों में विनियोजित किया जा सकेगा।

vFk iq:"kkFk dh egÙkk

पउमयरियं में धन का महत्व बताते हुए कहा गया है कि जिसके पास धन है वहीं सुखी है, पण्डित है, यशस्वी है, महान है, धर्म भी उसके अधीन है। अहिंसा के उपदेश वाले धर्म के पालन में भी धनवान ही समर्थ हो सकता है।[129] वसुदवेहिण्डी में कहा गया है कि अर्थ से ही सारे कार्य सम्भव होते हैं। धन होने से ही लोग आदर करते हैं। अल्प धन जानकार आत्मीय भी मुँह मोड़ लेते है, परायों का तो कहना ही क्या?[130] कुवलयमालाकहा में स्थाणु और मायादित्य का संवाद अर्थ पुरूषार्थ की महत्ता और अर्थ पुरूषार्थ में अनिन्दित (अहिंसक) साधनों से धनोपार्जन की प्रेरणा देता है।[131] हरिभद्रसूरी कहते हैं कि अर्थरहित पुरूष को पुरूष नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि न तो वह यश प्राप्त कर सकता हे, और न सज्जनों की संगति और न ही वह परोपकार कर सकता है।[132] जयवल्लभ कहते है कि धनहीन का कोई आदर नहीं करता है।[133]

o"kE;&fuokj.k e iq:"kkFk

डॉ. सागरमल जैन चारों पुरूषार्थों को वैषम्य निराकरण के रूप में प्रस्तुत करते है[134]–

fo"kerk,¡	fo"kerk dk fujkdj.k dk fl)kUr	ifj.kke	lEcU/k
आर्थिक	अपरिग्रह	साम्यवाद (परिग्रह–परिमाण)	अर्थ–पुरूषार्थ (सम–वितरण)
समाजिक	अहिंसा	शान्ति व अभय (अयुद्ध)	धर्म–पुरूषार्थ (नैतिकता)
वैचारिक अनाग्रह	(अनेकान्त)	वैचारिक समन्वय एवं समाधि	धर्म व मोक्ष पुरूषार्थ
मानसिक	अनासक्ति	आनन्द (वीतरागावस्था)	काम व मोक्ष पुरूषार्थ

एक अर्थ–पुरूषार्थ के डाँवाडोल होने से अन्यान्य पुरूषार्थ खतरे में पड़ जाते हैं। चारों पुरूषार्थों में अर्थ की सामर्थ्यवान सत्ता और महत्ता निर्विवाद और असन्दिग्ध है। परन्तु अर्थ का प्रभाव और अर्थ का अभाव दोनों ठीक नहीं है। अर्थ के प्रति एक सम्यक् दृष्टिकोण होना चाहिये। आगम में उसी सम्यक् दृष्टिकोण का प्रतिपादन है।

vFk dk mi;kx dh nf"V;k

यह निर्विवाद है कि जैन परम्परा ने अहिंसा पर सर्वाधिक बल दिया है। सर्वोच्च आध्यात्मिक ऊँचाई के लिए सम्पूर्ण अहिंसा अनिवार्य है। जीवन की सुदीर्घ यात्रा में अहिंसा की बहुआयामी और सर्वव्यापी आवश्यकता है। परिवार, समाज, आजीविका आदि क्षेत्रों में भी अहिंसा के विचार को केन्द्र में रखा गया। अहिंसा के केन्द्र में रहने से सर्वोदय–विचार और साधन–शुद्धि जैसी बातें आगम युग में ही मूर्त रूप ले चुकी थी। जैनाचार में धनार्जन में न्याय नीति और अहिंसा का जो विवके प्रदान किया गया हे, धन के उपयोग में भी वैसे ही गहरे विवके का निर्देश किया गया है। कभी–कभी लगता है कि धन का आदर्श उपयोग, धनार्जन से भी कठिन कार्य है। जैन परम्परा का आचार शास्त्र धन के सर्वोत्तम और विवेकसम्मत उपयोग का सख्त और सूक्ष्म निर्देश करता है।

^n0o* 'kCn dk vFk

प्राकृत साहित्य में एक शब्द आया है– दव्व (द्रव्य/धन)। इसका अर्थ करते हुए बताया गया कि वह द्रवित होता रहे; एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलता रहे।[135] प्रवाहमान और नीर स्वच्छ तो होता ही है, वह देश देशान्तर को भी लाभान्वित करता है, सरसब्ज बनाता है। उसके नैसर्गिक कल–कल नाद से सम्पूर्ण प्रकृति पुलकित हो जाती है। बहती सरिता समता, गतिशीलता और परोपकार का अमर सन्देश देती है। इसी प्रकार समाज में अर्थ की प्रवाहशीलता का महत्व है। भगवान महावीर के अर्थ के संविभाग और असंग्रह के उपदेश में व्यष्टि और समष्टि का समग्र हित सन्निहित है।

vFkki;kx dh rhu nf"V;k

सामन्यतः धन की तीन गतियाँ गताई गई है– दान, भोग और नाश। इनमें दान और भोग धन के उपयोग की श्रेणियाँ है। जिस धन का उपयोग नहीं किया जाता है,

उपयोगकर्ता की दृष्टि से उसकी परिणति नाश है। भगवान महावीर के प्रमुख श्रावक आनन्द ने अपनी विपुल धन–सम्पदा को बराबर चार हिस्सों में बाँट रखा था।[136]

1. एक विभाग व्यापार, व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योग में।
2. एक विभाग से आश्रितों का भरण–पोषण, शिक्षा–दीक्षा तथा कौटुम्बिक दायित्व।
3. एक विभाग से अतिथि–सेवा, दान, परोपकार, परमार्थ आदि तथा
4. एक विभाग निधि (कोष) के रूप में सुरक्षित।

इस दृष्टि से धन की चार गतियाँ फलित होती है– निवेश, दान, भोग और नाश।

nku

जैन ग्रन्थों में दान को श्रावक का आवश्यक कर्तव्य बताया गया है।[137] केवल किसी को कुछ दे देना ही दान नहीं है, अपितु उसमें द्रव्य क्षेत्र, काल और भव का विचार भी होना चाहिये। भगवान महावीर कहते हैं– समनोज्ञ व्यक्ति समनोज्ञ (सुविहित) साधु को अशन, पान, खादिम, स्वादिम अर्थात् आहार और वस्त्र, पात्र, शैया प्रदान करें, परम आदर पूर्वक उसकी वैयावृत्ति करें तो वह धर्म का आदान करता है।[138] इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर से पूछते हैं– भगवन्! जे श्रमणोपासक (सद्गृहस्थ) यदि तथारूप श्रमण या माहण को एषणीय आहार देता है, तो उसे क्या लाभ होता है? भगवान फरमाते हैं– वह एकान्त कर्ज निर्जरा (धर्म प्राप्ति) करता है, किन्तु किंचित भी पाप–कर्म नहीं करता है।[139] स्वामी कार्तिकेय कहते हैं कि –जो लक्ष्मी पानी में उठने वाली तरंगों के समान चंचल है, दो–तीन दिन ठहरने वाली है, उसका सदुपयोग यही है कि दयालु होकर योग्य पात्र को दान दिया जाये। ऐसा नहीं करके जो व्यक्ति केवल लक्ष्मी का संचय करता रहता है, उसे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट पात्रों में दान नहीं करता है; वह अपनी आत्म–वंचना करता है। उसका मनुष्य जन्म पाना व्यर्थ है।[140] सुपात्रदान की महिमा का बखान करते हुए आचार्य राजेन्द्र सुरीश्वर कहते हैं– मुनिवरों के दर्शन मात्र से दिन में किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है, तो फिर जो उन्हें दान देता है, उसे जगत में ऐसी कौनसी वस्तु है जो प्राप्त न हो। यहाँ तक सम्यक्त्व की उपलब्धि भी दान से प्राप्त होती है।[141] धन, साधनों और संसाधनों के उपयोग में सुपात्रदान को उत्कृष्ट दान को सुपात्र दान बताया गया है।

सुपात्रदान को उत्तम दान बताने के पीछे मुख्य कारण यह है कि सुपात्रदान अहिंसा, संयम और तप की आराधना में प्रबल निमित्त है। धन का उपयोग इस प्रकार होना चाहिये जिससे अहिंसा का विस्तार हो और समतामूलक समाज रचना में वह निमित्त बन सके। किसी भी प्रकार से धन के उपयोग में यह विवेक दृष्टि हो कि, अहिंसा की परंपरा को आगे–से–आगे बढ़ती रहे। इसीलिए तीर्थंकरों ने अनुकम्पा दान का मुक्त समर्थन किया है। ठाणांग[142] में दस प्रकार के दानों में अनुकम्पा को प्रथम बताया गया है। अनुकम्पा मन की उस उच्चतर अवस्था का नाम है, जहाँ व्यक्ति दूसरों के दुख से अनुकम्पित हो जाए। किसी के दुख से द्रवित/अनुकम्पित होकर उसकी मदद करना मानवोचित कर्तव्य है। अनुकम्पा दान का लक्षण बताते हुए आचार्य उमास्वाति कहते हैं– अनुकम्पा दान वह है जो दयनीय, अनाथ, दरिद्र, संकटग्रस्त, रोगग्रस्त एवं शोकपीड़ित व्यक्ति को अनुकम्पा लाकर दिया जाता है।[143] अनुकम्पा को व्यवहार सम्यक्त्व का एक लक्षण बताया गया है। तेवीसवें तीर्थकर भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य केशी श्रमण राजा प्रदेशी का हृदय परिवर्तित कर देते है। राजा प्रदेश व्रत ग्रहण करता है। एक व्रत के अन्तर्गत प्रदेशी ने राज्य सम्पदा के चार भाग किये। उनमें से एक भाग राज्य के दीन–दुखी, अनाथ और जरूरतमन्द व्यक्तियों के कल्याण के लिए रखने का संकल्प किया।[144] इस प्रकार परमार्थ और परोपकार में धन के उपयोग की महिमा से ग्रन्थ भरे पड़े है। विधि और विवेक से दिये गये दान अथवा किये गये सहयोग के अनेक आर्थिक आयाम हैं।

fuos'k vkj 0;olk; foLrkj=

धन को व्यापार, वाणिज्य और व्यवसाय में लगाना निवेश है। इसमें बचत और लाभ तत्व भी समाविष्ट रहते हैं। अतिरिक्त धन से व्यावसायिक पूंजी में बढ़ोतरी करना, नया व्यवसाय आरम्भ करना, नव रोजगार सृजन तथा रोजगार के लिए आर्थिक सहयोग आदि निवेश के विभिन्न रूप है। भगवान महावीर के प्रमुख श्रावक आनन्द ने अपने धन का एक चौथाई हिस्सा चार करोड़ स्वर्ण व्यापार में लगा रखा था।

दान की चर्चा के अन्तर्गत अपने साधनों और संसाधनों के संविभाग को श्रावक का प्रमुख कर्तव्य बताया गया है। दान का तात्पर्य किसी को कुछ देना भर नहीं, अपितु

पारस्परिकता के नियम का विवेकसम्मत अनुपालन है। आजीविका व्यक्ति के सांसारिक जीवन का धरातल है। वह धार्मिक/आध्यात्मिक जीवन के लिए भी आवश्यक है।

रोजगार के लिए योग्य व्यक्ति को आर्थिक सहयोग करना धन का श्रेष्ठ उपयोग है। इससे सामाजिकता मजबूत बनती है तथा समाज सम्पन्न होता है। इसमें देने और लेने वाले दानों पक्ष निर्भर भी रहते हैं और उपकृत भी होते हैं। पारस्परिक निर्भरता और पारस्परिक उपकार का दृष्टिकोण ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्''[145] से फलित होता है। आर्थिक–सामाजिक समता, सहअस्तित्व, शान्ति, सौहार्द्र और मानवता की दृष्टि से यह सूत्र अत्यन्त मूल्यवान है।

सहयोग के अलावा अपने व्यवसाय का विस्तार करना भी धन के उपयोग की एक दृष्टि है। व्यवसाय का विस्तार रोजगार के नये अवसर पैदा करता है। उद्यमशीलता और पूंजी की उपलब्धता सब जगह नहीं होती। व्यवसाय या बड़ा व्यवसाय करना सबके वश की बात नहीं है। ऐसे में नव–उद्यम अनेक व्यक्तियों के लिए रोजगार का आधार बन जाता है। उपासकदशांग के कोश–वर्गीकरण का नीतिवाक्यामृत में समर्थन किया गया है और बताया गया है कि धन से ही धन की वृद्धि होती है। मनुष्य को अपनी आय का चौथाई भाग पूंजी वृद्धि हेतु, चौथाई भाग व्यापार करने हेतु, चौथाई उपभोग और चौथाई आश्रितों के भरण पोषण के लिए निर्धारित करना चाहिये। इस प्रकार ग्रन्थों में जगह–जगह व्यापार–वृद्धि और विस्तार की पर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

सन्दर्भ

1. मालवणिया, दलसुख (प.) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग–1, प्रस्तावना पृ.–13
2. महाप्रज्ञ, आचार्यः महावीर का अर्थशास्त्र – पृ.–25
3. कन्हैया लाल 'कमल', उपाध्याय मुनि : जैनागम निर्देशिका पृ.–9
4. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से 1961 में प्रकाशित पृष्ठ–36
5. जैन, हीरालाल (डॉ.) भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान– पृ. 55
6. कन्हैया लाल 'कमल', उपाध्याय मुनि : जैनागम निर्देशिका पृ. 9–10 एवं मुनि पुण्यविजय सम्पादित नन्दीचूर्णि पृ. 8–9
7. जैन, सागरमल (प्रो.) का लेख 'आगम साहित्य में प्रकीर्णकों का स्थान, महत्व, रचनाकाल एवं रचयिता' प्रकीर्णक साहित्य : मनन और मीमांसा, प्रकाशक– आगम अहिंसा–समता एवं प्राकृत संस्थन पृ.–1
8. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) 'प्राकृत साहित्य का इतिहास' पृ. 33–34 एवं 'आगम साहित्य मनन और मीमांसा' पृ.–7
9. आचारांग चूर्णि 5/185 (ब्राह्मणों के प्राचीन ग्रन्थ भी वेद कहे जाते हैं)
10. समवायांग प्रकीर्णक समवाय सूत्र 88, नन्दीसूत्र 40 (बौद्धों के प्राचीन शास्त्र को भी त्रिपिटक कहा जाता है)
11. आचारांग निर्युक्ति, गाथा–16
12. 1 से णं अंगट्ठयाए पढमे– समवायांग प्रकीर्णक समवाय सूत्र–89
13. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका – पृ. 1
14. मुनि कन्हैयालाल 'कमल' उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका – पृ. 63
15. मुनि कन्हैयालाल 'कमल' उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका – पृ. 97
16. जैन, जगदीशचनद्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ.–62
17. दोशी, बेचरदास, जैन साहिय की सांस्कृतिक भूमिका, अध्याय पंचम पृ.–36
18. जैन, प्रेम सुमन (प्रो.) जैन साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, अध्याय पंचम पृ.– 36
19. मुनि कन्हैयालाल 'कमल' उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका – पृ. 261
20. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.– 75
21. दोशी, बेचरदास (पं.) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग–1, प्र.–220–221
22. मुनि कन्हैयालाल 'कमल' उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ. 467
23. स्थानांग वृत्ति पत्र 483
24. देवेन्द्र मुनि (आचार्य) आगम साहित्य मनन और मीमांसा, पृ. 163
25. पदग्गं दोणउतिलक्खा सोलय य सहस्सा। नन्दी–चूर्णि, पृ.183
26. द्विनवतिर्लक्षणाणि षोडश च सहस्राणि। – समवायांगवृत्ति। पृ. 217
27. पण्हवायरणं णाम अंगं तेणउउदिलक्ख – सोलस सहस्सपदेहिं। –धवला, भाग–1, पृष्ठ–104
28. देवेन्द्र मुनि (आचार्य), आगम साहित्य मनन और मीमांसा, पृ. 186
29. हस्तीमलजी, आचार्य, जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग–2 में से 'जिनवाणी' अप्रेल 2002 में प्रकाशित लेख पृ.–241
30. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.–98
31. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागाम निर्देशिका, पृ. –545
32. शास्त्री, नेमिचन्द्र (डॉ.) प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–180

33. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ. –545
34. शास्त्री, नेमिचन्द्र (डॉ.) प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ – 180
35. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ. 565
36. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. – 112
37. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. – 113
38. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ.–623
39. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ.–671
40. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ.–729
41. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भा–2 (लेखक– डॉ जैन और डॉ मेहता), पृ.–105
42. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ.–745
43. शास्त्री नेमिचन्द्र (डॉ.) प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ– 185–186
44. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग–2 (डॉ जगदीशचन्द्र जैन और डॉ. मोहनलाल मेहता) पृ.–129
45. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.–163
46. कापड़िया, एच.आर. (प्रो.) दि कैनानिकल लिटरेचर ऑफ दि जैनाज़ (1941) पृ. 44–45
47. मेहता, मोहनलाल (डॉ.) जैन दर्शन, पृ.–89 (वर्तमान में स्थानकवासी और तेरापंथी परम्पराएँ इन्हें मूल सूत्र मानती हैं)
48. शास्त्री, नेमिचन्द्र (डॉ.) प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–192
49. मुनि कन्हैयालाल 'कमल' उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ. –757
50. देखें, श्री मलयागिरीया नन्दीवृत्ति पत्र 65, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.–188, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ. –199 आदि।
51. सिंघवी, सुखलालजी (पं.) तत्वार्थ सूत्र पृ.–8
52. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. –190
53. कुन्दकुन्द, आचार्य, प्रवचनसार 3/16
54. कापड़िया, एच.आर. (प्रो.) दि कैनानिकल लिटरेचन ऑफ दि जैनाज़ (1941) पृ. 36
55. मालवणिया, दलसुख (पं.) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग एक, प्रस्तावना पृ.–54, प्रकाशक–पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान (जैनाश्रम)
56. कापड़िया एच.आर. (प्रो.) दि कैनानिकल लिटरेचर ऑफ दि जैनाज़ (1941) पृ.–39
57. देवेन्द्र मुनि (आचार्य) आगम साहित्य : मनन और मीमांसा पृ.–347
58. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.–157
59. देवेन्द्र मुनि (आचार्य), आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ. 357–358
60. मुनि कन्हैयालाल 'कमल', उपाध्याय, जैनागम निर्देशिका, पृ.–877
61. नगरा, मुनि, आगम ओर त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ.–486 एवं डॉ. कैलाश चन्द्र शास्त्री का प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.–197
62. देखें 'प्रकीर्णक साहित्य : मनन और मीमांसा' सम्पादक – प्रो. सागरमल जैन और डॉ. सुरेश सिसोदिया। पृ. 55
63. जैन, सागरमल एवं कोठारी सुभाष (डॉ.) आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर से प्रकाशित पुस्तक 'देविन्दत्थओ' की विस्तृत भूमिका। पृ. 52
64. मरण समाधि गाथा पृ. 661 से 663

65. दोशी, बेचरदास, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग–1, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, पृ. 27। आगम अहिंसा–समता एवं प्राकृत शोध संस्थान, उदयपुर से प्रो. सागरमल जेन, डॉ. सुभाष कोठारी व डॉ. सुरेश सिसोदिया के सम्पादन में प्रकीर्णकों का प्रकाशन हुआ है।
66. जैन, प्रेमसुमन (डॉ.) 'प्रकीर्णक साहित्य का कथात्मक वैशिष्ट्य' 'प्रकीर्णक साहित्य मनन और मीमांसा' पृ–87
67. देवेन्द्र मुनि (आचार्य), आगम साहित्य : मनन और मीमांसा' पृ.–404
68. जैन, सागरमल (प्रो.) 'प्रकीर्णक साहित्य मनन और मीमांसा' (आगम संस्थान, उदयपुर द्वारा प्रकाशित) में प्रकाशित लेख– 'प्राचीनतम प्रकीणक : ऋषिभाषित'। पृ. 70
69. मेहता, मोहनलाल (डॉ.) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग–दो, पृष्ठ–68
70. मेहता, मोहनलाल (डॉ.) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग–दो, पृष्ठ–129
71. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.–195–196
72. जैन जिनेन्द्र (डॉ.) जैनागमों का व्याख्या साहित्य, जिनवाणी, जैनागम विशेषांक, अप्रेल–2012, पृष्ठ–475
73. जैन जिनेन्द्र (डॉ.) जैनागमों का व्याख्या साहित्य, जिनवाणी, जैनागम विशेषांक, अप्रेल–2012, पृष्ठ–482
74. देवेन्द्र मुनि (आचार्य), आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ–489
75. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–234
76. देखें प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–261 एवं आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृष्ठ–508
77. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'प्राकृत भारती' में प्राकृत भाषा एवं साहित्य, लेख, पृ. 5–6
78. जैन, बलभद्र (पं.) का लेख 'मूल संघ की आगम–भाषा शौरसेनी' 'शौरसेनी आगम–साहित्य की भाषा का मूल्यांकन' पुस्तिका में प्रकाशित, पृ. 1–3
79. हीरालाल, सिद्धान्ताचार्य (पं.) शौरसेनी आगम–साहित्य की भाषा का मूल्यांकन (कुन्दकुन्द भाती द्वारा प्रकाशित) पृ.–8
80. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. 272
81. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.), प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.–274 एवं देखें, डॉ. हीरालाल जैन लिखित षट्खण्डागम की प्रस्तावना, भाग–प्रथम
82. शास्त्री, नेमीचन्द (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ 204–205
83. शास्त्री, नेमीचन्द (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ 213
84. शास्त्री, नेमीचन्द (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ 217–18
85. मालवणिया, दलसुख (पं.) आगमयुग का जैन दर्शन, पृ.–231–232
86. देवेन्द्र मुनि (आचार्य) 'आगम साहित्य : मनन और मीमांसा' पृ. 580–81
87. शास्त्री, नेमीचन्द्र (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ 226–227
88. शास्त्री, नेमीचन्द्र (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ 229
89. कुन्दकुन्द, आचार्य, प्रवचनसार पृ. 187
90. शास्त्री, नेमीचन्द्र (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ 232 एवं आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ.–590
91. प्रेमी, फूलचन्द जैन (डॉ.) मूलाचार एक परिचय, जिनवाणी जैनागम विशेषांक, अप्रेल–2002, पृष्ठ–495
92. शास्त्री, कैलाशचन्द्र (पं.) भगवती आराधना, जिनवाणी जैनागम विशेषांक, अप्रेल–2002, पृष्ठ–495
93. मालवणिया, दलसुख (पं.) आगम युग का जैन दर्शन, पृ.–24

94. जैन, प्रेमसुख (डॉ.) जैसन साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, षष्टम अध्याय, प्राचीन जैन साहित्य में गणितीय शब्दावली, पृ. 45 एवं डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री की पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वागमय का अवदान' (दूसरा खण्ड) के पृ. 355 व 379 पर जैन गणित सम्बन्धी लेख अवलोकनीय।
95. शास्त्री, नेमिचन्द्र (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ 161—162
96. शास्त्री, नेमिचन्द्र (डॉ.) 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनातम्क इतिहास' पृष्ठ 246
97. मालवणिया, दलसुख (पं.) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग—1, प्रस्तावना, पृ.—30
98. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'जैन धर्म और जीवन मूल्य' अध्याय प्रथम 'श्रमण धर्म की परम्परा' पृष्ठ—4
99. देवन्द्र मुनि (आचार्य) ऋषभदेव एक परिशीलन, पृ.123
100. जिनसेन (आचार्य) महापुराण 3/204
101. दिगम्बर परम्परा के अनुसार सोलह स्वप्न।
102. 'अभिसेयदाम' कल्पसूत्र—5
103. समायिक सूत्र में नमोत्थुणं का पाठ एवं भक्तामर स्तोत्र श्लोक 26 व 31
104. कल्पसूत्र (सूत्र 103)
105. आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति, आवश्यक मलयगिरी वृत्ति, त्रिषष्टि 1/1/36
106. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'जैन धर्म और जीवन मूल्य' अध्याय प्रथम 'श्रमण धर्म की परमपरा' पृष्ठ—3
107. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) प्राकृत साहित्य का इतिहास, भूमिका पृ.4
108. जैन, नेमीचन्द (डॉ.) 'भगवान ऋषभनाथ' पृष्ठ—7
109. ओझा, गौरी शंकर (डॉ.) भारतीय लिपि माला, पृ.—2
110. राजप्रश्नीय सूत्र 131, निशीथ भाष्य 12/400, हरीभद्रीय आवश्यक टीका, पृ.284
111. असिर्मषिः कृषिर्विद्याा वाणिज्यं च शिल्पमेव च। कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवन हेतवः। — आदिपुराण 16/179 एवं 39/143
112. आदिपुराण 16/119
113. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति 1/5
114. प्रश्नव्याकरण 5/4
115. ज्ञाताधर्मकथांग 1/11
116. नन्दीसूत्र, गाथा 74
117. बृहत्कल्पभाष्य, भाग 1
118. दशवैकालिका चूर्णि, पृ —102
119. निशीथ चूर्णि, भाग 4 गाथा 6397 (अट्ठुपत्ति ववहारा)
120. पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थ शास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संह्रत्येकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्। — कौटिलीय अर्थशास्त्र 1.1
121. ईस अत्थसत्थ रहचरियसिक्खा कुसले आयरिउ। वसुदेवहिण्डी— संघदासगणि, भाग 1
122. जैन, प्रेमसुमन (डॉ.) जैन धर्म और जीवन मूल्य, अध्याय पंचदश, पृ.—125
123. महाप्रज्ञ, आचार्य, महावीर का अर्थशास्त्र पृ.—15 एवं देखें, 'चार पुरूषार्थ' — मुनि चन्द्रशेखरविजय; कमल प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद
124. जैन, प्रेमसुमन (प्रो.) जैन धर्म और जीवन मूल्य, अध्याय दशम, पृ.—72
125. 'धर्मकामयोरर्थमूलत्वाम्' — नीतिवाक्यामृत 2/16ए 17
126. 'य कामार्थवुपहत्य धर्ममेवोपास्ते सः पक्वक्षेत्रं' परित्यजारण्यं कर्षति' 1/47
127. 'य कामार्थवुपहत्य धर्ममेवोपास्ते सः पक्वक्षेत्रं' परित्यजारण्यं कर्षति', 1/48

128. 'यतः सर्वप्रयोजन सिद्धिः सोर्थः' एवं 'अलब्धलाभो लब्ध परिरक्षणं रक्षित परिवर्धनम् चार्यानुबन्ध' वही 2/1ए 2/3 एवं देखें 'नीतिवाक्यामृत में रानीति' डॉ. एम.एल. शर्मा, (भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित)

129. विमलसूरि पउमचरिउं 35/66,67

130. वसुदेवहिण्डी 1/34

131. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन कथा साहित्य विधि रूपों में, पृ.–10

132. समराइच्चकहा, 4/246

133. वज्जालग्ग, गाथा 143

134. जैन, सागरमल (डॉ.) 'जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन' पृष्ठ– 503–504

135. जैन, प्रेम ुसमन (प्रो.) जैन धर्म और जीवन मूल्य, अध्याय पंचदश, पृ.–126

136. उपासकदशांग– आनन्द अधिकार एवं राजप्रश्नीय सूत्र – प्रदेशी अधिकार

137. दाणं पूजा मुक्खं सावय धममे य सावयातेण विणा ... रयणसार

138. आचारांग प्रथम श्रुत, 8 वाँ अध्ययन, 2 उद्देशक

139. भगवती सूत्र 8/6

140. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा 4–5

141. अभिधान राजेन्द्र कोष गा–103

142. ठाणांग, स्थान 10, सूत्र 475

143. पुष्कर मुनि, उपाध्याय, जैन धर्मों में दान एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ. – 244

144. पुष्कर मुनि, उपाध्याय, जैन धर्मों में दान एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ.– 245

145. तत्वार्थ सूत्र 5/1

f}rh; v/;k;

tu ijEijk e vFkkiktu

ifjPNn iFke

vFkkiktu d iej[k lk/ku

- अर्थोपार्जन में पर्यावरणीय दृष्टि
- अर्थोपार्जन के आवश्यक तत्व
- वाणिज्यिक कौशल

ifjPNn f}rh;

epk o fofue; dh fLFkfr

- पारस्परिक निर्भरता का सिद्धान्त
- मुद्रा का आविष्कार, जैन सिक्के
- वित्तीय प्रणालियाँ

ifjPNn r'rh;

jktLo ,o dj i.kkfy;k

- राजस्व की आय के स्त्रोत
- करों के प्रकार
- शासन व्यवस्था

v/;k; f}rh;

tu ijEijk e vFkkiktu

जैन धर्म अपनी मौलिक स्थापनाओं और मान्यताओं के लिए जाना जाता है। साधन शुद्धि की जो बात बीसवीं सदी में महात्मा गांधी ने कही, उसके प्रेरक सूत्र हमें आगम ग्रंथों में मिलते हैं। मानव अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए मूलतः प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर रहता आया है। जैन और अहिंसा की दृष्टि से धनोपार्जन के साधनों में यह विशेष ध्यान रखा जाता है कि पर्यावरण को कम से कम क्षति हो। साधनों का प्रयोग विवेकसम्मत होना चाहिए जिससे पर्यावरण और समाज का नुकसान नहीं पहुँचे।

ifjPNn iFke

vFkkiktu d iell[k lk/ku

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भूमि, श्रम, पूंजी और प्रबन्ध को अर्थोपार्जन के साधन के रूप में बताया गया है। इसी संदर्भ में यह विवरण प्रस्तुत किया है कि आगम ग्रंथों में कहाँ क्या है? भूमि के अन्तर्गत वन संपदा, खनिज संपदा, और जल संपदा को लिया है। मूलतः अर्थशास्त्र होने से इन ग्रंथों में इन संपदाओं का अर्थशास्त्रीय विवेचन भले ही बहुत अधिक ना हो, परन्तु जो भी विवरण मिलता है उसके अर्थशास्त्रीय निष्कर्ष हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं।

vFkkiktu e lk;koj.kh; nf"V

जैन ग्रन्थों में छः लेश्याओं[1] का वर्णन मिलता है। उनमें प्रथम तीन कृष्ण, नील आर कपोल लेश्याओं का अप्रशस्त कहा गया है तथा अन्तिम तीन पद्म, तेजा और शुक्ल लेश्याओं को प्रशस्त। लेश्याओं के क्रम को समझने के लिए एक रोचक उदाहरण दिया गया है। छः यात्री होते हैं, उन्हें भूख लगती है। भोजन की तलाश करते हुए फलों से लदा हुआ एक जामुन का पेड़ उन्हें दिखाई पड़ता है। कृष्ण लेश्या वाला फल प्राप्ति के लिये पेड़ को जड़मूल से उखाड़ने की बात करता है। नील लेश्या वाला

कहता है है कि जड़ से उखाड़ने का क्या फायदा है? पेड़ की शाखाओं को काटने से ही काम पूरा हो जायेगा। इस पर तीसरा कहता है कि जिन डालियों पर फल लगे है उनको काटना ही पर्याप्त है, इसे कपोत लेश्या वाला कहा जायेगा। पद्म लेश्या वाला कहता है– फलयुक्त टहनियां तोड़ा ही काफी है तो तेजा लेश्या वाले ने सिर्फ फल तोड़कर खा लेने का सुझाव दिया। इस पर शुक्ल लेश्या वाला बोलता है कि फल को तोड़ने की भी क्यों आवश्यकता है? वृक्ष के नीचे जो फल सहजरूप से गिरे हैं, उनको खाकर ही हमारी भूख शांत हो जाएगी। इस दृष्टान्त में क्रूरता से करूणा तक की यात्रा है। साथ ही अर्थशास्त्रीय दृष्टि से साधनों और संसाधनों को बिना नुकसान पहुंचाये या कम से कम नुकसान पहुंचाये अधिकतम लाभ प्राप्त करने की प्रेरणा भी है। ऐसे अनेक कथानक और दृष्टान्त जैन साहित्य में प्राप्त होते हैं, जिनमें प्रकृति, पर्यावरण, जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों और पेड़–पौधों की रक्षा के अमर संदेश दिए हुए हैं।

vFkkZiktZu dk vko';d ÙkRo

अर्थशास्त्र में धनोपार्जन के साधनो के अन्तर्गत भूमि, श्रम, पूंजी और प्रबन्ध को परिगणित किया गया है।[2] वृक्ष, वन, पहाड़, जल, निर्झर, खेती–बाड़ी, खनिज सब कुछ भूमि के आश्रित हैं। यदि यह कह दिया जाए कि अर्थोपार्जन का एक मात्र मूलभूत साधन भूमि ही है तो गलत नहीं होगा। क्योंकि श्रम, पूंजी और प्रबन्ध तो भूमि और प्रकृति में उपलब्ध चीजों को उचित प्रकार से प्राप्त करने के माध्यम हैं।

धनोपार्जन का दूसरा मुख्य साधन है– श्रम, परिश्रम, पुरूषार्थ। श्रम के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता। प्राप्त को समुचित उपयोग श्री श्रम के बगैर संभव नहीं। श्रमण संस्कृति का तो आरम्भ ही 'श्रम' से होता है। पर्याप्त संसाधन और श्रम भी हो, लेकिन पूंजी के बिना आर्थिक चक्र को गतिशील नहीं रखा जा सकता है। पूंजी, भूमि, श्रम और प्रबन्ध के आर्थिकीकरण का प्रमुख घटक है। प्रबन्ध के अन्तर्गत नियोजन, संगठन, समन्वय, नियंत्रण, निर्णयन, अभिप्रेरण, विपणन आदि बातों का समावेश होता है। आगम ग्रन्थों में अर्थोपार्जन के इन सभी घटकों की पर्याप्त चर्चा प्राप्त होती है। परन्तु उनका अर्थशास्त्रीय दृष्टि से वर्गीकरण और विवेचन नहीं है।

Hkfe

जैसा कि बताया जा चुका है, भूमि मूलभूत साधन है। यहां सभी प्राकृतिक संसाधनों को भूमि के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया हैं इसके अन्तर्गत मुख्यतः वन सम्पदा, खनिज सम्पदा और जल सम्पदा को लिया जाता है।[3] जैनागमों के षट्कायिक जीवों की रक्षा के सन्देश में इन सम्पदाओं के रक्षण व संरक्षण का भाव और संकल्प विद्यमान है।

oulEink

आगम युग का भारत विपुल जंगलों से परिपूर्ण था। वन आर्थिक जीवन का आधार तो थे ही, आत्म–साधना के लिए भी उपयुक्त माने जाते थे। व्याख्याप्रज्ञप्ति[4] और प्रज्ञापना[5] में विशाल वनखण्ड़ों के उल्लेख मिलते हैं। औपपातिक सूत्र में वनखण्ड का वर्णत करते हुए कहा गया है कि– पूर्णभद्र चैत्य चारों ओर से विशाल वनखण्ड से घिरा हुआ था। वृक्षों की सघनता के कारण वह वनखण्ड काला, काली आभा वाला, नीला, नीली आभा वाला, हरा, हरी आभा वाला दिखाई देता था। उसकी हवा शीतल, शीतल आभामय, मिट्टी स्निग्ध तथा सुन्दर वर्णवाली थी। वहां की छाया अत्यन्त गहरी होती थी। उसका दृश्य इतना रमणीय लगता था, मानो बड़े–बड़े बादलों की घटाएं घिरी हों।[6] वनखण्ड का यह वर्णन समृद्ध पर्यावरण का प्रमाण है।

उत्तराध्ययन–चूर्णि में राजगृह के बाहर स्थित 18 योजन की अटवी का वर्णन है।[7] औपपातिक सूत्र के अनुसार चम्पानगरी के वनों में तिलक, बलुक, लचुक, छत्राप, शिरीष, सप्तवर्ण, दधिषर्ण, लौध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीम, कड़च, कदम्ब, सत्य, पनस, दाड़म, शाल, ताल, प्रियक, प्रियंग, पुरोगम, राजवृक्ष, नन्दीवृक्ष आदि वृक्षों की सघन पंक्तियां थी। ये वृक्ष पद्मलताओं, नागलताओं, अशोक लताओं, चम्पकलताओं, आम्रलताओं, पीलुकलताओं, वासन्तीलताओं, अतिमुक्तलताओं आदि अनेक प्रकार की लताओं से आवेष्टित रहते थे।[8] हर ऋतु में वृक्ष फलों और फूलों से लदे रहते थे। ऐसी विपुल वन सम्पदा और वनस्पति–सम्पदा से तत्कालीन समय का पर्यावरण उत्तम बना हुआ था। उस आरोग्यप्रदायिनी जलवायु में लोग स्वस्थ, प्रसन्न रहते थे और आजीविका सुलभ थी। वनों में अनेक प्रकार के जीव–जन्तु और पशु–पक्षी भी होते थे। जिनमें

तोता, मैना, मयूर, कोयल, बतख, हंस, कलहंस, सारस, तीतर, बटेर, चकोर, चंदीमुख, चक्रवाक, भृंगारक, कोण्डलवा आदि पक्षी[9] तथा हाथी, खरगोश, हिरण, रीछ, मेप, सांभर, चीता, चमरी, गाय, बकरी, सुअर आदि अनेक पशु पाये जाते थे।[10] जंगल लोगों की आजीविका के आधारस्तम्भ थे। अनेकानेक व्यवसाय और उद्योग धंधे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से वनों से जुड़े थे। आचारांग सूत्र में बताया गया है कि लकड़ी से अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनती हैं। श्रमण को ऐसे व्यवसायिक उपयोग के बारे में नहीं बोलना चाहिए। यह निषेध श्रमणों के लिए है, इससे लकड़ी के आर्थिक महत्व का पता चलता है।[11] उपासकदशांग में हरे–भरे वन काटने और लकड़ी के कोयले बनाने का निषेध किया गया है।[12]

[kfut lEink

आगम ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन समय में खनिजों के बारे में आश्चर्यजनक जानकारी थी। आगम ग्रन्थों[13] में अनेक दुर्लभ मणि–रत्नों और खनिजों के उल्लेख से समाज द्वारा खनिज सम्पदा के उपयोग का पता चलता है। पृथ्वीकाय की प्ररूपणा से उत्तराध्ययन (36/73) का यह श्लोक दृष्टव्य है–

पढवी य सक्करा बालया य
उवले सिला य लोणूसै।
अय–तम्ब–तउय–सीसग,
रूप्प–सुवण्णे य वइरे य।

आगे की गाथाओं में विभिन्न रत्न–मणियों का वर्णन है। इस प्रकार खनिजों के अन्तर्गत खारी मिट्टी, लोहा, तांबा, सीसा, पारा, मूंगा, चांदी, सुवर्ण, वज्र, हरिताल, मनसिल, शस्यक, उन्जन, प्रवाल, अभ्रपटल, अभमालुक, गोमेदक, रूचक, लोहिताक्ष, अकरत्न, स्फटिक, लोहिताक्ष रत्न, मरकतरत्न, मसारगरत्न, भुजमोचक रत्न, वैडुर्यरत्न, चन्दनरत्न, गेरूकरत्न, हंसरत्न, पुलक रत्न, सौगंधिक रत्न, इन्द्रनीलमणि, जनकान्तमणि, सूर्यकान्त मणि आदि रत्न प्राप्त होते हैं। खनिज सम्पदा पर मुख्य रूप से धातु उद्योग और रत्न उद्योग निर्भर थे।

ty lEink

वह समय प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों का समय था। उनका अंधाधुध दोहन नहीं होने से पर्यावरण उत्तम था। सघन व हरे भरे वन थे। प्रचुर शुद्ध जल उपलब्ध था। कृषि के साथ ही जन को कृषि के लिए संगृहित करके उपयोग करने की कला मानव से सीख ली थी। सिंचाई के लिए पुस्करिणी, बावड़ी, कुंआ, तालाब, सरोवर आदि[14] के अलावा नदियों पर बांध बनाने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[15] महाक्षत्रप ने चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में बनवाई गई सुदर्शन झील और उस पर बने बांध का जीर्णोद्धार करवाया था। इससे स्पष्ट होता है कि मौर्यकाल में सिंचाई के लिए झीलों और बांधों का निर्माण होता था।[16] नदियों का उपयोग कृषि के अलावा यातायात में भी होता था।[17] वर्तमान में जल सम्पदा का मत्स्याखेट के रूप में दुरूपयोग किया जाता है। विपास सूत्र में उसे नरक (दुःख) का कारण बताते हुए उसका स्पष्ट निषेध किया है।[18]

इस प्रकार उत्पादन में भूमि और भूमि से संबंधित वन, खनिज, जल आदि का मुख्य साधन था। खेती–बाड़ी करने के लिए लोग वन–भूमि और ऊसर भमि को कृषि योग्य भूमि में बदल देते थे।[19] कृषि और आवास दोनों के लिए जमीन उपलब्ध थी।

Hkw&LokfeRo

भूमि पर तीन प्रकार के स्वामित्व थे–व्यक्तिगत, सामुहिक और राजकीय। श्रावक अपने इच्छा, परिमाण व्रत के अन्तर्गत खेत–वत्थु की मर्यादा करता है। भगवान महावीर का प्रमुख श्रावक आनन्द गाथापति 500 हल भूमि का स्वामी था।[20] व्यक्ति की सम्पत्ति के अन्तर्गत भूमि की गणना उस समय भी होती थी। इसीलिए भूमि का माप, क्रय–विक्रय, दान आदि सब होता था।[21]

भूमि पर सामूहिक स्वामित्व के अनेक उदाहरण मिलते हैं। आचारांग[22] में निर्देश है कि चारागाहों में उच्चार–प्रस्रवण का विसर्जन ना करें। ऐसे चारागाहों पर लोगों का सामूहिक स्वामित्व होता था। गाँवों के मवेशी चारागाह में चरने जाते थे। लोग बंजर भूमि को चारागाहों में बदलने में निपुण थे। इससे ग्राम स्तर या स्थानीय स्तर पर भूमि का रख–रखाव और स्वामित्व सिद्ध होता है। जिसकी तुलना वर्तमान में पंचायती राज या ग्राम–स्वराज से की जा सकती है। व्यक्तिगत और सामूहिक स्वामित्व के अलावा

समस्त भूभाग और वन प्रानत पर राज्य का स्वामित्व होता है। भूमिरथ निधि और खनिज पर भी राज्य का अधिकार होता है।[23] भूमि को आर्थिक दृष्टि से उपयोगी बनाने के लिए राज्य की ओर से प्रयास किये जाते थे। राज्य की ओर से भूमिहीन कृषकों को भूमि प्रदान की जाती थी जिससे ऊपर हुई उपज का निर्धारित भाग राजकोष में भी जमा कराना होता था।[24] ज्ञाताधर्मकथांग के अनुसार नन्दन मणिकार ने राजा श्रेणिक को धन भेंट करके पुष्करिणी बनाने की आज्ञा प्राप्त की थी।[25] स्पष्ट है कि भूमि धनोपार्जन और उत्पादन का मुख्य आधार थी तथा प्राचीन समय से ही भूमि और प्राकृतिक संसाधनों का आर्थिक महत्व समझा जाने लगा था।

ekuo l a l k/ku

जैसा कि कहा जा चुका है कि अर्थशास्त्र में उस क्रिया को श्रम माना गया है जो आर्थिक उद्देश्य से ही गई हो तथा जिससे प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष अर्थोपार्जन हो।[26] अर्थशास्त्र में श्रम का महत्व इतना बढ़ा कि मनुष्य को संसाधन कहा जाने लगा। प्राचीन काल से ही मानव श्रम का मुख्य हेतु माना जाता है। नौकरो–अनुचरों और दास–दासियों को गृहस्थ की सम्पति में परिगणित करना इसका प्रमाण है।[27] भगवान महावीर ने प्रथम अहिंसा और पाँचवें अपरिग्रह अणुव्रत में मानव तथा मानव श्रम को मानवीय गरिमा प्रदान करने और उसका समुचित मूल्यांकन करने के स्पष्ट संकेत दिए हैं।[28] उनका यह मूल्यांकन मानव को संसाधन नहीं मानकर उसे मानवीय गरिमा प्रदान करता है। दूसरा मानवीय श्रम एक सृजनात्मक और आत्म सन्तुष्टि का उपादान है।

उसे निर्जीव वस्तुओं ती तरह बिकाऊ बनाने की बजाय, उसका उदात्तीकरण किया जाना चाहिए।

मन्दिर निर्माण के दौरान काम करते एक मजदूर से पूछा गया कि वह क्या कर रहा है? उत्तर मिला कि वह पत्थर तोड़ रहा है। इसी प्रश्न के उत्तर में दूसरे ने कहा कि वह अपने व अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए काम कर रहा है। तीसरे का उत्तर था कि वह भगवान का घर बना रहा है। कार्य के साथ कार्य की भावना और लगन उसके महत्व को बहुगुणित कर देती है।

Je vkj nkl iFkk

उस समय विविध प्रकार की सेवाएं करने वाले व्यक्ति राजा और अन्य सम्पन्न घरानों मे नौकरी किया करते थे। यह परम्परा आज भी विद्यमान है। जैन सिद्धान्तों और संस्कृति का यह सुप्रभाव रहा कि नौकरों और दास–दासियों पर होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध माहौल बना। वर्द्धमान के जन्म की सिद्धार्थ को सूचना देने वाली दासी प्रियंवदा को सिद्धार्थ ने दास–कर्म से मुक्त कर दिया था।[29] भगवान महावीर के प्रमुख भक्त सम्राट श्रेणिक ने भी उनके पुत्र जन्म का संवाद देने वाली दासी को दासत्व से मुक्त कर दिया था।[30] व्यवहारभाष्य के अनुसार एक कुटुम्बी ने उसकी दासी की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसका मस्तक धोकर उसे दासता से मुक्त कर दिया था।[31] एक कुटुम्बी उसके घर में दास को पीट रहा था। कुमारावस्था में वर्धमान उस घर के बाहर से जा रहे थे। मानव द्वारा मानव पर हुए इस अत्याचार से वर्धमान का दिल दहल उठा। उनका वैराग्यतम प्रबह हो गया।[32] उन्होंने समाज से इन अत्याचारों को हटाने का संकल्प लिया। चन्दनबाला का उद्धार दास–प्रथा और नारी जाति के साथ हो रहे भेदभाव के विरूद्ध उनकी आध्यात्मिक क्रांति का बहुत बड़ा उदाहरण है। भगवान महावीर के उपदेश में ये स्वर आज भी गुंजते है कि मानव–मानव पर कोई अत्याचार न करे, मानव किसी प्राणी पर भी कोई अत्याचार नहीं करे।

जैन धर्म और दर्शन आत्मवाद पर खड़ा है। वहां मानवतावाद, मानवता और मानवीयता के नियमों का अनुपालन सहज ही उत्कृष्ट रूप में हुआ है। पूर्व तेईस तीर्थंकरों की भांति अन्तिम तीर्थंकर महावीर ने भी मानव–एकता की अलख जगायी।

उनके चतुर्विध संघ में सभी वर्गो, वर्णों और जातियों के व्यक्तियों को आत्म साधना के लिए समान अवसर प्राप्त है।

उस समय आज की भांति उद्योग नहीं थे, इसलिए कोई भी औद्योगिक श्रम कानून और श्रमिक संगठन जैसी बात भी नहीं थी, परन्तु भगवान महावीर के प्रभाव से लोग मानवाधिकार और मानवीय मूल्यों का सम्मान करने लगे थे। वस्तुतः महावीर तो प्राणीमात्र के अधिकारों की रक्षा के मौलिक उपदेशक थे। इस प्रकार भगवान महावीर को हम दास प्रथा मुक्ति के सूत्रधार और मानवाधिकारों की रक्षा के प्रथम प्रवक्ता के रूप में पाते हैं। उनके ''जिया और जीने दो'' के उद्घोष का समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और पर्यावरण की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है।

Je foHkktu

मशीनीकरण और औद्योगिकीकरण नहीं होने से प्राचीन समय में अर्थव्यवस्था मुख्यतः मानव श्रम पर अवलम्बित थी। खेती–बाड़ी और कुटीर उद्योग शारीरिक श्रम पर आधारित थे।[33] धर्मसेनगणि कहते हैं कि अकुशल श्रमिक दिनभर मेहनत करके भी अति अल्प अर्जित कर पाता है जबकि कुशल श्रमिक अपने कौशल से कम परिश्रम में ही अधिक अर्जित कर लेता है।[34] स्पष्ट है कि उस समय कुशल–अकुशल शारीरिक–बौद्धिक आदि दृष्टियों से श्रम विभाजन होता था। जैन परम्परा में श्रम का यह वर्गीकरण कार्य और योग्यता पर आधारित था[35] ना कि जाति और जन्म के आधार पर। जबकि वैदिक परम्परा में जन्म व जाति के आधार पर श्रम व्यवस्था रूढ़ हो गयी थी।[36]

किसी भी कार्य को निरन्तर और बार–बार करने से व्यक्ति उसमें निष्णात हो जाता है। नन्दीसूत्र में एक दक्ष स्वर्णकार का वर्णन आता है, जो अंधेरे में स्पर्श मात्र से सोने ओर चांदी मे भेद कर लेता था।[37] अनेक स्थानों और नगरों का नामकरण काम–धंधें और व्यवसायों के आधार पर रखा जाता था। वाणिज्यग्राम, कुम्हारग्राम, क्षत्रियग्राम, ब्राह्मणग्राम, निषादग्राम आदि नाम[38] अपने आप में श्रमाधारित व्यवस्था का संकेत करते हैं।

असल में रूचि और योग्यता के आधार पर श्रम का वर्गीकरण स्वतः हो जाता है। जब जन्म, जाति और जातीय आरक्षण जैसे आग्रह बढ़ जाते हैं तो अर्थ व्यवस्था

और विकास पर विपरीत असर होता है। योग्यता और गुणवत्ता की उपेक्षा उचित नहीं है। उस समय धनोपार्जन के प्रचुर साधन थे। मेहनत करके व्यक्ति आसानी से अपना और कुटुम्ब का भरण पोषण कर सकता था। बेरोजगारी, विशेष नहीं थी। कुशल, बुद्धिमान और उद्यमशील व्यक्ति अपने व्यवसायिक साम्राज्य को विस्तार देकर आर्थिक गतिविधियों में विशेष योगदान करते थे।

iwth

पूंजी को धनार्जन का प्रत्यक्ष साधन नहीं माना जाता है, परन्तु उसके बगैर धनार्जन की प्रक्रिया थम जाती है, इसलिए वह प्रमुख साधन के रूप गिनी जाती है। पूंजी नहीं होने से व्यवसाय–निपुण परिश्रमी व्यक्ति भी धनार्जन में पिछड़ जाता है। व्यवसाय में पूंजी ही वह घटक है जिससे व्यवसाय की सम्पत्तियों में वृद्धि हो।

egkohj d: nl Jkodk dh iwth

व्यवसाय में पूंजी का नियोजन, पूंजी की वृद्धि आदि के प्रेरक संदर्भ जैन साहित्य में प्राप्त होते हैं। भगवान श्री महावीर के प्रमुख दस श्रावकों के पास प्रभुत सम्पत्ति थी। उसका विवरण[39] निम्नानुसार है–

Øe	Jkod	i'kq/ku	lqo.k
1	आनन्द	40 हजार गायें	12 करोड़
2	कामदेव	60 हजार गायें	18 करोड़
3	चुलनीपिता	80 हजार गायें	12 करोड़
4	सुरादेव	60 हजार गायें	24 करोड़
5	चुल्लशतक	60 हजार गायें	18 करोड़
6	कुण्डकौलिक	60 हजार गायें	18 करोड़
7	सद्दालपुत्र	10 हजार गायें	03 करोड
8	महाशतक	80 हजार गायें	24 करोड़
9	नन्दिनीपिता	40 हजार गायें	12 करोड़
10	सालिहीपिया	40 हजार गायें	12 करोड़

गौ के अन्तर्गत आर्थिक दृष्टि से उपयोगी सभी प्रकार के पशु (मवेशी) आ जाते हैं। महाशतक को छोड़ सभी श्रावकों ने निधि, व्यापार और घर, इन तीनों में बराबर–बराबर (1/3) सुवर्ण नियोजित कर रखा था। आनन्द के पास 500 शटक यात्रा के लिए और 500 माल ढ़ोने के लिये थे। चार यात्री और मालवाहक जलयान थे तथा 500 हल प्रमाण भूमि थी।[40]

आगम ग्रन्थों व साहित्य में धन–धान्य हिरण्य, सुवर्ण, द्विपद–चतुष्पद, खेत, कुप्य आदि को व्यक्ति की संपति में परिगणित किया गया है।[41] कौटिल्य अर्थशास्त्र[42] में भी इसी प्रकार से मानव की चल–अचल सम्पत्तियों का उल्लेख है, जिनसे पूंजी निर्माण होता है और जो पूंजी की घटक है।

iith vkj gfl;r

पूंजी की मात्रा के अनुसार लोगों की हैसियतें आंकी जाती थी, जिसके पास हस्ति प्रमाण, मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण, रजि आदि द्रव्य हो उसे 'जघन्य इभ्य' जिसके पास हस्ति प्रमाण, वज्र, मणि–माणक्य हो उसे 'मध्यम इभ्य' और जिसके पास हस्ति प्रमाण केवल वज्र हीरों की राशि हो उसे 'उत्कृष्ट इभ्य' कहा जाता था।[43] आचारांग में कहा गया है कि व्यक्ति अपने भविष्य की सुरक्षा, सन्तान के पालन–पोषण तथा सामाजिक दायित्व के भली–भांति निर्वहन के लिए संचय करता है। मानव व्यवसाय के माध्यम से इतना धन उपार्जित कर लेता था कि समस्त खर्चों के बाद भी पर्याप्त धन बचा लेता था, जिसे आज की भाषा में शुद्ध लाभ कह सकते हैं। यह लाभ प्रत्यक्ष तौर पर पूंजी वृद्धि का हेतु है।[44]

व्यक्ति आरम्भ से ही पूंजी–वृद्धि के लिये यत्नशील रहा है। इसी वजह से व्यापार और व्यवसाय की वृद्धि और समृद्धि के लिए नित नए तरीके आज तक अपनाये जाते हैं। सोमदेव सूरि मनुष्य को कोष बढ़ाने का सुझाव देते हैं और पूंजी वृद्धि के तीन माध्यम बताते हैं– कृषि तथा व्यापार द्वारा, बचत द्वारा और पैतृक संपत्ति द्वारा।[45] इनमें प्रमुख माध्यम व्यवसाय की अभिवृद्धि है।

आगम ग्रंथों में पूंजी की महत्ता को पूरी तरह समझाया गया है। पूंजी की गणना और उनके आंकलन की समुचित लेखांकन प्रणालियाँ भी विद्यमान थी। परन्तु पूंजीवाद

जैसी कोई बात नहीं थी। महावीर युग में पूंजीवाद, समाजवाद आदि वाद–विवादों से मुक्त एवं स्वतंत्र मानवीय अर्थव्यवस्था थी। अर्थोपार्जन और विसर्जन में नीति, अहिंसा और अपरिग्रह जैसे नियमों का विवेकसम्मत ढ़ंग से परिपालन करने वाले व्यक्ति समाज को बेहतरीन व्यवस्था प्रदान कर रहे हैं। भगवान पार्श्वाथ और महावीर के अनुयायी उनमें अग्रणी थे।

i:cU/k

आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार प्रबन्ध धनोपार्जन का एक ऐसा साधन है जो पूर्व तीनों–भूमि, श्रम और पूंजी में समन्वय स्थापित कर वाणिज्यिक गतिविधियों को सुगम ओर अधिकाधिक लाभप्रद बनाता है। सुविचारित, सुव्यवस्थित, सुनियोजित और दूरदर्शितापूर्ण वाणिज्यिक कौशल से ही प्रबंध है। आगमयुग में प्रबन्ध के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। अनेकान्त सिद्धान्त और कषाय–उपशमन प्रबन्ध के प्राण तत्व है। इस भूमिका पर भगवान महावीर के अनुयायियों का प्रबन्धकीय कौशल आगम युग से आज तक विशिष्ट रहा है। प्रबन्ध आज वाणिज्य अध्ययन का एक प्रमुख उपादान बन गया है।

okf.kfT;d dk'ky

अर्जन के लिए वाणिज्यिक कौशल का इतना महत्व रहा कि धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या करने और धर्माचरण करने में अनेक स्थलों पर व्यावसायिक चातुर्य के उदाहरण ओर दृष्टान्त मिलते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति अपने व्यवसाय के प्रति सजग रहता है उसी प्रकार से आत्म साधना में भी सजग रहना चाहिये। आर्थिक और गैर आर्थिक सभी दृष्टिकोणों से प्रबन्ध के विषय में पर्याप्त सामग्री आगम ग्रन्थों में मिलती है।

l?kh; 0;oLFkk dk fun'ku

जैन परम्परा में विद्यमान संघीय व्यवस्था प्रबन्ध का एक उत्तम उदाहरण है। वही संगठन, प्रशासन, अनुशासन और सहयोग को महत्व दिया गया है। आत्म–साधना को

सामूहिक और संघीय व्यवस्थाएं प्रदान की गई हैं। आचार्य संघीय व्यवस्था का अनुशास्ता होता है। उसे संघ संचालक और धर्म नेता (नैतृत्वकर्ता) की संज्ञा दी गई है।[46] दशाश्रुतस्कन्ध[47] में आचार्य की आठ संपदाए बताई गई हैं–आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोगमति और संग्रहपरिज्ञा संपदा। एक श्रेष्ठ प्रबंधक के लिए ऐसी ही अर्हताओं की आवश्यकता होती है। उसके लिए सदाचरण के प्रति दृढ़ता, विषय–विशेषज्ञता, प्रजाशीलता तथा मानव मन का पारखी होना आवश्यक है। संघ के कुशल संचालन के लिए आचार्य के शिष्यों के प्रति और शिष्यों के आचार्य के प्रति कर्तव्यों का निरूपण किया गया है। यह निरूपण बहुत वैज्ञानिक और आत्मानुशासन पैदा करने वाला है। छेद सूत्रों में यह कहा गया है कि संघ से जुड़ा साधक अपने लक्ष्य के प्रति अप्रमत रहे, संघ के प्रति निष्ठावान और सद्‌गुणों के प्रति विनयवान रहे। वह कोई ऐसा कार्य, वचन–प्रयोग या व्यवहार नहीं करे जिससे संगठन में कलह या विग्रह पैदा हो।

व्यवहारिक प्रबन्ध के लिए छेद सूत्रों की व्यवस्था उचित राह सुझाती है। तीर्थंकर महावीर के अनुयायी अपने व्यवसायिक विस्तार और लाभ के लिए उच्च स्तरीय प्रबन्धकीय कौशल का परिचय देते थे तथा अनेक व्यक्तियों को उसमें निष्णात बनाते थे।

vkUkUn vkfn Jkodksa dk izcU/k dkS'ky

उपासकदशांग के अनुसार गाथापति आनन्द सेवा और साधना के लिए पर्याप्त समय और संसाधनों का नियोजन करता था। उपासकदशांग[48] और अन्य आगमों के अन्य श्रावक भी वैसा करते थे, क्योंकि अर्थव्यवस्था ही नहीं, पूरी जीवन की व्यवस्था प्रबन्ध से सुचारू रूप से संचालित हो पाती थी। उन श्रावकों का लम्बा–चौड़ा, कृषि पशुपालन, लेन–देन, व्यापार, उद्योग आदि का काम–काज भी चलता था। बिना प्रबंधकीय कौशल के अर्जन और विसर्जन का यह संयोग संभव नहीं था। हजारों कर्मचारी आनन्द आदि की व्यवसायिक गतिविधियों से जुड़े थे। सब अपने–अपने कार्यों में दक्ष थे। सकडालपुत्र के भाण्ड उद्योग में भी वैसा ही अच्छा प्रबन्ध रहा होगा। आज की तरह उस समय प्रबन्ध की विद्या सुविकसित हुई हो या नहीं परन्तु प्रबन्ध के गुर

और गुण उस समय का व्यक्ति समझता था और तदनुरूप आचरण भी करता था। जिसे उद्यमिता कहते है, वह उस समय ज्यादा देखने को मिलती है। आचारांग के अनुसार व्यवसायी लाभ के लिए कठिन से कठिन काम में तत्पर हो जाते थे।[49] उस समय मशीन, तकनीक, आधारभूत सुविधाएं आदि आज की भांति नहीं होने के बावजूद बड़े–बड़े व्यवसायिक औद्योगिक उपक्रम, व्यापारिक गतिविधियां आयात–निर्यात आदि बिना उचित व उच्च प्रबन्ध के सम्भव नहीं थे। व्यापारी विपणन में कुशल थे। वे बाजार की तलाश करते थे और उसे विकसित करते थे।[50] व्यापारियों की कथाओं में साहस और प्रबन्धकीय कौशल के रोमांचक उदाहरण मिलते हैं।

dk;k e leUo;

जैसा कि बताया गया है कि प्रबन्ध के बिना अर्थव्यवस्था का संचालन संभव नहीं है। भूमि, श्रम, पूंजी और सारे संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग और सभी में पूर्ण सामंजस्य प्रबन्ध का कार्य है। प्रबन्ध की इसी महत्ता के कारण उसे धनोपार्जन का एक स्तम्भ माना गया है। वर्तमान की तरह निजी और लोक, सीमित और असीमित दायित्व वाली कंपनियाँ उस समय रही होंगी, ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु यह उल्लेख मिलता है कि व्यक्ति संयुक्त रूप से व्यापार करने का अनुबंध करते, उसमें पूंजी निर्माण के लिए सभी अपना–अपना अंशदान करते तथा उसी रूप में लाभ वितरण किया जाता।[51] व्यवसाय का यह तरीका भागीदारी से बिल्कुल भिन्न है। इसकी तुलना वर्तमान के संयुक्त साहस निगम से की जा सकती है।

धनोपार्जन के साधनों का यह वर्गीकरण आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार है, जबकि विवरण आगम ग्रन्थों के अनुसार है। इसमें भूमि का सम्बन्ध पर्यावरण और पारिस्थितिकी संतुलन से, श्रम का शोषण मुक्ति से, पूंजी का सामान वितरण से और प्रबन्ध का निष्पक्षता और श्रेष्ठ के मूल्यांकन से है। हर प्रकार की वाणिज्यिक गतिविधि में प्रत्येक साधन किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। वर्तमान में साधनों के विवेक सम्मत उपयोग की अत्यन्त आवश्यकता है।

ifjPNsn f}rh;

eqnzk ,oa fofue; dh fLFkfr

समाज में हर व्यक्ति हर कार्य नहीं कर सकता है। बहुत योग्यताएं रखने वाला भी सारे कार्य अकेला नहीं कर सकता है। हर जगह हर चीज उपलब्ध नहीं होती। यही पर समाज का जन्म होता है और समाज की इन व्यवस्थाओं को नियमित और नियंत्रित करने में अर्थशास्त्र का जन्म होता है।

ikjLifjd fuHkZjrk dk fl)kUr

आर्थिक और गैर आर्थिक सारा व्यापार व्यवहार, पारस्परिक निर्भरता के सिद्धान्त पर चलता है। आचार्य उमास्वाति ने 'परस्परोपग्रहो जीवनाम्' सूत्र किसी भी सन्दर्भ में दिया हो, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र में पारस्परिक निर्भरता का यह सिद्धान्त बहुत ही मूल्यवान और अर्थपूर्ण है। योगी को भी सहयोगी की आवश्यकता होती है। वन में जाकर साधना करने वाला भी निरपेक्ष रूप से स्व–निर्भर नहीं हो सकता है।

पारस्परिक निर्भरता का सिद्धान्त विकास और समृद्धि का मूल है और इसे निष्ठा व ईमानदारी से निभाया जाए तो यह सुव्यवस्था और शांति का हेतु भी है। इस सिद्धान्त का आरंभ आर्थिक जगत में वस्तुओं की अदला–बदली के रूप में हुआ, जिसे वस्तु विनिमय कहा जाता है। वस्तु–विनिमय, विनिमय की आरम्भिक प्रणाली थी, जो आगम युग में भी विद्यमान थी। परन्तु इसके साथ ही आगम युग में मुद्रा का प्रचलन भी विद्यमान था।

e|nk dk vkfo"dkj

जैसे विज्ञान के विकास में चक्र का आविष्कार महत्वपूर्ण बताया गया उसी प्रकार वाणिज्य के विकास में मुद्रा ने अत्यन्त महत्वूपर्ण भूमिका का निर्वहन किया। मुद्रा ने वस्तु विनिमय की सारी बाधाओं और सीमाओं को दूर कर दिया, जैसा कि बताया गया कि विभिन्न रूपों में मुद्रा का प्रचलन आगम युग में था। ईस्वी पूर्व छठवीं शताब्दी में यानि भगवान महावीर के समय में पंचमार्क सिक्कों का प्रचलन माना जाता है।[52] ए. कनिंघम ने ईस्वी पूर्व 1000 लगभग में भगवान पार्श्वनाथ के समय में पंचमार्क सिक्कों के होने की बात कही है।[53] ये सिक्के ढालकर बनाये जाते थे। मानव सभ्यता, संस्कृति और वाणिज्य के विकास में यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है। सिक्के कूट–काटकर भी बनाये जाते थे। राज्य के अलावा राज्य की अनुमति से विभिन्न श्रेणियाँ और निगम इन सिक्कों को जारी करते थे।[54]

e|nk

सूत्रकृतांग और उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार मास, अर्धमास और रूवग क्रय–विक्रय के साधन थे।[55] उपासकदशांग और ज्ञातधर्मकथांग में हिरण्य और सुवर्ण शब्दों का एक साथ प्रयोग हुआ है, जबकि निशीथसूत्र में सुवर्ण शब्द स्वतंत्र रूप से आया है।[56] नासिक गुहा–लेख (सन् 120) के अनुसार एक सुवर्ण 35 रजत–कार्षापण के बराबर होता था। वसुदेव उपाध्याय ने हिरण्य को स्वर्ण पिण्ड कहा जबकि चिन्हित स्वर्ण सिक्कों को सुवर्ण कहा है। छोटे सिक्कों को सुवण्णमासय (सुवर्णमासक) कहा जाता था।[57] डॉ भण्डारकर ने सुवर्णमासक का वनज एक मासा बताया है।[58] एक ही प्रकार की मुद्रा की विभिन्न क्षेत्रो में विभिन्न नाम तथा भिन्न मूल्य होता था। ऐसा मुद्रा की क्रय शक्ति ओर क्षेत्र विशेष की भाषा के कारण होता था। इससे सम्बन्धित राज्य की आर्थिक हैसिकत का आंकलन भी होता था।

Lo.k| f lDd| o nhukj

स्वर्ण सिक्कों को सुवर्ण कहा गया है, जो 32 रत्ती के होते थे। कल्पसूत्र के अनुसार भगवान महावीर की माता को चौदह स्वप्न हाते हैं। उनमें एक है– लक्ष्मी। लक्ष्मी के वर्णन में बताया गया– लक्ष्मी के वक्षस्थल पर स्वर्ण मुद्राओं को हार शोभित

हो रहा था। यहां स्वर्ण मुद्रा के लिए 'दीणार' शब्द प्रयुक्त है।[59] ईस्वी सन् की पहल शताब्दी में कुशानकाल में रोम के डिनेरियस नामक सिक्के से 'दीनार' शब्द को लिया माना जाता है।[60] साथ की कल्पसूत्र का रचनाकाल भी प्रथम सदी माना जाता है। प्रश्न है कि दीनार रोम से भारत आया या भारत से रोम गया? निशिथचूर्णि से ज्ञात होता है कि मयूरांक राजा ने अपने नाम से चिन्हित दीनार चलाये थे।[61] उत्तराध्ययनचूर्णि में एक व्यापारी गणिका को 800 दीनार देता है।[62] आवश्यकचूर्णि में राजा कर्पाटिक को, एक युगलवस्त्र और दीनार भेंट स्वरूप देता है।[63] दशवैकालिक चूर्णि में भी दीनार का उल्लेख है।[64] चूर्णिसाहित्य में दीनारों के माध्यम से लेन–देन के उल्लेखों से पता चलता है कि उस समय की स्वर्ण मुहरों में दीनार मुख्य था।

jtr flDd

सूत्रकृतांग में रूवग का उल्लेख चांदी के सिक्कों के लिए माना जाता है। रूवग के लिए रूप्य शब्द भी मिलता है। राजस्थानी में 'रूपा' शब्द चांदी के पर्याय के रूप में हुआ है। वर्तमान में हिन्दी व अंग्रेजी में मुद्रा के लिए प्रचलित शब्द रूपया (Rupee) का उद्‌गम रूवग से हुआ लगता है। मूल्य की दृष्टि से सोने के बाद चांदी ही ऐसा धातु है जिसका मुद्रा ढालने में बहुत बहुत उपयोग हुआ। प्रचलन की दृष्टि से रजत सिक्के, स्वर्ण सिक्कों से ज्यादा क्षेत्र में और दीर्घ अवधि तक चलन में रहे। इसकी वजह स्वर्ण की तुलना में चांदी की कम कीमत और अधिक सुलभता है। खुदाइयों में भी प्राचीन काल के प्रचुर रजत सिक्के मिले हैं। रूवग के अलावा चांदी के सिक्कों में कार्षापण, अर्ध कार्षापण, (आधू मूल्य का कार्षापण) पाद कार्षापण (चौथाई मूल्य का कार्षापण) माष कार्षापण (16वें मूल्य का कार्षापण) सुभाग, नेलग, द्रम्म आदि के उल्लेख मिलते हैं। उत्तराध्ययन[65] में खोटे कार्षापण का उल्लेख मिलता है। अनाधिकृत तौर पर लोग खोटे सिक्के (कूड कहावण भी चला देते थे)। प्रश्नव्याकरण[66] में उन्हें 'कूडकहापणोजीवी' कहा गया है, बेशक वे दण्ड के भागी होते थे।[67]

rkez o vU; enk

कार्षापण के अन्तर्गत ताम्र कार्षापण भी हुआ करते थे। इनमें भी मण और माष हुआ करते थे। इनके अलावा काकिणी का उल्लेख मिलता है। चूर्णि साहित्य में ताम्र

सिक्कों के उल्लेख मिलते हैं। इनके अलावा कौडियों का भी मुद्रा के रूप में चलन था। बृहत्कल्पभाष्य[68] और निशीथचूर्णि[69] में कौड़ी को 'कवडुक' कहा है। निशिथचूर्णि में चर्म मुद्रा का भी उल्लेख है, जो भीनमाल में चलती थी। छोटे–छोटे दैनिक व्यवहारों में भी इन मुद्राओं का बहुतायत से प्रयोग होता था। उपासकदशांग सूत्र में आचार्य आत्मारामजी ने सभी प्रकार की सभी मुद्राओं को चौदह श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।[70]

t u flDd

जैन धर्मानुयायी तथा जैन धर्म से प्रभावित राजाओं ने अपने राज्य में जो मुद्राएं निर्गमित की, उन पर विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से जैन धर्म की भावनाएं अंकित की है। ऐसे जैन प्रतीकों से युक्त मुद्राओं को जैन सिक्कों के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। देश–विदेश में खुदाई और अन्य माध्यमों से प्राप्त सिक्कों पर विभिन्न जैन प्रतीकों से जैन धर्म के इतिहास और आर्थिक विकास में उसके योगदान पर महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ने प्राचीन जैन सिक्कों का अध्ययन[71] विषयक निबंध में ऐसे अनेक जैन सिक्कों पर प्रकाश डाला है। कुछ उल्लेख दृष्टव्य हैं–

1. ईस्वी सन् से पूर्व प्रथम और दूसरी सदी के उज्जयनी के ताम्र सिक्कों पर एक और वृषभ और दूसरी ओर सुमेरू अंकित है।
2. पंजाब के वन्नू जिले में सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर लीडिया के राजा क्रीसस का स्वर्ण सिक्का मिला है। इस सिक्के में एक ओर वृषभ और सिंह का मुंह बना

है तथा दूसरी ओर एक छोटा और एक बड़ा पंचमार्क अंकित है। राजा क्रीसस ने इस सिक्के पर जैन धर्म के प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के चिन्ह अंकित कर अपनी भावाभिव्यक्ति की है। जैन ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि ईस्वी सन की कई शताब्दियों पूर्व यूनान, रोम, मिस्त्र, बहामास, श्याम, अफ्रीका, सुमात्रा, जावा आदि देशों में जैन धर्म का प्रचार था।

3. रैप्सन ने अपने 'भारतीय सिक्के' नामक ग्रथ और रॉयल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका के अनेक निबंधों में भारतीय यूनानी नरेशों के सिक्कों का विवरण दिया है। इससे प्रतीत होता है कि अनेक युनानी राजाओं पर जैन धर्म का पूर्ण प्रभाव था। जिसकी वजह से उन्होंने अपने सिक्कों पर जैन प्रतीकों को अंकित करवाया। इन सिक्कों पर वृषभ, हाथी और अश्व अंकित हैं, जो प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीर्थंकरों के चिन्ह हैं।
4. जनपद और गणराज्यों के प्राप्त सिक्के उदम्बर जाति के माने जाते हैं। डॉ. नेमीचन्द शास्त्री ने प्रथम प्रकार के सिक्कों को किसी जैन धर्मानुयायी राजा का माना है। जिन पर एक ओर हाथी घेर में बोधिवृक्ष (या अशोक वृक्ष) व नीचे एक सांप है तथा दूसरी ओर मंदिर स्तम्भ के ऊपर स्वास्तिक और धर्म चक्र है।
5. मालव जाति के कई सिक्के जैन हैं। जिन पर अशोक वृक्ष, कलश, सिंह, वृषभ आदि अंकित हैं। इस जाति के यम, मय और जायक जैन धर्म के प्रति श्रद्धावान थे। यम आचार्य सुधर्म के संघ में जैन मुनि बन गये थे।
6. यौधेय जाति के सिक्के तीन भागों में विभक्त हैं। उनमें से प्रथम प्रकार के सिक्के प्राचीन है और उन्हें ही जैन सिक्के माना गया है। उन पर वृषभ व हाथी का अंकन है।
7. ईस्वी सन् प्रथम शती के राजा भूमिकस और इनके उत्तराधिकारी क्षत्रप नहपान जैन थे तथा उन्होंने जैन प्रतीकों के अंकन से युक्त सिक्के जारी किये थे।
8. गौतमीपुत्र राजा शातकर्णी (प्रथम शती) को व्रती श्रावक माना जाता है। उनके सिक्कों में जैन प्रतीक अंकित हैं।
9. इसी प्रकार आन्ध्रवंशी तथा पल्लववंशी राजाओं ने भी जैन प्रतीकों से युक्त सिक्के जारी किये हैं। पल्लववंश का राजा महेन्द्रवर्मन जैन धर्मानुयायी था।

10. इसी प्रकार मध्यकाल के अनेकानेक राजाओं ने जैन प्रतीकों से युक्त सिक्के जारी करके जैन धर्म और उसके अहिंसा आदि सिद्धान्तों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है।

इनके अतिरिक्त वर्तमान में भगवान महावीर के 2600 वें जन्म–कल्याणक के उपलक्ष्य में सन् 2001 में भारत सरकार ने पांच रूपये का सिक्का जारी यिका। सिक्के पर एक ओर तव्वार्थ सूत्र के अमर वाक्य 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' के साथ जैन प्रतीक अंकित हैं और दूसरी ओर राष्ट्रीय चिन्ह और मूल्य अंकित हैं।

इस विवरण से कई बातें स्पष्ट होती हैं जैसे अनेक राजाओं के शासनकाल का कोई भी सिक्का आज उपलब्ध नहीं है और अनेक के शासनकाल में एक–दो या कुछ सिक्के ही वर्तमान में प्राप्त होते हैं। निश्चित रूप से आगम काल और उससे पूर्व में हुए शासकों ने भी अपनी मुद्राओं का अनुपलब्ध होना स्वाभाविक भी है। इस बात की भी प्रबल संभावना इसलिए भी है कि उस काल में जैन धर्म का नेतृत्व क्षत्रिय और शासक वर्ग के हाथों में था। हालांकि सभी वर्णों और वर्गो के व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के जैन धर्म का पालन कर रहे थे। इन तथ्यों के आलोक में समता और अहिंसामूलक अर्थव्यवस्था की मौजूदगी का अनुमान लगाया जा सकता है।[72]

eki rkYk

यह स्पष्ट है कि अगम युग का मानव व्यापार, वाणिज्य में कुशल था। वाणिज्यिक विकास और आर्थिक समृद्धि के लिए व्यापार को व्यापार के तरीकों और

नियमों से करता था। वस्तुओं को मापने व तौलने के लिए विभिन्न मापकों का उल्लेख आगमों में मिलता है। ज्ञाताधर्मकथांग में चार प्रकार की माप प्रणालियां बताई गई हैं– गणिम, धरिम, मेज्ज और परिच्छ।[73]

1- xf.ke& गिनकर बेची जाने वाली वस्तुएँ गणिम कहलाती थी अथवा गणिम के द्वारा वस्तुओं को गिनकर बेचा जाता था। इसके अन्तर्गत एक से लगाकार एक करोड़ तक की गिनती की जाती थी।
2- /kfje& इसके अन्तर्गत वस्तुओं को तौल कर बेचा जाता था। कर्ष, अर्धकर्ष, पल, अर्धपल, भार, अर्धभार, तुला आदि तौलने के माध्यम थे।
3- eTt@e;@eku& इसके अन्तर्गत वस्तुएँ माप कर बेची जाती थी, वस्तुओं के स्वभाव के अनुसार अलग–अलग वस्तुओं के मापक अलग–अलग हुआ करते थे। ये तीन थे– धान्यमान, रसमान और अवमान। धान्यमान के अन्तर्गत असृति (असई) प्रसृति (पसई) सेतिका, कुम्भ, कडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण, वाह, आदि धान्यमानों के द्वारा मुक्तोलि, मुख, इदुर, आलिन्दक, अपचार आदि कोठरों में भरे अनाज का माप किया जाता था। ये मापक मगध में प्रचलित थे। तरल पदार्थों को मापने के लिए रसमान होते थे, जिनमें चतुष्पष्ठिका, द्वात्रिंशिका, षोडषिका, अष्टभागिका आदि उपकरण थे। अवमान के अन्तर्गत हाथ, दण्ड, नलिका, धनुष, युग, अक्ष, मूसल आदि माध्यम थे, जिनसे खेत, भूखण्ड, घर, भित्ति, कुएँ, खाई, कपड़ा, चटाई जैसी वस्तुओं को मापा जाता था।
4- ifjPN@ifreku& जिन वस्तुओं में गुणवत्ता की परीक्षा के साथ व्यवहार किया जाता हो, उन्हें परिच्छ कहा जाता था। इनके अन्तर्गत बहुमूल्य धातुएँ, स्वर्ण, रजत और रत्न, मणि, मुक्ता आदि आते हैं। गूंजा, रत्ती, कांकणी, निष्पाव, कर्ममाषक, मण्डल, सुवर्ण आदि प्रतिमानों से इनका तौल होता था।[74]

इसके अलावा अंगुल, वितस्ति, रत्नि, कुक्षि, धनुष और गव्यूत आदि का उपयोग दूरी मापने के लिए किया जाता था। परमाणु, त्रसरेण, रथरेणु, बालाग्र, लिक्षा, यूका, यव आदि का उपयोग लम्बाई मापने के लिए किया जाता था। समय की गणना, समय, आवलिका, श्वास, उच्छवास, स्तोक, लव, मुहुर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन,

संवत्सर, युग, वर्षशत (शताब्दी) ले लेकर शीर्षप्रहेलिका आदि से की जाती थी।[75] आगम युग के अनेक माप आज भी प्रचलित हैं।

foÙkh; i.kkfy;k

आगम युग में प्रभूत व्यापार, वाणिज्य, कृषि उद्योग आदि विद्यमान थे। इस आधार पर माकूल वित्तीय कथाओं का अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु आधुनिक बैंकिग प्रणाली जैसी व्यवस्थाएं देखने को नहीं होती। देशी बैंकर्स और पारम्परिक वित्तीय प्रणालियों की तत्कालीन समय में महत्वपूर्ण भूमिका थी। श्रेष्ठी, सार्थवाह और वणिक वर्ग के सम्पन्न व्यक्ति बैंकिग का व्यवसाय करते थे। बैंकिंग के लिए आधारभूत बाते हैं– ऋण के लिए कोष की उपलब्धता, ऋण देना और जमाएं स्वीकार करना।

dk"k dh miyC/krk

उपासकदशांग के अनुसार वाणियगाम के गाथापति आनन्द तथा अन्य नौ श्रावक अपनी सम्पत्ति को तीन हिस्सों में नियोजित करते थे।[76] एक तिहाई हिस्सा निधि के लिए, एक तिहाई हिस्सा व्यवसाय के लिए और एक तिहाई हिस्सा गृह सामग्री में नियोजित किया जाता था। व्यवसाय के लिए नियोजित हिस्से को ब्याज पर भी दिया जाता था। निधि के लिए संग्रहित धन को भी ब्याज पर दिए जाने के काम में लिया जाता था। इस प्रकार वित्त व्यवसाय अथवा बैंकिग व्यवसाय का संचालन किया जाता था। श्रावक आनन्द ने चार करोड़ और चुलनीपिता और महाशतक ने आठ–आठ करोड़ हिरण्य (स्वर्ण सिक्के) व्यवसाय में लगा रखे थे। भगवती सूत्र के अनुसार तंगिका ग्राम के श्रावक सम्पन्न थे तथा वे बैंकिंग के कार्य भी करते थे।[77] जैन आचार दर्शन में अपव्यय पर अंकुश और बचत को प्रोत्साहन की प्रवृत्ति से मुद्रा स्फीति नहीं बढ़ती थी और वस्तुओं की कीमतें नियंत्रित रहती थी। सकल राष्ट्रीय उत्पाद पर इसका अनुकूल असर होता था। इससे समस्त प्रजा लाभान्वित होती थी।

_.k nku

तत्कालीन समय में समाज का धनाढ्य वर्ग बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करता था। बैंकिंग का कार्य अन्य अच्छे व्यावसायों की भांति प्रतिष्ठा प्राप्त था। वणिक, श्रेष्ठी,

गाथापति आदि ऋण देने का कार्य करते थे। उपासकदशांग के दसों गाथापति ऋण देने का कार्य करते थे। ऋण देते समय पूरी तरह से लिखा पढ़ी की जाती थी, किसी की साक्षी ली जाती अथवा गवाह के हस्ताक्षर करवाये जाते। लोग झूठी गवाही भी दे देते थे।[78] इससे तत्कालीन समय में लेखांकन करने और लेखा पुस्तकें, बहियाँ आदि अभिलेख रखने की सूचना मिलती है। जो किसी भी व्यवसाय के लिये अत्यन्त जरूरी होती है। संभवतः इन बहियों के आधार पर ही ऋण न चुकाये जाने की दशा में मुख्य ऋणी के दिवंगत हो जाने पर भी उसके उत्तराधिकारी पर ऋण चुकाने का दायित्व रहता था, ऐसे ऋण को पैतृक ऋण कहा जाता था।[79]

ज्ञाताधर्मकथांग के अनुसार धन्य सार्थवाह ने घोषणा की कि जो भी व्यापारी उनके साथ चलना चाहे और उनके पास धन नहीं हो तो व्यापारी के लिए अग्रिम तौर पर उधार दिया जायेगा।[80] राजगृह के सार्थवाह उनका धन दुगुना करने के लिए ऋण के रूप में देते थे।[81] इससे ऊँची ब्याज दर होने का पता चलता है तथा ऐसे अनेक उदाहरण भी मिलते हैं, जो यह स्पष्ट करते हें कि ब्याज दरें ऊँची भी हुआ करती थी। इतनी ऊँची भी होती थी कि ऋण लेने के बाद सामान्य व्यक्ति के लिए चुकाना मुश्किल हो जाता था। जो व्यक्ति ऋण नहीं लौटा पाता उसे तिरस्कार का पात्र होना पड़ता। ऋणदाता के वहाँ दास के रूप में कार्य करना पड़ता था। विशेष परिस्थितियों में ऋणी का ऋण मुक्त करने की सूचनाएं भी मिलती हैं। वणिक–न्याय के अनुसार यदि ऋण लेने वाला स्वदेश में हो तो अनिवार्य रूप से ऋण चुकाना होता था। किन्तु यदि वह समुद्र यात्रा से विदेश गया है और उसके साथ कोई हादसा हो गया हो और किसी तरह व प्राण रक्षा करके लौटा हो तो उसका कर्ज माफ कर दिया जाता था। किसी की पूरा ऋण चुकाने की क्षमता नहीं रही हो तो उसका आंशिक रूप से ऋण माफ किया जाता था।[82] इससे ऋण और अग्रिम के साथ बीमा का तत्व भी देखने को मिलता है। ऋण निर्धारित दर, निर्धारित अवधि और निश्चित उद्देश्य, उद्देश्यों के लिए दिये जाते थे। व्यवसायिक और गैर व्यवसायिक दोनों उद्देश्यों के लिए ऋण दिये जाते थे। परिस्थितियों के अनुसार ऋण की दर और अवधि परिवर्तित होती रहती थी।

tek,a Lohdkj djuk

जमाएं स्वीकार करने का अर्थ है– ऋण देने के लिए ऋण लेना। इसमें कम ब्याज दर पर ऋण लिया जाता है और अधिक ब्याज दर पर उसे दिया जाता है। यह प्रक्रिया बैंकिंग व्यवसाय के लिये सामान्य बात है। जैसा कि कहा जा चुका है आगम युग में संस्थागत बैंकिंग व्यवस्था नहीं थी। यही कार्य सम्पन्न वर्ग में हाथ में था। जो लोग सामान्य तौर पर उधारी का कार्य नहीं करते थे, वे अपने अतिरिक्त धन से अतिरिक्त आय के लिये उसे विश्वस्त व्यक्तियों के हाथों में सौंप देते थे। इस व्यवहार को निक्षेपण (निक्खेवग) कहा जाता था।[83] कभी–कभी ऐसे मामलों में जमाएं स्वीकार करने वालों की नियत खराब हो जाती थी तो वे धन लौटाने से मना कर देते। इसके लिये वे बही खातों में हेर–फेर कर देते और जमाएं स्वीकार करने के साक्ष्यों को पलट देते थे। इससे बैंकिंग और व्यवसाय जगत को धक्का लगता था। ब्याज दरें ऊँची होने से भी वित्त का प्रवाह अवरूद्ध होता था। लोग धन को खजानों, दीवरों और जमीन में निधि के रूप में सुरक्षित रखते थे।[84] श्रमण परम्परा के व्रतधारी श्रावक आचार्यो, अहिंसा और अपरिग्रह के माध्यम से ऐसी अनैतिक व अहितकारी घटनाओं का प्रतिवाद कर रहे थे। इससे बैंकिंग व्यवसाय के उज्ज्वल भविष्य का द्वार उद्घाटित हो रहे थे।

ifjPNsn r`rh;

jktLo ,oa dj iz.kkfy;k¡

राजस्व का सम्बन्ध सरकारी आय और व्यय से होता है। राज्य अपने राजकीय दायित्वों और खर्चों को वहन करने के लिए जनता से कर आदि के माध्यम से कोष भरता है। राज्य की समृद्धि बेहतर राजस्व प्रणालियों और उनके सही क्रियान्वयन पर निर्भर होती है। आगम ग्रंथों में राजस्व के बारे में पर्याप्त सूचनाएँ मिलती है।

jkT; dh vk; ds L=ksr

कृषि मुख्य व्यवसाय था। बड़े पैमाने पर खेती बाड़ी की जाती थी, इसलिए कृषि संबंधी कर राज्य की आय के मुख्य स्त्रोत थे। इसमें सर्वप्रथम भूमि पर लगने वाले कर 'लगान' की चर्चा यहां की जा रही है।

yxku

जैसा कि चर्चा की जा चुकी है, भूमि पर राज्य का स्वामित्व भी होता था और व्यक्तिगत स्वामित्व के अन्तर्गत अधिकांशतः गाथापति, श्रेष्ठी आदि धनाढ्य व्यक्तियों का स्वामित्व होता था।[85] ऐसी खेती हर जमीन के मालिक स्वयं, खेती न करके उसे भूमिहीन किसानों को खेती करने के लिए सौंप देते थे तथा उसने प्रतिफल स्वरूप उपज का निश्चित अंश प्राप्त करते थे ताकि उसमें से राज्य को भी एक निर्धारित भाग देना होता था। राज्य को भू उपयोग के बदले लिये जाने वाले शुल्क को लगान कहा जाता है। यह शुल्क उपज अथवा मुद्रा में दिया जा सकता था।[86] भूमिहीन कृषक, जो इस प्रकार से हिस्सेदारी से या बंटाई से खेती करते थे, उन्हें 'भाइलग्ग' कहा जाता था।[87] ऐसे भाइलग्गों के साथ कठोर व्यवहार न करने के निर्देश भी दिये जाते थे। इससे प्रतीत होता है कि उनके साथ न्याय नहीं होता और राज्य व भले लोगों द्वारा न्याय की गुहार की जाती होगी।[88] व्यवहार सूत्र के अनुसार खेती के अलावा भी भूमि, उद्योगादि कि लिए किराये पर दी जाती थी।[89] अच्छी पैदावर वाली भूमि पर लगान दर अधिक होती थी। जो किसान नई भूमि को उपजाऊ बनाता था उसे राज्य खेती के लिए आवश्यक विशेष सुविधाएं प्रदान करता था तथा लगान में कमी कर देता था।[90]

इससे स्पष्ट है कि लगान राज्य की आय का प्रमुख माध्यम था, साथ ही इससे राज्य की ओर से कृषि को अनेक रूपो में में संरक्षण मिलता था।

djkjki.k

राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत करारोपण ही होता है। आगम कालीन राज्यों के पास प्रभुत संपत्ति होती थी। उत्सव और खुशी के अवसरों पर राज्य की ओर से प्रजा को करों में छूट प्रदान की जाती थी। व्याख्याप्रज्ञप्ति में 'उस्सुक्म' (बिना शुल्क) और 'उक्करम' (कर मुक्त) शब्द राज्य की कर व्यवस्था का संकेत करते हैं।[91] स्पष्ट है कि राज्य के द्वारा करारोपण के नियम स्थापित थे। कृषि और व्यवसाय अच्छे थे इसलिए वस्तुओं या मुद्राओं के रूप में कर–संगह भी अच्छा होता था। विपाक–सूत्र में राजा को सुझाव दिया गया है कि वह प्रजा को कष्ट देकर कर संग्रह नहीं करे। ऐसा करने वाले राजा को 'पापी' कहा गया है।[92] आचार्य जिनसेन आदर्श करारोपण के लिए उदाहरण देते है कि जिस प्रकार दूध देने वाली गाय को बिना पीड़ा पहुचाये दूध प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार प्रजा को भी बिना कष्ट दिये कर प्राप्त करना चाहिये।[93] सोमदेवसूरि ने भी कहा है कि यदि राजा प्रजा को कष्ट देकर कर प्राप्त करता है तो उससे उसके राज्य के व्यवसाय पर भी विपरीत असर होगा तथा प्रजा छल कपट का सहारा लेगी। वृक्ष का मूलोच्छेदन करने वाला एक बार ही फल प्राप्त कर सकता है।[94] करापवंचन की रोकथाम के लिए राज्य को अतिकर से बचना चाहिये।

18 i:dkj d: dj

आगम ग्रन्थों में करारोपण के संदर्भ प्राप्त होते हैं। जबकि उनके व्याख्या ग्रन्थों में करारोपण की व्यवस्थित प्रणालियों का पता चलता है। इन करों में प्रत्यक्ष कर– आयकर, धनकर आदि की सुस्पष्ट सूचनाओं का अभाव है जबकि गृहकर के स्पष्ट उल्लेख हैं। मुख्य रूप से अप्रत्यक्ष कर लगाये जाते थे। उसमें राजस्व प्राप्ति के रूप में सेवाकर सुस्थापित नहीं थ। उपज, उत्पादन, वाणिज्यिक गतिविधियों और बिक्री पर मुख्य रूप से कर लगाया जाता था। जिनकी तुलना वर्तमान के उत्पाद शुल्क और विक्रय कर से की जा सकती है। डॉ. जगदीश चन्द्र जैन[95.] ने जैन ग्रंथों में वर्णित अठारह प्रकार के करों का उल्लेख किया है–

1. गोकर (गाय की बिक्री पर लगने वाला कर)
2. बलिवर्दकर (बैल की बिक्री पर लगने वाला कर)
3. महिषकर (भैंस की बिक्री पर लगने वाला कर)
4. उष्ट्रकर (ऊँट की बिक्री पर लगने वाला कर)
5. छगलीकर (भेड़–बकरी की बिक्री पर लगने वाला कर)
6. पशुकर (मवेशियों व अन्य पशुओं की बिक्री पर लगने वाला कर)
7. तृणकर (घास पर लगने वाला कर)
8. भूसकर (पशु आहार की बिक्री पर लगने वाला कर)
9. पलालकर (पुवाल / चावल / अनाज और इनके भूसे पर लगने वाला कर)
10. काष्ठकर (लकड़ी व काष्ठ वस्तुओं पर लगने वाला कर)
11. अंगारकर (कोयले व इंधन पर लगने वाला कर)
12. सीता कर (हल व कृषि उपकरणों पर लगने वाला कर)
13. जंघाकर / जंगाकर (चारागाह पर लिया जाने वाला कर)
14. घटकर (मिट्टी के बर्तनों व वस्तुओं पर लगने वाला कर)
15. उम्बरकर (देहली अथवा हर घर से लिया जाने वाला कर)
16. चुल्लगकर (सामुहिक भोज, उत्सव, मनोरंजन आदि पर लगने वाला कर)
17. औतिककर (प्रासंगिक / आकस्मिक व्यवसाय पर कर या ऐच्छिक कर)
18. चर्मकर या कर्मकर (श्रमिकों द्वारा दी गई बेगार)

करों के इस विवरण से स्पष्ट होता है कि ये सारे कर अच्छी खेती बाड़ी, वृहद् पशुपालन और समृद्ध ग्रामीणी अर्थव्यवस्था के सूचक हैं। ग्राम में प्राथमिक उद्योग थे, जबकि नगरों में द्वितीय उद्योग। जब गाँवों में इतने कर लगते थे तो नगरों में द्वितीयक उद्योगों और उनसे आगे के उद्योग धंधों पर कर लगते थे।

xgdj

गृहकर के बारे में आगम ग्रन्थ मौन हैं। परन्तु निर्युक्ति और भाष्य में गृहकर होने का पता चलता है। पिण्डानियुर्क्ति के अनुसार प्रत्येक घर से प्रतिवर्ष दो द्रम (रजत मुद्रा) गृहकर के रूप में राज्य द्वारा वसूल किए जाते थे।[96] वृहत्कल्पभाष्य और

निशिथभाष्य में गृहकर को लेकर मार्मिक घटनाओं की चर्चा है। एक वणिक ने ईंटों से पक्का घर बनाया और घर बन जाने पर उसकी मृत्यु हो गई, कम कमाई होने से उसके पुत्र गृहकर नहीं चुका पा रहे थे। उसके पुत्रों ने वह मकान श्रमण–श्रमणियों के ठहरने के लिए समर्पित कर दिया तथा वे स्वयं पास में ही झोंपड़ी बनाकर रहने लगे, ऐसा करके वे गृहकर के दायित्व से मुक्त हुए थे।[97] ग्रन्थों में एक रूवग प्रतिगृह गृहकर बताया गया है, परन्तु वह एक रूवग कर मासिक है या वार्षिक यह उल्लेख नहीं है। अनुमानतः यह मासिक ही जान पड़ता है। शपरिक नगर में गृहकर (नैगमकर) अनिवार्यतः लागू किये जाने पर वहां के 500 वणिक परिवारों ने इसका विरोध किया। विरोध पर भी करारोपण समाप्त नहीं किये जाने पर उन परिवारों ने आत्मदाह कर लिया।[98] इससे कर चुकाने की अनिवार्यता ओर कर वसूली में सख्ती सिद्ध होती है। अहिंसक आर्थिक प्रणाली में ऐसी कठोरता को स्वीकृति देना सम्भव नहीं है।

okf.kT; dj

जिन वस्तुओं में व्यापार किया जाता उन पर कर लगाया जाता था, इसीलिए जब चम्पानगरी के पोतवणिक मिथिला में व्यापार करने के लिए गये तो उन्होने मिथिला नरेश को विभिन्न प्रकार के मूल्यवान उपहारों से प्रसन्न कर लिया और बिना कर के व्यापार की अनुमति प्राप्त कर ली।[99] राज्य के बाहर से माल आता तो उसे संकंठाण (जांच चौकी/कस्टम हाउस) पर जांचा जाता तथा उस पर कर लगाया जाता। कर लगाने वाले अधिकारी को सुकिया कहा जाता था।[100] व्यापारिक मार्गों पर कर लगाने वाली ऐसी शुल्क शालायें हुआ करती थी। कर की दर वस्तु की कीमत, मार्ग, व्यय तथा अन्य खर्चों को ध्यान में रखते हुए तय थी।[101] इनके अलावा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए तथा उन्हें दुरूस्त रखने के लिए मार्ग कर भी लिया जाता था। आयात पर करारोपण अधिक होने से यह अनुमान लगाया जाता है कि राज्य निर्यात को प्रोत्साहित करता था। बेहतर भुगतान सन्तुलन और विदेशी मुद्रा भण्डार की वृद्धि के लिये निर्यात को प्रोत्साहन दिया जाता है। इससे राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ बनती है।

vU; L=krk l vk;

राजकोष को भरने के लिए आय के अन्य स्त्रोत भी थे। उनमें है उपहार व भेंट, गुप्त सम्पत्ति, निःस्वाभिक धन, पराजित राजाओं से प्राप्त धन, अर्थदण्ड आदि। इनमें कुछ स्त्रोत नकारात्मक है, कुछ सकारात्मक और कुछ स्वाभाविक हैं।

migkj o HkV

राजाओं से विशेष मुलाकात और विशेष अवसरों पर उन्हें उपहार प्रदान किये जाते थे। इससे राजकोष में अभिवृद्धि होती थी। ज्ञाताधर्मकथांग[102] इस बारे में पर्याप्त संदर्भ देता है। मेघकुमार के जन्मोत्सव पर राजा श्रेणिक ने अनेक लोगों और सामन्तों को आमंत्रित किया। जन्मोत्सव में भाग लेने वालों ने राजा को हाथी, घोड़े, रत्न आदि बहुमूल्य उपहार प्रदान किये। लोग किसी व्यवसाय विशेष के लिए अनुमति या कर मुक्ति चाहते तो विभिन्न उपहार लेकर राजा के पास जाते। राजा उपहार स्वीकार करता तथा उन्हें नियमों के अन्तर्गत वांछित छूट या सुविधा प्रदान करता था। थावच्चा सार्थवाही अपने पुत्र के दीक्षा महोत्सव की अनुमति लेने के लिए उपहार लेकर राजा के पास गई थी। राजगृह का श्रेष्ठी नन्द मणिकार राजा श्रेणिक के पास मूल्यवार उपहार लेकर गया और राजगृह में पुष्करिणी निर्मित करने की अनुमति प्राप्त की। कैद से मुक्ति के लिए धन्य सार्थवाह ने संबंधियों और साथियों के माध्यम से राजा को बहुमूल्य उपहार भिजवाये। तत्कालीन समय में राजाओं को उपहार और भेंट देना सामान्य परम्परा थी और उससे राजकोष पर अनुकूल असर होता था।

xlr o ykokfjl /ku

राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत प्राप्त गुप्त निधि राज्य की समझी जाती थी। उस समय में लोग धन को जमीन में गाड़ देते थे, इसलिए गुप्त धन प्राप्ति के अनेक उदाहरण ग्रन्थों में मिलते हैं।[103]

जिस सम्पत्ति का कोई वारिस नहीं होता या किसी व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता तो मरणोपरान्त उस सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार जब भृगु पुरोहित ने परिवार सहित दीक्षा ग्रहण कर

ली तो राजा ने उसकी सम्पत्ति को राजकोष में जमा कराने के आदेश दे दिए।[104] एक बार एक वणिक की मृत्यु हो जाने पर उसकी गर्भवती विधवा की सम्पत्ति इसलिए अधिगृहित नहीं की कि पुत्र होने की स्थिति में वह उसका उत्तराधिकारी हो जाएगा।[105] जीवन की कठिन स्थितियों में पुरूष स्वामित्व और उत्तराधिकार के प्रति उदारता नहीं बरतना समाज को कमजोर करना है। आगम के अनेक सूत्र स्त्री को स्वामित्व, स्वतंत्रता और अधिकारताएँ प्रदान करते हैं।

ijkftr jktkvksa ls izkIr /ku

जो राजा पराजित हो जाता वह विजेता राजाओं को धन संपत्ति भेंट करता था। जम्बूप्रज्ञप्ति के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने जब यवन, अरब आदि देशों के राजाओं पर विजय प्राप्त कर ली तो उन देशों के राजाओं ने भरत को हार, मुकुट, कुण्डल आदि आभूषण और रत्न आदि भेंट किये थे।[106] हाथी गुफा के शिलालेख से ज्ञात होता है कि कंलिगाधिति खारवेल को पराजित राजाओं से मणि, रत्न आदि संपत्ति प्राप्त हुई थी।[107] इससे भी राजकोष में वृद्धि होती थी, परन्तु ये माध्यम कोष वृद्धि के स्थायी उपाय नहीं थे। प्रासंगिक अथवा आकस्मिक माध्यमों पर निर्भरता राज्य की स्थिति को सुदृढ़ नहीं बना सकती। बेवजह शक्ति प्रदर्शन और साम्राज्य विस्तार की लालसा में की गई लड़ाईयों से मानव जाति का लाभ नहीं हुआ।

vFkZn.M

राजनियमों का उल्लंघन करने पर जुर्माना लगाया जाता था। इससे राजस्व में वृद्धि होती थी और शासन प्रशासन चुस्त दुरूस्त रहता था। राजा श्रेणिक ने मेघकुमार के जन्मोत्सव की खुशी में दण्डकारों को माफ कर दिया था।[108] इससे जुर्म की सजा के रूप में अर्थदण्ड व्यवस्था सिद्ध होती है। आदि पुराण में तीन प्रकार के दण्डों में अर्थहरण–दण्ड को प्रथम बताया है। अर्थदण्ड का मुख्य ध्येय प्रजा से नियमों का अनुपालन करवाना होता है, न कि राजकोष भरना।

dj lxg.k

राज्य में कर संग्रहण की माकूल व्यवस्थाएँ थी। कही–कहीं पर कर वसूली में राज्य कर्मचारियों द्वारा कठोरता बरतने के उदाहरण भी मिलते हैं। विपाकसूत्र में विजय विधमान खेट का उल्लेख है। वह 500 गाँवों तक फैला हुआ था। यहाँ इकाई नामक राष्ट्रकूट कर, भर (सीमा शुल्क), भेद्य (दण्डकर), देय (अनिवार्यकर) आदि की वसूल में अत्यन्त निर्दयता से पेश आता था। वह कुन्त (तलवार से) लंछपोष (लंछ नामक चोरों को नियुक्त करके) आदीपन (आग लगवा कर) पंथकोट्ट (पथिकों को कत्ल करवा कर) आदि अमानुषिम उपायों से प्रजा को उत्पीड़ित और शोषित करता था।[109] ऐसे राजा को ग्रंथों में पापी राजा कहा गया है और उसके भयंकर दुष्परिणाम बताकर क्रूरता से बचने का संदेश दिया गया है। सामान्यतया कर वसूली में इतनी कठोरता नहीं बरती जाती थी। करदाताओं को कर जमा नहीं कराने पर उन्हें उचित तरीके से दण्डित किया जाता था।[110] कर वसूली में अत्यधिक कठोरता राज्य और प्रजा दोनों के हित में नहीं है।

dj efDr

आगम ग्रंथों में कर मुक्ति के अनेक प्रमाण मिलते हैं। राजा किसी वस्तु विशेष, व्यक्ति या समूह विशेष को भिन्न–भिन्न कारणों से कर मुक्ति प्रदान किया करते थे। राज्य में खुशी के अवसरों और मंगल प्रसंगों पर भी प्रजा को कर से राहत प्रदान की जाती थी। राजकुमार वर्द्धमान के जन्म के मंगल अवसर पर राजा सिद्धार्थ ने दस दिनों तक प्रजा को भूमिकर, चुंगीकर, दण्ड, बेगार आदि राजकीय दायित्यों से मुक्ति प्रदान की थी।[111] तीर्थंकर महावीर के परम भक्त राजा श्रेणिक ने पुत्र मेघरथ के जन्मोत्सव पर भी दस दिनों तक सभी प्रकार के करों से प्रजा को मुक्त कर दिया था।[112] ज्ञाता धर्मकथांग के अनुसार हस्तिशीर्ष के पोतवणिकों से राजा कनककेतु को बहुमूल्य उपहार प्राप्त किये और पूछने पर कलियद्वीप में श्रेष्ठ सुन्दर अश्व होने की सूचना मिली तो उन्हें मुक्त रूप से व्यापार करने की अनुमति प्रदान कर दी थी।[113] अनेक उपयोगी वस्तुओ, विशेष महत्व के उद्योगों या व्यापारों अथवा व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह के निर्दिष्ट अवधि या सदा के लिए छूट प्रदान की जाती थी।

djkiopu

मानव की वृत्ति कर नहीं देने की या न्यूनकर देने की रहती है। यह वृत्ति प्राचीन समय में भी थी। कई व्यापारी उचित करारोपण के बाजजूद कर चोरी कर लेते थे। जबकि कई बार राज्य द्वारा अनुचित करारोपण से व्यवसायियों में करापवंचन की प्रवृत्ति बढ़ जाती थी। करों के बचने के लिए व्यापारी राजपथ से यात्रा नहीं करते थे[114] तथा कर बचाने के लिए अनेक प्रकार के यत्न करते थे। आचार्य व्रत करापवंचन पर नैतिक रूप से अंकुश लगाता है।

cxkj iFkk

राज्य संचालन में प्रत्येक वर्ग और स्तर के व्यक्ति का योगदान होता था, जो व्यक्ति निर्धन होते थे वे राज्य के लिए श्रम का दान करते थे, इसे बेगार कहा जाता था। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार राजा की आज्ञा से श्रमिक बेकार करते थे तथा वह अनिच्छापूर्वक की जाती थी।[115] बेगार को राज्य का अधिकार बताया जाता था।[116] कर मुक्ति के अन्तर्गत राजा बेगार से भी मुक्ति प्रदान करता था। कालान्तर में इस प्रवृत्ति ने निर्धनों के शोषण का रूप ले लिया था। भगवान महावीर के उपदेशों में शोषण की स्पष्ट मनाही थी फलस्वरूप उनके अनुयायियों ने मानवता की प्रतिष्ठा बहाली के लिए परिणामदायी कार्य किये।[117.]

Tku dY;k.k

राजा को प्रजा का पालक कहा गया है। अन्तकृतदशा सूत्र के अनुसार वासुदेव श्रीकृष्ण ने घोषणा करवाई थी कि जो भी व्यक्ति दीक्षा लेना चाहे, वह दीक्षा ले सकता हैं, उसके परिवार के भरण–पोषण की सारी समुचित व्यवस्था राज्य की ओर से की जायेगी।[118] राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार राजा प्रदेशी श्रमण केशीकुमार का अनुयायी बन जाने के बाद अपने अधीनस्थ सात हजार गाँवों की आय का चौथाई भाग दान देने में व्यय करने लगा था।[119] कलिंग नरेश खारवेल अपनी प्रजा के लिए प्रचुर धन व्यय करता था।[120] इससे लगता है कि उस समय जिन राज्यों या राजाओं पर श्रमण परम्परा का प्रभाव था, वहाँ राजस्व का अधिकांश भाग अधिकतम प्रजा हित पर व्यय होता था।

अनुत्पादक और सैन्य खर्च घट जाता था, जिसका प्रभाव बाद में भी देखा जाता है। इससे राज्य और प्रजा की समृद्धि पर अनुकूल असर होता था।

'kklu O;oLFkk

राज्य की व्यवस्थाओं को संभालने के लिए शासकीय और प्रशासकीय अधिकारियों और कर्मचारियों पर काफी व्यय होता था। ग्रंथों में युवराज, श्रेष्ठी, अमात्य, पुरोहित, गणनायक, दण्डनायक, राजेश्वर, सेनापति, तलवार, मांडविक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, भण्डारी, गणक, द्वारपाल, अंगरक्षक, दूत, संधिपाल आदि राज कर्मचारियों और अधिकारियों के उल्लेख मिलते हैं।[121] इन कर्मचारियों और अधिकारियों के वेतन पर राज्य का बहुत बड़ा भाग खर्च होता था। इससे राजकीय सेवाओं में पर्याप्त रोजगार के अवसरों का पता चलता है। अनुचर से लगाकर अधिकारी वर्ग तक राजकीय सेवाओं में होते थे।

न्याय प्रणाली का संचालन भी राज्य के पास था। स्थानांग सूत्र के अनुसार आंतरिक शांति ओर सुरक्षा के लिए देश में उचित न्याय व्यवस्था थी।[122] न्यायाधिकारियों पर राज्य का व्यय होता था। कहीं निष्पक्षता तो कहीं पक्षपातपूर्ण न्याय व्यवस्था के उदाहरण मितले है।[123] गलत दण्ड के कारण कई बार निर्दोष दण्डित हो जाते थे और अपराधी साफ छूट जाते थे। भगवान महावीर झूठी साक्षी देने का निषेध करते हैं।[124]

lSU; O;oLFkk

सेना पर भारी भरकम खर्च उस समय भी किया जाता था। कभी नारियों के लिए तो कभी साम्राज्य विस्तार के लिए या कभी किसी और कारण से राजाओं में युद्ध छिड़ जाता था। अधिकतर युद्ध तो प्रतिष्ठा और शक्ति प्रदर्शन के लिए लड़े जाते थे। महज हार और हाथी के लिए ऐसा भयानक युद्ध लड़ा गया कि उसमें बड़ी संख्या में सैनिकों को अपनी जान की बाजी लगानी पड़ी।[125] इसके लिए राज्य के पास चतुरंगिणी सेना होती थी– रथ, अश्व, हस्ति और पदाति सेना। स्थानांग में तो भैंसों की सेना का भी उल्लेख है।[126] यहाँ तक कि कन्या को दहेज के रूप में भी इन वस्तुओं को दिया जाता था।[127] सेना के इतने बड़े तामझाम, सैनिक, हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्रास्त्र आदि पर बहुत बड़ी राशि खर्च होती थी। अनेक प्रकार के युद्ध, अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्र

और अनेक प्रकार की व्यूह रचनाएँ होती थी। राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार कैकेयार्द्ध नरेश प्रदेशी राज्य की आय का एक चौथाई सेना पर व्यय करता था।[128] सम्राट खारवेल ने 1135 स्वर्ण मुद्राएँ खर्च करके अपनी चतुरंगिणी सेना बनायी थी।[129] सैन्य–व्यवस्था, आत्म रक्षा और राज्य की सुरक्षा के लिए होती थी, आक्रमण करने के लिए नहीं। भगवान महावीर युद्ध, आक्रमण और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति को अनुचित ठहराते हैं। उनका दर्शन अयुद्ध और अनाक्रमण का है। न्याय रीति पर चलने वाले व्रती नरेश मैत्री और विकास पर ध्यान केन्द्रित करते थे। राजा श्रेणिक और कणिक के राज्य में संधिपाल होते थे, जिनका कार्य अन्य राजाओं से मैत्री स्थापित करना और उसे कायम रखना होता था। सार्थवाह व्यापारिक संबंधों से मैत्री स्थापित करते थे।[130]

vU; 0;;

लम्बा चौड़ा राज्य और उसमें विभिन्न प्रकार की प्रजा निवास करती थी। राज्य के आकस्मिक व्यय भी बहुत होते थे। विलासी राजाओं के बारे में भी सूचनाएं मिलती हैं। उनके अन्तःपुर पर भी आश्चर्यजनक व्यय होता था। राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार कैकेयार्द्ध नरेश प्रदेशी राज्य की आय का एक चौथाई अन्तःपुर पर व्यय करता था।[131] जैन धर्म का पालन करने वाले राजा विलासी और सुविधा भोगी नहीं होते थे, इसीलिए उनके अन्तःपुर पर अनावश्यक व्यय नहीं होता था। अनेक राजा उनके पुत्रों को राज्य सौंपकर मुनि जीवन अंगीकार कर लेते थे।

राज्य संचालन में अर्थ की केन्द्रिय भूमिका होती है। राज्य की उन्नति–अवनति उसके आर्थिक प्रबंधन पर टिकी हुई होती है। इस प्रकार हम देखते हें कि शासन, प्रशासन और सैन्य व्यवस्था के साथ–साथ राज्य लोक कल्याणकारी कार्यों में गहरी रूचि लेता था। कोई भी राजा अपने शासन काल में अच्छे और स्थायी महत्व के कार्यों से ही यशस्वी हो सकता था और राजाओं का यह प्रयास रहता था। राजाओं के द्वारा किये गये कालजयी कार्य आज इतिहास बन गये हैं।

lUnHkZ

1. पच्चीस बोल का थोकड़ा। 17वाँ बोल।
2. मार्शल एल्फर्ड, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, खण्ड चतुर्थ
3. जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन एक अध्ययन, पृ.13
4. भगवती सूत्र 1/1/33
5. पन्नावणा 1/40
6. औपपातिक सूत्र 3
7. उत्तराध्ययन चूर्णि 8/258
8. औपपातिक सूत्र 6 एवं देखें सूत्र 7 व 8
9. प्रश्नव्याकरण 1/9
10. वही 1/6, विपाक सूत्र 4/6
11. आचारांग 2/4/202
12. उपासकदशांग 1/51 (पन्द्रह कर्मादान के अन्तर्गत हरे–भरे वृक्षों को काटने का स्पष्ट निषेध है)
13. प्रज्ञापना 1/24, जीवजीवाभिगम 3/3/21, उत्तराध्ययन 36/73–76, सूत्रकृतों 2/2/745
14. प्रश्नव्याकरण 1/14, 1/3
15. पउमचरिउं 10/36
16. रूद्रराम का जूनागढ़ अभिलेख

17 जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन एक अध्ययन पृ.–15

18 विपाक सूत्र 8/3

19 प्रश्नव्याकरण 2/13

20 उपासकदशांग, प्रथम अध्ययन

21 जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन एक अध्ययन, पृ 1.–18

22. आचारांग 2/10/310

23 कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/1/19 एवं 4/1/46

24 वसुदेवहिण्डी भाग 1

25 ज्ञाताधर्मकथांक 13/15

26 टण्डन, वीरेन्द्र, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, पृ.168

27 प्रश्नव्याकरण 10/3, बृहत्कल्प भाष्य 3/2203

28 आवश्यक सूत्र में प्रथम और चतुर्थ व्रतों के अतिचार।

29 महाप्रज्ञ, आचार्य श्रमण महावीर, प्रथम अध्याय, पृ. 4

30 ज्ञाताधर्मकथांग 1/59

31 व्यवहार भाष्य 8/208

32 महाप्रज्ञ, आचार्य, 'श्रमण महावीर' में वर्धमान के वैराग्य का निमित्त। पृष्ठ–16ए 1996

33 निशीथ चूर्णि 9/3

34 वसुदेवहिण्डी 2/264

35 कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ। वइस्से कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।– उत्तराध्ययन 25/33, उपमचरिउं 2/103, 115, 117
36 कौटिल्य अर्थशास्त्र 1/3/1, मनुस्मृति 1/89–90
37 नन्दी सूत्र 53
38 उपासकदशांग 1/4, विपाक सूत्र 8/6, व्यख्याप्रज्ञप्ति 9/33/1
39 आत्मारामजी, आचार्य सम्पादित उपासकदशांग पृ. 366–367
40 उपासकदशांग 1/2–28
41 प्रश्नव्याकरण 10/3, उत्तराध्ययन 3/17
42 कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/4/1
43 अन्तकृतदशा 1/5
44 आचारांग 1/2/3/81 व 1/2
45 नीतिवाक्यमृत 1/31, 29/105
46 मुनि चौथमलजी, जैन दिवाकर, नवकार मंत्र की आरती का तीसरा पद– 'णमो आयरियाणं छत्तीस गुण पालक, जैन धर्म के नेता संघ के संचालक।'
47 दशाश्रुतस्कन्ध, चतुर्थ उद्देशक (प्रथम, तृतीय व अन्य उद्देशक भी द्रष्टव्य)
48 उपासकदशांग 1/28, 7/6
49 आचारांग 1/2/1/67 (अकडं करिस्सामिति)
50 निशीथचूर्णि 3/2691, 4362
51 जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन एक अध्ययन, पृ.–33
52 जैन, के.सी., लॉर्ड महावीर एंड हिज टाइमस, पृ.–306, मोतीदास बनारसीदास पब्लिकेशन 1991
53 कनिंघम, ए., कॉइंस ऑफ एंशेंट इण्डिया, पृ.–43, अर्लीएस्ट टाइम्स, 1989
54 विनय विजय, उपाध्याय, भारतीय सिक्के, पृ.–6
55 कय–विक्कय–मास–अद्धमास–रूवग संववहाराओ– सूत्रकृतांग, 1/2/7/3, उत्तराध्ययन 8.17
56 उपासकदशांग, ज्ञाताधर्मकथांग प्रथम अध्ययन तथा निशीथ सूत्र 5.35
57 उत्तराध्ययन 8वाँ अध्ययन और प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, पृ.–10
58 भण्डारकर (डॉ.) ऐंशिएंट इंडियन न्यूमिस्मेटिक्स पृ.–63
59 उरत्थ–दीणार–मालिय–विरइएणं– कल्पसूत्र 38
60 जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–188
61 निशीथचूर्णि 3.4316
62 उत्तराध्ययन चूर्णि 4/119
63 आवश्यकचूर्णि भाग 2
64 दशवैकालिकचूर्णि पृ.–42
65 उत्तराध्ययन 20/42 (कूडकहावणे) एवं 8/17 (दो मास कयं कज्जं, कोडिए वि न निट्ठियं)
66 प्रश्नव्याकरण 2/3
67 कौटिलीय अर्थशास्त्र 4/1/76
68 बृहत्कल्पभाष्य 2.1969
69 निशीथचूर्णि 3.3070

70 आत्माराम, आचार्य, श्री उपासकदशांग सूत्रम्, परिशिष्ट, पृष्ठ—394

71 शास्त्री, नेमिचन्द्र (डॉ.) 'भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाड्मय का अवदान' खण्ड द्वितीय अध्याय बारहवाँ।

72 बृहत्कल्पभाष्य 4.3891—92 एवं निशीथचूर्णि 2.959

73 ज्ञाताधर्मकथांग 8/66

74 अनुयोगद्वार 14/188 से 191

75 अनुयोगद्वार सूत्र 132—133

76 उपासकदशांग प्रथम अध्ययन सूत्र 4

77 व्याख्याप्रज्ञप्ति 2.5.106

78 प्रश्नव्याकरण 2/10

79 सूत्रकृतांग 1/2/2/179

80 ज्ञाताधर्मकथांग 15वाँ अध्ययन

81 ज्ञाताधर्मकथांग दूसरा अध्ययन

82 बृहत्कल्पभाष्य 1.2690, 6.6309

83 निशीथ चूर्णि 1.5.292

84 निशीथ चूर्णि 3.5.4312।

85 उपासकदशांग प्रथम अध्ययन

86 प्रश्नव्याकरण 2/13

87 व्यवहारसूत्र 9/17—18

88 आवश्यकचूर्णि भाग 2, पृ. 8

89 बृहत्कल्पभाष्य 2/1092

90 कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/1/19

91 भगवती सूत्र 11/11/429

92 जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पृ.—165

93 पयस्विन्या यथा क्षीरं दोहेणोपजीव्यते। प्रजाप्येवं धनं धनं दोहया नीति पीडाकरेः। — आदिपुराण 16/254

94 नीतिवाक्यामृत 8/1185

95 जैन, जगदीश चन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.111—112

96 पिण्डनिर्युक्ति गाथा 47

97 बृहत्कल्पभाष्य 3/4770

98 निशीथभाष्य 16.5156

99 ज्ञाताधर्मकथांग 4/43

100 निशीथचूर्णि 4.6519

101 'सुकादीपरिसुद्धे, सइलाभे, कुणइ वणिओ चिट्ठं' — बृहत्कल्पभाष्य 2.952

102 ज्ञाताधर्मकथांग अध्ययन पहला, पाँचवाँ, आठवाँ, तेहरवाँ।

103 जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ.—113

104 पुरोहियं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए। कुडुम्बसारं विउलुत्तमं तं, रायं अभिक्खंउ समुवाय देवी। — उत्तराध्ययन सूत्र 14/37

105 व्यवहार भाष्य 7/418

106 जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति 2/13, 3/18

107 खारवेल का हाथीगुफा शिलालेख पंक्ति 13

108 ज्ञाताधर्मकथांग प्रथम अध्ययन

109 जैन, जगदीश चन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. 116 और विपाकसूत्र 1/49

110 निशीथचूर्णि 4.6296

111 उम्मुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अभडप्पवेसं अदण्डकोदंडिम – कल्पसूत्र 99

112 उस्सुक्कं उक्करं .... दसदिवसियं करेह कारवेह य। – ज्ञाताधर्मकथांग 1/61

113 ज्ञाताधर्मकथांग 17/17

114 राजप्रश्नीय सूत्र 48

115 रायवेट्ठिं व मन्नता – उत्तराध्ययन 27/13

116 आदिपुराण 16/168

117 सूत्रकृतांग सूत्र 2/1/643

118 अन्तकृतदशा सूत्र पंचम अध्ययन

119 राजप्रश्नीय सूत्र 83

120 हाथीगुफा शिलालेख पंक्ति 14–16

121 औपपातिक सूत्र 40, प्रश्नव्याकरण 4/8, ज्ञाता 1/24

122 ठाणांग 7/66

123 उत्तराध्ययन 9/30

124 आवश्यक सूत्र, दूसरा व्रत

125 व्याख्याप्रज्ञप्ति, निरायावलिका, आवश्यकचूर्णि

126 व्याख्याप्रज्ञप्ति, 7/9/7, स्थानांग सूत्र 5/57

127 जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति 3.41–71

128 राजप्रश्नीय सूत्र 43

129 पनतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति दुतिये च वसे अचितयिता सातकर्णि पछिमदिसं हय–गज–रध–बहुलं दंडं पठापयति .... – हाथीगुफा अभिलेख पंक्ति 4

130 अनुयोगद्वार सूत्र 15

131 राजप्रश्नीय सूत्र 83

r'rh; v/;k;

0;kikj] okf.kT; m|ksx % tSu lkfgR; esa

ifjPNsn izFke

iz'kkfed m|ksx

- कृषि एवं ग्राम्य अर्थव्यवस्था
- पशुपालन
- उद्यानिकी, वानिकी एवं खनन

ifjPNsn f}rh;

f}rh;d m|ksx% 0;kikj o okf.kT;

- व्यापार एवं व्यापारी
- व्यापार एवं व्यापारियों के प्रकार
- व्यापारिक संगठन व प्रमुख केन्द्र

ifjPNsn r'rh;

vk;kr&fu;kZr

- व्यापारिक मार्ग
- आर्थिक पक्ष से जुड़े प्रमुख चरित्र
- उपासकदशांग के दस श्रावक

v/;k; rrh;

0;kikj] okf.kT;] m|kx% tu lkfgR; e

संसार के सभी प्राणी कुदरती जीवन चक्र के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु मानव ने हर क्षेत्र में नियमबद्ध व्यवस्थाओं को स्थापित किया है। इनमें आर्थिक गतिविधियाँ प्रमुख हैं। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने कर्मभूमि के आरम्भ में मनुष्य जाति को आर्थिक जीवन की शिक्षाएँ दी। आगमों में आर्थिक जीवन को स्पष्ट करने वाली बातें और घटनाएँ यत्र–तत्र बिखरी बड़ी हैं। इन गतिविधियों को निम्नानुसार वर्गीकृत कर सकते हैं–

ikFkfed m|kx& कृषि, पशुपालन, उद्यानिकी, वानिकी, खनन आदि

f}rh;d m|kx& गृह–कुटीर उद्योग, लघु और बड़े उद्योग।

0;kikj o okf.kT;& स्वदेशी, विदेशी व्यापार, आयात–निर्यात आदि।

ifjPNsn iFke

ikFkfed m|kx

भारत गाँवों का देश है। वर्तमान में यहाँ करीब 7 लाख गाँव गाँव है। गाँधीजी के अनुसार गाँवो में भारत की आत्मा निवास करती है। कृषि अथवा खेती बाड़ी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। कृषि संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आधारभूत उद्योग है। अधिकतम उद्योग प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आधारित होते हैं। भारत की 65–70 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है। आज से हजारों वर्ष पहले आजीविका का मुख्य स्त्रोत कृषि ही था। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने सभ्यता के आरम्भ में कृषि का सूत्रपात किया। भारत दुनिया का पहला किसान मुल्क है और कृषि कार्य सभ्यता की प्रथम सीढ़ी है।[1]

जैन आगमों में कृषि को आर्य कर्म कहा गया है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में बताया गया है कि भगवान ऋषभदेव ने प्रजा हित के लिए सुख सुविधा के लिए कृषि आदि

का उपदेश दिया था– प्याहियाए उवदिसई। उमास्वाति ने तत्वार्थ सूत्र में स्वोपज्ञ भाष्य में आर्य कर्म में कृषि को भी गिनाया हैं– कर्मार्या यजनायाजनाध्ययनाध्यापन कृषि वणिज्योनिपोषण वृतयः।[2] भगवान महावीर के मुख्य श्रावक आनन्द गाथापति का प्रमुख व्यवसाय कृषि–कार्य था। उसके पास 500 हल प्रमाण से भी अधिक कृषि भूमि थी। जिसकी उसने 500 हल–प्रमाण तक मर्यादा कर ली थी। उस भूमि पर कृषि कार्य होता था।

df"k Hkfe

कृषि का इतना विकास था कि कृषि से संबंधित अनेक प्रयोग और प्रक्रियाएं सम्पन्न की जाती थी, जिससे पैदावार बढ़े। लोगों को कृषि भूमि, खाद और मिट्टी का ज्ञान था। उस समय की कृषि किसी भी प्रकार के रासायनिक और अप्राकृतिक खादों, कीटनाशकों आदि से रहित थी, इसलिए स्वास्थ्य, पर्यावरण और अहिंसा की दृष्टि से उपयुक्त थी। काली मिट्टी वाली भूमि उपजाऊ और कृषि योग्य मानी जाती थी जबकि पथरीली और ऊसर भूमि में खेती नहीं की जाती थी।[3] लोग कृषि ज्ञान सम्पन्न थे।

df"k vkj xkE; vFkO;oLFkk

प्राचीन भारत में गाँवों की संख्या वर्तमान से कई गुना अधिक थी। गाँव, कृषि और पशुपालन परस्पर जुड़े हुए थे। पशुपालकों के गाँव को ''घोष'' कहा जाता था। अनाज को एकत्रित और सुरक्षित करने के लिए जंगल में तथा पहाड़ों पर लघु गाँव बसाये जाते थे उन्हें ''संबाध'' या ''संवाह'' कहा जाता था। जिन गाँवों के चारों ओर मिट्टी की प्राचीर बनाई ताजी थी, उन्हें ''खेट'' कहा जाता था। सुरक्षा और सुविधा की दृष्टि से कुछ गाँवों के बीच एक केन्द्रिय गाँव बनाया जाता था, जो नगर से छोटा और आसपास के गाँवों से बड़ा होता था, ऐसे केन्द्रिय गाँव को ''खर्वट'' कहा जाता था। इसके चारों ओर मिट्टी की प्राचीर होती थी। कौटिल्य ने 200 गाँवों के बीच एक ''खर्वट'' बनाने के लिए कहा है। जिन गावों के आस पास बहुत दूर तक कोई गाँव नहीं हो, उसे ''मंडब'' कहा जाता था।[4] बृहत्कल्पभाष्य में आदर्श गाँव की विशेषताएँ बताई गई हैं–

– जहां पानी के लिए कुँआ, सरिता, सरोवर या पर्याप्त जल स्त्रोत हो

– आसपास खेत हो

– निकट में वन उपवन हो,

– खेलने के लिए मैदान हो तथा

– घूमने के लिए स्थान हो।

नदी, वन, पहाड़, देवस्थान, उद्यान, वृक्ष, श्मशान आदि गाँवों के सीमा चिन्ह माने जाते थे। व्यवसाय और समुदाय के अनुसार भी गाँव बस जाते और उनका नामकरण हो जाता था। जैसे वैशाली तीन भागों में विभक्त थी बंभण–ग्राम, खतियकुण्ड गाम और वाणियगाम। इनमें क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वणिक लोगों का बाहुल्य था। ''गाँवों की अपनी व्यवस्था होती थी, वे आत्मनिर्भर और स्वावलंबी होते थे। सभी जातियों और वर्णों के व्यक्ति सौहार्द्रपूर्वक अपना जीवन जीते थे। यहां तक पशु पक्षियों के बीच भी आत्मीय रिश्ता होता था। पर्यावरण और पारिस्थितिकी का ध्यान रखा जाता था। व्यस्त बाजार वाले गाँव ''निगम'' तथा औद्योगिक गाँवों के निकट बनने वाले गाँव 'द्वारग्राम' कहलाते थे। गाँवों के इस प्रकार के वर्गीकरण का उल्लेख से उस समय की विकसित अर्थव्यवस्था, ग्राम और नगर व्यवस्था का पता चलता है।[5] कृषि के साथ–साथ कुटीर उद्योग भी ग्रामीण व्यवस्था के आधार थे।

Qly

आचारांग में बताया गया है कि शाक सब्जी के खेतों में, बीज प्रधान खेतों तथा शालि, ब्रीही, माष, मूंग, कुलत्थ, जौ–ज्वार आदि धान्यों के खेतों में साधु मल मूत्रादि का विसर्जन नहीं करे।[6] सूत्रकृतांग में शालि, ब्रीही, कोद्रव (एक प्रकार का धान्य) कांगणी, परक, राल आदि प्रकार के धान्यों के खेतों का वर्णन है। वर्ष में दो और तीन फसलें प्राप्त की जाती थी।

चावल (शालि) की खेती उस समय बहुत की जाती थी। ज्ञाताधर्मकथांग में रोहिणी को प्राप्त पांच चावल के दाने रोहिणी के पीहर में अलग से बाये जाते है और पांच वर्ष बाद श्वसुर धन्य सार्थवाह द्वारा पुनः मांगने पर गाड़ियाँ भरकर लौटाये जाते थे। भारत के पूर्वीय प्रान्तों में कमलशालि (उत्तम जाति के बासमति चावल)[7] पैदा होते

थे। रक्तशालि, महाशालि और गंधशालि आदि अनेक प्रकार की चावलों की किस्में होती थी।[8] शालि के अलावा ब्रीही और अणु शब्द चावल की और अन्य किस्मों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। लोग विधिपूर्वक खेती करते थे, जिससे फसल अच्छी और भरपूर होती थी। अन्य बहुत प्रकार के धान्यों और चीजों की खेती की जाती थी।

fofHkUUk /kkU;

प्राचीन जैन ग्रंथों में सत्रह प्रकार के धान्यों का वर्णन है[9]–ब्रीही (चावल), यव (जौ), मसूर, गोधूम (गेहूँ), मुद्‌ग (मूंग), माब (उड़द), तिल, चणक (चूना), अणु (चावल का एक प्रकार), प्रियंगु (कंगनी), कोद्रव (कोदो), अकुष्ठक (कुट्टु) शालि (चावल), आढकी, कलाय (मटर), कुलत्थ (कुलथी) और सण (सन) अन्य धान्यों में निष्पाप, आलिसंदग (सिलिन्द), साडिण (अरहर), पलिमंथक (काला चना), अतसी (अलसी), कुसुम्ब (कुसुम्बी), कंगु, रालग (कंगु की प्रजाति) सर्षप (सरसों), हिरिमंथ (गोल चना), कुक्कस पुलाक (निस्सार अन्न) आदि सम्मिलित हैं। इन धान्यों में किसी–न–किसी रूप में करीब सभी प्रकार के धान्य, दलहन और तिलहन समहित हो जाते है। ये धान्य विभिन्न वातावरण, मौसम और भूमि के अनुसार उगाये जाते थे। इससे विभिन्न परिस्थितियों में कृषि की समृद्ध परम्परा का पता चलता है।

elky

ग्रंथों में अनेक प्रकार के मसालों के वर्णन मिलते हैं यथा– श्रृंगवेर (अदरक), सुंठ (सूंठ), लवंग (लौंग), हरिद्रा (हल्दी), वेसन (जीरकलवणादि), मरिय (मिर्च), पिप्पल (पीपल), सारिसवत्थग (सरसों), जीरा, हींग, कपूर, जायफल, प्याज, लहसुन आदि।[10] इन उल्लेखों से स्पष्ट होता हे कि विभिन्न मसालों की खेती की जाती थी। कुछ मसाले मुख्यतः भोजन को स्वादिष्ट बनाने और कुछ औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। भारत में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति मुख्यतः वानस्पतिक रही है। उस समय के व्यक्तियों को मसालों के साथ अनेक प्रकार की जड़ी बूटियों और वनस्पतियों तथा उनके उपयोग का पता था।

xUuk

चावल की भाँति गन्ना (उच्छु) भी मुख्य फसलों में माना जाता था। गन्ने की खेती होती थी और वृहद स्तर पर नियमित रूप से होती थी। गुड़, शक्कर, और खाण्डसारी उद्योग गन्ने की खेती पर ही निर्भर होने से गन्ने को अर्थशास्त्रीय महत्व प्राप्त था। भगवान श्री ऋषभदेव का प्रथम पारणा ईक्ष रस से ही हुआ था। शास्त्रों में ईक्ष गृहों के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें साधु–साध्वियों के ठहरने के उल्लेख भी मिलते हैं। मत्स्यण्डिका, पुष्पोत्तर और पद्मोत्तर नाम की शक्करों का उल्लेख मिलता है।[11] ईख के साथ कद्दू बोया जाता था और लोग गुड़ के साथ उसे खाते थे।

dikl

समाज की वस्त्र आवश्यकता की पूर्ति के लिए कपास की खेती भी मुख्य धंधा था। समूचा वस्त्र उद्योग कपास की खेती पर ही निर्भर था। कपास को तुलकड़, कप्पास और फलही कहा जाता था। वानस्पतिक रेशम और ऊर्णा (ऊन) क्षौम (छालरी) और सन की फसलें होती थी।[12] सूत्रकृतांग में शालि वृक्ष का उल्लेख है जिससे रेशमी सूत प्राप्त होता था।

lkx lfCt;k vkj vU;

बैंगन, ककड़ी, मूली, पालक (पालंक), करेला (करेल्ल), कन्द (आलुग), सिंघाड़ा (श्रृगारक) सूरण, तुम्बी, मूली, ककड़ी आदि तरह तरह की सब्जियाँ बोयी जाती थी। ताम्बूल (पान), मूंगफली, सीतल चीनी (कक्कोल) आदि का उपयोग होता था। वृक्ष, गुल्म, गुच्छ, लता वल्लि[13] आदि के उल्लेख विविधतापूर्ण कृषि और वृक्ष खेती को स्पष्ट करते हैं।

Hk.Mkj.k

धान्य को सुरक्षित रखने के लिए भी रोचक तरीके अपनाये जाते थे। ज्ञाताधर्मकथांग[14] के अनुसार वर्षा ऋतु में धान्य को घड़ो में, दोरो में, मंच, टाण अथवा घर के ऊपर बने कोठों में रखा जाता था। इन कोठों अथवा घड़ों को मिट्टी और गोबर से लीप–पोतकर बन्द कर दिया जाता था ओर ऊपर पहचान के लिए मुहर भी लगाई

जाती थी। भण्डारण इतना वैज्ञानिक था कि धान्य की अंकुरण शक्ति वर्षों तक बनी रहती थी।[15]

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी ऐसे भण्डारणों का उल्लेख मिलता है, जो वर्षा, आंधी और किसी प्रकार की आपदाओं से अप्रभावित रहते थे। अनुयोगद्वार सूत्र[16] में धान्य भण्डारण के लिए मिट्टी के बड़े–बड़े भाण्डों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है, जिनमें मुख, इदुर–सूत या बालों की बनी बोरी, आलिन्द–धान्य रखने का बर्तन विशेष और उपचारि (ओचार) विशाल कोठार सम्मिलित हैं।

भण्डारण से पूर्व धान्य की कटाई, खलियान पर लाना और साफ करने की जो विधियाँ बताई गई हैं, वे आज भी पारम्परिक कृषि में गाँवों में अपनायी जाती हैं। फसल काटने को ''असिसहि'' कहा जाता था।[17] कटाई का कार्य स्वयं किसान द्वारा किया जाता था और अधिक होने पर दूसरे व्यक्तियों से भी करवाया जाता था।[36] काटने के बाद धान्य खलवाड़ (खलिहान) पर लाया जाता, उसकी मड़ाई की जाती तथा उडावनी से उसे साफ किया जाता था। राजप्रश्नीय सूत्र[18] में एक खलिहान के सुन्दर दृश्य का वर्णन आया है। एक तरफ धान्य के ढ़ेर लगे हुए हैं, दूसरी तरफ उड़ावनी हो रही है और रक्षक पुरूष भोजन कर रहे हैं। स्पष्ट है कि स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े सभी खेती बाड़ी में सहयोग करते थे।

df"k midj.k

आगम युग में कृषि प्रमुख धंधा होने से उत्कर्ष पर था। कृषि के निमित्त से तथा कृषि के आसपास अनेक उद्योग विकसित थे। अनेक प्रकार के कृषि उपकरणों और औजारों का वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है। व्याख्या प्रज्ञप्ति में तैयार फसलों को काटने के लिए 'असिड' का उल्लेख है। प्रश्न व्याकरण में हल, कुलिय, कुदाल, कैंची, सूप, पाटा, मेढ़ी आदि कृषि उपकरणों का उल्लेख है। खेती के लिए भी हल, कुतिय और दन्तालग इन तीन प्रकार के हलों का प्रयोग किया जाता था। हल चलाने के बाद भी जो भूमि कड़ी रह जाती थे उसे कुदाल से तोड़ा जाता था।[19] आज की भाँति ट्रेक्टर, कम्प्रेशर और अन्य विद्युतीय/यांत्रिक उपकरणों का कोई संदर्भ नहीं मिलता है।

[kkn

जैसा कि बताया गया कृत्रिम खाद की आवश्यकता ही नहीं थी और उपलब्धता भी नहीं थी। पिण्डनिर्युक्ति[20] में बताया गया है कि गोब्बर गाँव की शालि अच्छी मानी जाती थी। संभवतः वहां कृषि और पशुपालन होने से गोबर की सुलभता और गोबर खाद का प्रयोग खूब होता होगा इसीलिए गाँव का नाम ही गोब्बर पड़ गया और वहां की उपज भी अच्छी मानी जाने लगी। वृक्षों के पत्तों, गन्नों के पत्तों, ऊँट की लेड़ी आदि भी खाद बनाने के काम में आती थी। जिन खेतों की उर्वरा शक्ति कम हो जाती थी किसान खाद और कूड़े के ढ़ेर को खेतों में बिछाते थे। पशुओं की हड्डियों और सींगों का उपयोग भी खाद के लिये किया जाता था।

t|rkbZ vkSj cqokbZ

कृषि का आरंभ भूकषर्ण से होता था। बुवाई से पूर्व भूमि को जोतकर तैयार करने को भूकर्षण कहा गया है। कुछ विद्वानों ने 'फोडीकम्म' कर्मादान को जुताई से जोड़ दिया, जो अर्थसंगत और तर्कसंगत नहीं है। उपासकदशांग सूत्र टीका में खान खोदने और पत्थर फोड़ने को फोड़ी कर्म कहा है।[21] योगशास्त्र और त्रिपष्टिशलाकापुरूष चरित्र में तालाब व कुँए आदि को खोदने, शिलाओं को तोड़ने आदि को फोड़ी कर्म बताया गया है।

चंपानगरी के खेतों की भूमि सैंकड़ों हलों से जोती जाती थी। इससे खेतों की मिट्टी भुरभुरी और कंकड़–पत्थरों से रहित हो गई थी। उस समय के व्यक्तियों को अच्छे बीजों का भी ज्ञान था। बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने का किसान पूरा ध्यान रखते थे तथा बुवाई के लिए श्रेष्ठ बीजों का उपयोग करते थे। स्थानांग सूत्र में बुवाई की 4 विधियाँ बताई गई है–

1. वापिता– बीज को एक बार बोना
2. परिवापिता– पौधें को एक स्थान से उखाड़कर पुनः रोपित करना। यह विधि आज भी प्रयुक्त होती है।
3. निदिता– खेतों में घास आदि निकालकर बुवाई करना।
4. परिनिदिता– अंकुरण से फसल प्राप्ति तक समय–समय पर खरपतवार हटाना।

आज भी इस प्रकार की पद्धतियाँ अपनाई जाती है। खेतों में बीज–वपन इस प्रकार किया जाता था कि अंकुरण ठीक से हो सके।[22]

ज्ञाताधर्मकथांग के सातवें रोहिणी अध्ययन में चावल के पांच दानों से गाड़ियाँ भरकर चावल उगाने में बुवाई से लेकर कटाई और भण्डारण तक का जो वर्णन प्राप्त होता हे, वह उस समय की उन्नत और वैज्ञानिक अवस्था को दर्शाता है। अच्छी सुगंधित और उच्च किस्म के चावल का वैसा बम्पर उत्पादन बिना विशेष कृषि ज्ञान और निपुणता के संभव ही नहीं था। धान्य संवर्द्धन की इस तकनीक को वैज्ञानिक बताते हुए जर्मन विद्वान गुस्तव रोथ ने रोहिणी कथानक 'दि सिमिलीज ऑफ द एण्ट्रस्टेड फाइव राइस ग्रेन्स एण्ड देयर पैरेलल्स'' शीर्षक से पूरा शोध आलेख लिखा और प्राचीन भारत की कृषि प्रणाली की तारीफ की।[23]

f l pkb

सिंचाई के अनेक तरीके अपनाये जाते थे। सिंचाई की दृष्टि से दो प्रकार के खेतों का उल्लेख है– सेतु और केतु। जिन खेतों में सिचाई की आवश्यकता होती थी वे सेतु और वर्षा पर निर्भर रहने वाले खेत केतु कहलाते थे। इससे स्पष्ट होता हे कि सिंचाई का पर्याप्त प्रबन्धन था। सिंचाई के लिए पुष्करिणी, बावड़ी–कुँआ, तालाब, सरोवर आदि बनाए जाते थे। नदियों का पानी रोककर बाँध बनाने का उल्लेख भी मिलता है। विमलसूरि के अनुसार बाँधों पर आवश्यकतानुसार पानी रोका जाता और छोड़ा जाता था।[24] बाँधों और नदियों से छोटी–छोटी नहरें निकाली जाती थी और उन नहरों से कृषक सिंचाई करते थे। किसान सिंचाई के लिए जल की चोरी भी कर लेते थे। वसुदेवहिण्डी के अनुसार सिंचाई जल के प्रवाह को मोड़कर उसकी चोरी कर ली जाती थी तथा अपराध सिद्ध होने पर पानी की इस चोरी के लिए कहीं–कहीं चोर को राजकीय दण्ड भी दिया जाता था। क्षेत्र और भौगोलिक स्थितियों के अनुसार सिंचाई के साधन भी अलग–अलग थे। बृहत्कल्पभाष्य[25] के अनुसार लाट देश (पश्चिम भारत) में मुख्यतः वर्षा जल से, सिन्धु देश (पूर्व पश्चिम भारत) में नदी जल से, द्रविड़ (दक्षिण भारत) में तालाब से तथा उत्तरी भारत में कुंए के जल से सिंचाई की जाती थी। इसी प्रकार बाढ़ के जल को भी सिंचाई के उपयोग कर लिया जाता था। कानन द्वीप में

जलाधिक्य की वजह से नावों पर खेती करने का रोचक वर्णन है।[26] आज भी कश्मीर की डल झील में लकड़ी के पाटों पर मिट्टी डालकर खेती की जाती है ऐसे खेतों का चलते–फिरते खेत कहा जाता है।

[ksrh ij vkink,¡

कृषि अपने उत्कर्ष पर थी ओर वह उस समय का प्रमुखतम धंधा था। अधिकतर खेती बाड़ी मानसून पर निर्भर थी। इसीलिए अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही स्थितियाँ जन–जीवन और अर्थव्यवस्था को झकझोर देती थी। जल की प्रचुरता से अन्य ऋतुओं की फसलें आसानी से हो जाती थी, परन्तु अनावृष्टि की मार तो वर्षों तक रहती थी।

महानिशीथ के अनुसार दुष्काल में लोग बाल–बच्चों तक को बेच डालते थे तथा अनेक लोग ऐसे संकट के समय में दास–वृत्ति स्वीकार कर लेते थे।[27] आवश्यकचूर्णि, निशीथचूर्णि, व्यवहार भाष्य में अतिवृष्टि और बाढ़ से प्रलय और कृषि हानि के वर्णन मिलते है। इनके अलावा कीड़ो–मकोड़ो, जीव–जन्तुओं, हिमपात, पाले और ओलों से भी फसलों को नुकसान होता था।[28] अपनी फसलों को नुकसान से बचाने के लिए लोग तरह–तरह के यत्न करते थे। हालांकि पर्यावरण अच्छा होने से फसलों में बीमारियाँ कम लगती थी।

jkT; dh Hkwfedk

यूनानी यात्री मैगस्थनीज के अनुसार भारत में कृषि का इतना महत्व था कि खेती–बाड़ी करने वाले युद्ध और अन्य राजकीय सेवाओं से मुक्त रहते थे। उनकी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा जाता था। यहाँ तक कि गृह युद्ध के समय सैनिकों को निर्देश होता था कि वे कृषि और कृषकों को कोई हानि नहीं पहुँचाये।[29] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार चक्रवर्ती सम्राट भरत के चौदह रत्नों में से एक रत्न गाथापति होता था जो राज्य में कृषि की देखभाल करता था।[30] राज्य के द्वारा अन्न भण्डारों में सुरक्षित रखा जाता था और समय पर उसे प्रजा में वितरित किया जाता था। ओघनिर्युक्ति के अनुसार अकाल के समय एक राजा ने कोष्ठागारों में से भोजन ओर बीज के लिए लोगों को अनाज वितरित किया। कृषि के विकास के प्रति राज्य का जागरूक रहना आवश्यक था। कोई व्यक्ति खेती के लिए राज्य से भूमि लेता और उस पर खेती नहीं

करता तो उसकी भूमि छीन ली जाती थी। कृषि और कृषकों के लिए राज्य की ओर से विशेष सुविधाएँ अनुमोदनीय है।

Ik’k|ikyu

कृषि और पशुपालन का अन्योन्याश्रित संबंध है। जब यांत्रिक/मशीनी युग का आरंभ नहीं हुआ था, इसलिए पशु कृषि और कृषकों के लिए अभिन्न मित्र की भांति होते थे। आज इतने मशीनीकरण के बावजूद कृषि और यातायात में पशुओं की खासी भूमिका है। उस समय तो और अधिक थी। भारत के लिए कहा जाता है, यहाँ घी–दूध की तो नदियाँ बहती थीं। जब उपासकदशांग सूत्र पढ़ते हैं तो लगता है सचमुच यहाँ घी–दूध की प्रचुरता थी।

nl Jkodk dk Ik’k|/ku

उपासकदशांग में वर्णित दसों ही श्रमणोपासकों के पास विपुल धन था, जिसमें गोधन प्रमुख था। पशुओं के समूह अथवा बाड़ेनुमा आवासस्थल को व्रज (वय), गोकुल अथवा संगिल्ल कहा जाता था। एक व्रज में दस हजार गायें अथवा पशु निवास करते हैं। दस श्रावकों के पशुधन की संख्या निम्न थी[31]–

1. आनन्द	चार व्रज	40 हजार गौएँ
2. कामदेव	छः व्रज	60 हजार गौएँ
3. चुलनीपिता	आठ व्रज	80 हजार गौएँ
4. सुरादेव	छः व्रज	60 हजार गौएँ
5. चुल्लकशुतक	छः व्रज	60 हजार गौएँ
6. कुण्डकौलिक	छः व्रज	60 हजार गौएँ
7. सद्दालपुत्र	एक व्रज	10 हजार गौएँ
8. महाशतक	आठ व्रज	80 हजार गौएँ
9. नन्दिनीपिता	चार व्रज	40 हजार गौएँ
10. सालिहीपिया	चार व्रज	40 हजार गौएँ

आचार्य आत्मारामजी ने ‘गाय’ शब्द को समस्त पशुधन का बोधक कहा है।[32] इस प्रकार हम देखते हैं कि एक व्यक्ति के पास भी चालीस साठ और अस्सी–अस्सी हजार तक की संख्या में पशु संपदा होती थी तो पशुपालन कितना व्यापक और प्रमुख धंधा रहा होगा।

i’kqikyu dk mís’;

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पशुपालन का मुख्य उद्देश्य दूध प्राप्ति, भार ढोना, हल चलाना, यातायात आदि है। आज की भांति मांस के लिए पशुपालन जैसी वीभत्स स्थितियाँ उस समय नहीं थी। मानव और पशु–पक्षियों के बीच पूर्ण सह अस्तित्व का भाव था। भगवान महावीर की देशनाओं में पशुओं की देखभाल का उचित निर्देश था[33] उनके इस निर्देश का प्रभाव संपूर्ण जन–जीवन पर था। पशुओं को घास–दाना और पानी (तणपाणिय) दिया जाता था। हाथियों को केले, ईक्षु और डण्ठल, भैंसों को घास की कोमल पत्तियाँ, घोड़ों को घास, हरिमत्थ (काला चना), मूंग आदि तथा गायों को अर्जुन की पत्तियाँ खिलाई जाती थी। गाय, भैंस, बकरी, हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधे, खच्चर आदि पशुओं को पाला जाता था। पालतू पशुओं के विस्तृत ज्ञान के लिये अनेक पुस्तकें उपलब्ध थी।[34] पुरूषों की 72 कलाओं में हस्ती, गौ, अश्व आदि के भेद जानना भी सम्मिलित था।[35] समान खुर और पूंछ वाले, तुल्य और तीक्ष्ण सींग वाले, रजतमय घण्टियों वाले, सूत की रस्सी वाले, कनकरवचित नाथ वाले और नीलकमल के शेखर से युक्त बैलों का उल्लेख मिलता है।[36] एक पशु के ऐसे ही वर्गीकरण से पशु संबंधी विस्तृत ज्ञान के संकेत मिलते हैं।

nqX/k vkSj nqX/kksRikn O;kikj

गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और ऊटनी दूध देने वाले पशु थे। दूध से दही, छाछ, नवनीत, घी आदि की प्राप्ति होती थी। इन सभी दुग्ध उत्पादों को गोरस कहा जाता था। उस समय किसी ऑक्सीटोसीन इन्जेक्शन का प्रचलन नहीं था। अतः दूध निर्दोष और पुष्टिकारक होता था। वह स्वास्थ्य और पोषण का आधार था। आभीर (अहीर) व्यक्ति मुख्य रूप से दूध दही का व्यापार करते थे। उनकी अलग बस्तियाँ और गाँव होते थे।[37] पशुओं को चराने के लिए बड़े–बड़े चारागाह होते थे। गोपालक अपने पशुओं

को बहुत जिम्मेदारी और निपुणता से चराने ले जाते और देखभाल करते थे।[38] भगवान महावीर ने साधनाकाल में प्रथम और अंतिम दोनों उपसर्ग ग्वालों से जुड़े हैं।[39] दूध और घी व अन्य दुग्ध उत्पादों के व्यापार के अनेक उल्लेख जैन ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। यह भी एक प्रमुख व्यापार था। संभवतः इसीलिए कहा जाता है कि इस देश में घी, दूध की नदियाँ बहती थीं, परन्तु वर्तमान में तो पानी की नदियाँ भी सूखी हैं।

Hkkjokgd Ik'kq

पशु यातायात के प्रमुख आधार थे। बैल कृषि संबंधी और स्थानीय यातायात, घोड़े दूर यात्रा, रोमांच और युद्ध, हाथी शाही यात्रा और युद्ध, गधे सामान्य तबके के भार वाहक और ऊँट लम्बी दूरी तक ज्यादा भार ढ़ोने के रूप में काम करते थे। इन पशुओं को स्वामी भक्ति, मार्ग स्मरण, किसी खतरे या आपदा का पूर्वाभास जैसे गुण होते थे, ऐसे गुण आज भी होते हैं।

gkFkh

चिरकाल से हाथी मानव का साथी है। युद्धों में हाथियों ने इतने कौशल का परिचय दिया है कि अलग से हस्ती सेना हुआ करती थी। चक्रवर्ती के 18 करोड़ 84 लाख हाथी होने की आश्चर्यजनक जानकारी मिलती है। जहाँ हाथी जंगल का भीमकाय प्राणी है, वहीं उसे जंगलों से पकड़कर प्रशिक्षित करके बड़े–बड़े काम करवाये जाते थे। भक्तामरस्त्रोत के 42 वें श्लोक में युद्ध में हाथी व घोड़े तथा 43 वें हाथी का रोचक वर्णन है। युद्ध में हार जीत हाथियों पर निर्भर करती थी। हाथियों के लिए कठिन रास्ते भी आसान होते थे तथा वे नदियां भी पार कर लेते थे।[40] पिण्डनिर्युक्ति में गड्ढ़े खोदकर हाथियों को पकड़ने का वर्णन मिलता है।[41] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार हाथिनी को एक स्थान पर बांधकर भी हाथियों को आकर्षित करके पकड़ा जाता था।[42]

ÅV&HkkM+&cdjh

भेड़, बकरी और ऊँट भी पोषित पशु थे। निशीथचूर्णि के अनुसार उष्ट्रपाल के पास 21 ऊँट थे।[43] ऊँट से भारवाहन, सवारी, दूध के अलावा उसके बालों के कंबल आदि वस्त्रों का निर्माण किया जाता था। भेड़–बकरी के बालों से भी वस्त्र निर्माण होता

था। इसी प्रकार गधे भी भार–वाहक के रूप में सेवा करते थे। इन पशुओं के दूध में औषधिय गुण होने से उसका विभिन्न रोगो में विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता था।

Ekr lk'kq dh mi;ksfxrk

मरने के बाद भी पशु का एक–एक अंग काम आता था। चमड़ा, हड्डी, सींग, खुर आदि का उपयोग होता था। समाज का एक पूरा तबका मृत पशुओं के अंगो के व्यापार पर जीवित था। इनके आर्थिक महत्व के बारे में अन्यत्र विचार किया गया है। पशु जीवित तो उपयोग होता ही है, मरने के बाद भी उपयोगी होता है। हाथी के बारे में तो लोकोक्ति है– जीवित हाथी लाख का ओर मरने पर सवा लाख का।

पशुपालन के अलावा जैन ग्रंथों में प्रसंग वूशू कुक्कुट पालन और मत्स्यपालन के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। निशीथचूर्णि और विपाक सूत्र में मांसाहार और जीविका की दृष्टि से कुक्कुट, मत्स्यपालन की अप्रशस्त निन्द्य और निम्न कोटि का बताया गया है।[44]

कृषि और पशुपालन दोनों अन्योन्याश्रित है। पशु कृषि में सहयोग करते हैं और कृषि से पशुओं की आवश्यकताएँ आसानी से जुटाई जा सकती हैं। ये दोनों धन्धे प्राचीनकाल से भारतीय अर्थव्यवस्था ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जन–जीवन का आधार बने हुए है। दूध, कृषि और यातायात के अलावा पशु–पालन से पर्यावरण व पारिस्थितिकी संतुलन, जमीन की उर्वरा शक्ति और जैव विविधता का संरक्षण भी सहज रूप से होता है।

m|kfudh] okfudh vkj [kuu

जिस प्रकार प्राचीन भारत का मानव खेती–बाड़ी में निष्णत था, उसी प्रकार बागवानी में भी निपुण था। बागवानी से आर्थिक लाभ के अलावा पर्यावरण सौन्दर्य, श्रृंगार, सत्कार, सुगन्ध, उत्सव, मनोरंजन, ध्यान, पूजा, भक्ति आदि अनेक बातें जुड़ी हैं। लोग साग–सब्जियों के भी बाग लगाते थे तथा वृक्ष उपवन भी लगाते थे।[45] नगरों के बाहर या बीच में रमणीय उद्यान हुआ करते थे। उद्यान, कलियां, फूल, पत्तियां, टहनियां,

चिड़िया, कोयल, तोता, मैना, मयूर, हंस, सारस, चकवा, क्रॉच, तितली, भौंरा, जुगनू आदि साहित्य रसिकों के लिए मुख्य विषय रहे हैं।

Qy yrk,¡

जैन आगम ग्रंथों में इतने फूलों, फलों, लताओं और वनस्पतियों के नाम मिलते हैं कि उस समय के उद्यान विज्ञान पर दांतों तले अंगुली दबानी पड़े। अन्तकृतदशा[46] के अनुसार उद्यान का वर्णन कितना मनोरम है–अर्जुन मालाकर और उसकी पत्नी बागवानी में कुशल थी। उनकी पुष्प वाटिका में पांच वर्णो के फूल उगाये जाते थे। प्रातःकाल वे वाटिका से पुष्प चयन तथा बाजारों में पुष्प टोकरियाँ भर ले जाते, बेचकर, धन अर्जित करते। ग्रंथों में उज्जाण (उद्यान), आराम और निज्जाण– इन तीन प्रकार के उपवनों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उद्यान में पुष्प वाले अनेक प्रकार के वृक्ष होते थे। इन उद्यानों में उत्सव, अभिनय, नाटक आदि होते थे तथा श्रृंगार काव्य पढ़े जाते थे। उद्यान नगर के पास होते थे। आराम में वृक्ष और लता कुंज होते थे। इनमें दंपति तथा धनाढ्य लोग क्रीडाएं करते थे। केवल राजाओं के लिए सुरक्षित उद्यानों को निज्जाण कहा जाता था।[47] अनेक उद्यानों के नाम ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। तीर्थंकर भगवान महावीर और श्रमण विचरण करते हुए नगर के बाहर स्थित उद्यानों में ठहरा करते थे। सूर्योदय, चन्द्रोदय, आम्रोदय, अशोक वाटिका, गुणशीलक, जिर्णोधान, तिन्दुक आदि अनेक उद्यानों के नाम आते हैं। उद्यानों में पद्म, नाग, अशोक, चम्बक, आम्र, वासन्ती, अतिमुक्तक, कुन्द, श्यामा आदि लताएँ तथा कोरण्टक, बन्धुजीवक, कनेर, कुंजक (श्वेत गुलाब), जाति मोगरा (बेला), युथिका (जूही) मल्लिका, नवमालिका, मृगदन्ती, चंपक, कन्द, वस्तुल, शैवाल आदि फूलों के नाम मिलते हैं।[48]

Qy vkj o{k

उद्यान में फलदार वृक्ष भी होते थे। फल मुख्यतः भोजन और व्यापारिक महत्व का उत्पाद है। निम्न फलों का उल्लेख जैन सूत्रों में मिलता है–आम, जामुन, कदली (केला), दाड़म (अनार), द्राक्ष, खजूर, नारियल, ताड़, कपित्थ (कैथ), इमली, अमरूद, कटहल, बिजौरा, संतरा आदि।[49] इनके अलावा भी अनेक प्रकार के फलों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। आम उस समय का मुख्य फल था। पोलासपुर और हस्तिनापुर में

सहसाम्रवन उद्यान थे जिसमें आम के हजारों पेड़ थे। फलों को पकाने के लिए मुख्यतः चार विधियाँ अपनाई जाती थीं[50]–

1. ईंधन पर्यायाम– घास फूस और भूसे में रखकर फल पकाना। इस विधि में मुख्यतः आम पकाये जाते थे।
2. धूम पर्यायाम– तिन्दुक आदि फलों को इस विधि से पकाया जाता था। इसमें फलों को धुंआ देकर पकाया जाता था। इसमें एक गढ्ढ़ा खोदकर उसमें उपलों या कण्डों की अग्नि भर दी जाती। उसके चारों ओर गोलाई में गड्ढ़े खोदकर उसमें पकाने के लिए फल रखे जाते। बीच के गड्ढे और आसपास के गड्ढे की दीवार में छेद रखे जाते। धुआं और गर्मी से फल पक जाते थे।
3. गंध पर्यायाम– पके फलों के बीच कच्चे फलों को रखकर फल पकाना। इसमें पके फलों की गंध से कच्चे फल पक जाते थे। ककड़ी, खीरा, बिजौरा आदि फलों को गंधपर्यायाम से पकाया जाता था।
4. वृक्ष पर्यायाम– वृक्ष पर सहज/प्राकृतिक रूप से फलों के पकने को वृक्षपर्यायाम कहा जाता है।

फलों को सुखाया भी जाता था। जहाँ सुखाया जाता उस स्थान को कौट्टक कहा जाता। फलों से अनेक प्रकार के व्यंजन और पेय तैयार किये जाते थे। आचारांग से पता चलता है कि उस समय आम, अम्बाड़क, कपित्थ (कैथ), मातुलिंग (बिजौरा), द्राक्ष, अनार (दाड़म), खजूर, नारियल (डाभ), करीर (करील), बेर, आमला, इमली आदि फलों से पेय बनाये जाते थे।[51] फल वृक्षों से प्राप्त होते हैं। ग्रंथों में आम, जम्बूफल, शाल, अखरोट, पोलू, सेलू, सल्लकी, मोचकी, मालूक, बलुक, पलाश, करंज, सीसम, पुत्रजीवक, अरिष्ट, बहेड़ा, हरड़, मिलवा, अशोक, दाड़म, लूलच, शिरीप, मातुलिंग, चंदन, अर्जुन, कदम्ब आदि अनेक प्रकार के वृक्षों के नाम प्राप्त होते हैं। इन वृक्षों से फलों के अतिरिक्त अनेक प्रकार की औषधियाँ, जड़ी–बूटियाँ आदि प्राप्त होती थी। वृक्षों और फलों की प्रचुरता से आम–जन की अनेक मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी होती थीं। इससे लोगों की आजीविका जुड़ी हुई थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्यान कला या बागवानी विकसित और समृद्ध दशा में थी। पक्षी–कीट, पतंग, तितलियाँ, मधुमक्खियाँ, भौंरे आदि जीव–जन्तुओं से पारिस्थितिकी व पर्यावरण संतुलन बहुत अच्छा था।

okfudh vkj oukRikn

उपवनों के लिए मानव श्रम और कौशल की आवश्यकता होती थी। परन्तु वन स्वतः उगते हैं, होते हैं। आज की भांति उस समय सघन वृक्षारोपण के द्वारा वन लगाने जैसे किसी अभियान की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु लोग वनों–अटवियों का महत्व समझते थे और आवश्यकतानुसार उनका संरक्षण करते थे। वन अनेकानेक जीवों के आश्रय होते थे, वनों को नुकसान पहुंचाना, नष्ट करना, सचमुच बहुत बड़ा पाप और अपराध है। निःसन्देह अर्थव्यवस्था और पर्यावरण की दृष्टि से भी वनों को नुकसान पहुँचाना बहुत हानिकारक है। भगवान महावीर ने वनों को नुकसान पहुँचाने वाले कार्यों और धंधों का पूर्णतः निषेध किया है।[52] वनों की रक्षा में अनेक अहिंसा उपदेश की अत्यन्त प्रभावशाली भूमिका रही है। ऐसा करने से वनवासियों, आदिवासियों, वनमानुषों और वन्य जीव–जन्तुओं, पशु पक्षियों के प्राकृतिक आवास स्थल बने रहें। लोगों की आजीविकाएं भी सहज रूप से चलती रही। वनों से अनेक उद्योग धंधों के लिए कच्ची और पक्की सामग्री प्राप्त होती है।

राजगृह से नन्द मणिकार ने लोगों की भलाई के लिए वन लगाने का उपक्रम किया था, सुन्दर झील बनाई थी।[53] वनों में विविध दुर्लभ वनस्पति समूह और जीव–जन्तु पाए जाते थे। अनेक वृक्ष, फल, फूल और वनस्पतियाँ तो वनों में ही प्राप्त होती थी। अशोक, तिलक, ललूच, छत्रोप, शिरीप, सप्तषर्ण, लोद्र, दाड़म, शाल, ताल, तमाल, प्रियक, प्रियंग, पूर्पग, राजवृक्ष, नंदी वृक्ष आदि वृक्षों के नाम उववाई सूत्र में प्राप्त होते हैं। राजगृह में मलका वृक्षों के लिए एक सघन वन का वर्णन मिलता है। अन्य वृक्षों में आम्र, निम्ब, जम्ब, अंकोल, बकुल, पलाश, पुतरंजन, बिभित्तक, शिंशपा, श्रीपर्णी, तिन्दुक, कपित्थ, मातुलिंग, बिल्वा, आमलग, फणस, अखत्थ, उदम्द्र, वट आदि नाम मिलते हैं। अनेक प्रकार के बांस जैसे चाववंश, वेणु, कणक, कक्कावंश वरूवंश, डुण्डा, कुडा आदि अनेक प्रकार की जड़ी बूटियाँ, औषधियाँ आदि भी वनों से प्राप्त होती थीं।[54]

फर्नीचर, रथ, गाड़ी, जहाज, नाव, हल, भवन निर्माण सामग्री आदि अनेक वस्तुओं के लिए जंगलों से लकड़ी और अन्य चीजें प्राप्त होती थी।

लोग जंगलों से जीव जन्तुओं और पशु पक्षियों का शिकार कर उन्हें जीवित पकड़कर उनका भी व्यापार करते थे, पर ऐसे समस्त हिंसक धंधों का शिकार, हाथी दांत व्यापार, आदि का जैन सूत्रों में निषेध किया गया है। जैन श्रमण लोगों को समझाकर उन्हें शिकार, हिंसा आदि नहीं करने का संकल्प करवाते थे। इस प्रकार के निषेध से अनेक जीव जन्तुओं व पशु–पक्षियों की प्रजातियाँ जीवित रह सकीं। जिसका पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास का दूरगामी सुप्रभाव हुआ।

[kuu

खनन एक प्राथमिक उद्योग था। मानव की आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओं के लिए धरती के गर्भ से खानें खोदकर अनेक धातुएँ, खनिज और रत्न प्राप्त किये जाते थे। मिट्टी, पत्थर, धातु रत्न और अनेक प्रकार के खनिज संबंधी व्यवसाय खनन पर आधारित थे। खान खोदने वाले श्रमिक को 'क्षितिखनक'[55] कहा जाता था और खानों को 'आकर' या 'आगर' कहा जाता था। सूत्रों में जितने प्रकार के खनिजों का उल्लेख मिलता है, उससे स्पष्ट होता है कि उस समय खनन भी प्रमुख व्यवसाय रहा था।

/kkr|,¡

आगमों में अनेक धातुओं के उल्लेख हैं। खानों से कच्ची धातु 'अयस्क' प्राप्त की जाती थी। लौहाकारों की शालाओं को भी अयस्क कहा जाता था।[56] इन शालाओं में भगवान महावीर भी ठहरे थे।[57] अयस्क से विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा धातु प्राप्त की जाती थी। धातुओं का शोधन और परिशोधन होता था इसीलिए पुरूषों की 72 कलाओं में धातुवाद भी एक है।[58] लोहा और स्वर्ण प्रमुख धातुएँ थी। इनके अलावा ताम्बा, जस्ता, सीसा, चाँदी (हिरण्य अथवा रूप्य) आदि धातुएँ भी प्राप्त होती थी। दो धातुओं के मिश्रण से पीतल, कांस्य आदि अन्य धातुएँ भी बनायी जाती हैं। आज जैसे यंत्र, संयंत्र और मशीनों के अभाव में भी उस समय सभी प्रकार की धातुओं के उल्लेख और उपयोग निश्चित ही किसी विकसित अवस्था के सूचक हैं। मानव के बृद्धि और श्रम की हर क्षेत्र

में पूरी पैठ थी। इस बात का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि औषधियों के संयोग और रासायनिक प्रक्रियाओं से लोहे और तांबे से भी स्वर्ण बनाने की विधाएँ लोग जानते थे।[59] जबकि आज इस विज्ञान और तकनीक के जमाने में भी इस प्रकार का कोई सूत्र हमारे पास नहीं है।

[kfut

धातुओं के अतिरिक्त खनन द्वारा खनिज उत्पाद भी प्राप्त होते थे। इन खनिज पदार्थों में लवण (नमक), ऊस, (साजी माटी), गेरू, हरताल, हिंगुल्क (सिंगरक) मणसिल (मनसिल), सासग (पारा), सौडिय (खेत मिट्टी), सोरठिय, अंजन, अभ्रम आदि विभिन्न चूना, मिट्टी, पत्थर आदि पाये जाते थे।[60] इन चीजों से घरेलू और औद्योगिक आवश्यकताएँ पूरी होती थीं।

eY;oku iRFkj

खानों से मूल्यवान पत्थर, मणियाँ आदि निकालकर उन्हें शोधित किया जाता था। ग्रंथों में अनेक प्रकार के कीमती पत्थरों और मणियों के नाम प्राप्त होते हैं, यथा—गोमेद, कर्केतन, हीरा, पन्ना, वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौग्रधिक, ज्योतिरस, अंजन, अंजलपुलक, रजत, जातरूप, अंक, स्फटिक, रिष्ट, इन्द्रनील, मरकस, सस्यक, प्रवाल (मूंगा), रूचक, भुजमोचक, जनकान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त या चन्द्रप्रभ आदि।[61] मणिमुक्ता के पारखियों और व्यापारियों को मणिकार कहा जाता है।[62] लोग रत्न—मणियों के बड़े शौकीन हुआ करते थे। आभूषणों के अलावा इन मणियों को फर्नीचर में जड़ा जाता था। रथ, पालकी, हाथी, घोड़े आदि को सजाने में भी इनका उपयोग होता था।

fofo/k vkHkw"k.k

चौदह प्रकार के आभूषणों का उल्लेख आगम ग्रंथों में प्राप्त होता है।[63] हार (अठारह लड़ियों वाला), अर्धहार (नौ लडियों का), एकावलि (एक लड़ी का हार), कनकावलि, मुक्तावति, रत्नावलि (मोतियों के हार), केयूर, कडय (कड़ा) तुडिय (बाजूबन्द), मुद्रिका (अंगूठी), कुण्डल, उरसूत्र, चूड़ामणि और तिलक। हार, अर्धहार,

तिसरय (तीन लडियों का हार), प्रलम्ब (नाभि तक लटकने वाला), कटिसूत्र (करधौनी), ग्रैवेयक (गले का हार), अंगलीयक (अंगूठी), कचाभरण (केश में लगाने का आभरण), मुद्रिका, कुण्डल,, मुकुट, वलय (वीरत्व सूचक कंकण), अंगद (बाजूबंद), पाद प्रलम्ब (पैर तक लटकने वाला हार) और मुरवि नामक आभूषण पुरूषों द्वारा धारण किये जाते थे जबकि नुपुर, मेखला (कन्दोरा), हार, कडग (कड़ा), खुद्दय (अंगूठी), वलय, कुण्डल, रत्न तथा दीनार माला आदि स्त्रियों के आभूषण माने जाते थे। स्पष्ट है कि पुरूष भी स्त्रियों की भांति आभूषण धारण करते थे। इससे रत्न व्यवसाय के विस्तार का अनुमान सहज लगाया जा सकता है।

प्राथमिक उद्योग धंधों में कृषि, कृषि आधारित गतिविधियां, पशुपालन, बागवानी, वानिकी, खनन आदि पर विमर्श से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था बहुत ही नियोजित ढंग से आगे बढ़ रही थी। दूध, शाक–सब्जियाँ, फल और फूलों का व्यापार इसलिए सुनियोजित माना जायेगा कि ये चीजें शीघ्र नाशवान होती है तथा समय पर इन्हें अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाना होता है। निःसन्देह राज्य, समाज और व्यापारिक निकायों में अद्भुत प्रबन्धन और समन्वय रहा होगा।

ifjPNsn f}rh;

f}rh; m|ksx& 0;kikj o okf.kT;

प्राथमिक उद्योग सीधे प्रकृति पर आधारित होते हैं। उनके उत्पादों को सीधे या मामूली श्रम व प्रक्रिया के बाद काम में लिया जा सकता है। प्रचुर प्राकृतिक संसाधन किसी भी देश, काल के लिये हर दृष्टि से अनुपम वरदान होते हैं। प्राथमिक उद्योगों के उत्पादन ही द्वितीयक उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं।

eu"; dh dykfiz;rk vkSj f'kYi

मानव एक सांस्कृतिक प्राणी है, कला प्रेमी है। वह किसी भी वस्तु का उपयोग करने से पूर्व उसे संस्कारित करता है। इससे वस्तु रूपान्तरित हो जाती है और उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। उसकी इस वृत्ति के कारण अन्य बातों के अलावा अर्थतंत्र का दायरा भी बढ़ता है। गन्ने के रस का गुड़ बना लेने पर वह वर्षपर्यन्त वर्ष, जब चाहे तक काम लिया जा सकता है। उसे आसानी से परिवहनित किया जा सकता है। स्वर्ण रजत को गहनों में ढ़ालकर, गहनों में मणिया जड़कर उन्हें उपयोगी और कलात्मक बनाया जाता है। गेहूँ के दानों को सीधा नहीं खाया जाता अपितु उन्हें पीसकर उनकी रोटी या व्यंजन बनाकर खाया जाता है। इस प्रक्रिया में श्रम और कौशल के अलावा अन्य अनेक वस्तुओं की आवश्यकता भी होती है। भोजन को पात्र में लेकर खाया जाता है। वस्त्रों को साधारण तरीके से ओढ़ने की बजाय उन्हें संस्कारित कर विभिन्न डिजाईनों से मंडित कर पहना जाता है। वस्तुतः सभ्यता, संस्कृति, धर्म और समाज के साथ मानव ने अपना विकास किया है। उसकी इस विकास यात्रा में अर्थतंत्र का प्रत्यक्ष और प्रमुख योगदान है। 'अर्थ मानव का सबसे बड़ा प्रेरक तत्व रहा है।'

m|ksxksa dk oxhZdj.k

कच्चे माल को पक्के में रूपान्तरित करने के लिये अनेक प्रकार और स्तर के उद्योग धंधे विकसित हो जाते है। जैन सूत्रों में उल्लेखित ऐसे उद्योगों को कुटीर (गृह), लघु और बड़े उद्योगों के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं। प्राथमिक उद्योग और गृह कुटीर उद्योग दोनों जुड़े हुए थे। गृह उद्योग की गतिविधियाँ घर में सम्पन्न होती हैं

और उसमें घर के छोटे–बड़े सदस्य योगदान करते हैं। सभी प्राथमिक उद्योगों के साथ आगे के कुछ स्तरों की गतिविधियाँ गृह उद्योग मानी जा सकती है। विभिन्न हस्तशिल्प उद्योग इनके अन्तर्गत हैं। जिनका वर्णन आगे किया जायेगा।

जब गृह और कुटीर उद्योग अपना विकास करते हैं, जो वे लघु औद्योगिक ईकाइयों का रूप धारण कर लेते हैं। कितने ही व्यवसाय स्वभावतः औद्योगिक रूप में ही संभव हो सकते हैं। वर्तमान उद्योग कारखानों का जो स्वरूप है वह 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप विकसित हुआ है, जिसमें यंत्रों, संयंत्रों और मशीनों का प्रयोग मुख्य रूप से हुआ है। इनमें लघु और बड़े उद्योगों को उनकी पूंजी निवेश के आधार पर विभाजित किया गया है।

जैन आगमों में कारखाना पद्धति के अनुसार औद्योगिक साम्राज्य का उल्लेख भले ही नहीं हो पर सामुहिक उद्यमिता और बड़े पैमाने पर उत्पादन अवश्य होता था। जहां बहुत सारे श्रमिक, कर्मचारी और नौकर कार्य करते थे। जिनकी तुलना वर्तमान की औद्योगिक ईकाइयों से की जा सकती है। उपासकदशांग में वर्णित सकडालपुत्र[64] के भाण्ड उद्योग की तुलना इससे की जा सकती है। श्रावक सकडालपुत्र के व्यवसाय में करीब 1 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का निवेश था। नगर के बाहर 500 दुकानें थीं और हजारों श्रमिक और कर्मचारी उसके व्यवसाय से प्रत्यक्ष जुड़े थे, जो खानों से मिट्टी लाने से लेकर पात्र विक्रय तक अपना–अपना कार्य करते थे।

कोई भी एक चीज विकसित होती थी तो उसके साथ–साथ अनेक चीजें विकसित होती हैं। औद्योगिक विकास अकेला कभी भी नहीं हो सकता। निश्चित ही उस विकास के साथ–साथ वित्त, परिवहन, विपणन आदि आधारभूत बातें भी विकसित रही होंगी।

0;kolk;] f'kYi vkj 72 dyk,¡

ज्ञाताधर्मकथांग[65] और अन्य आगम ग्रन्थों[66] में जिन 72 कलाओं का उल्लेख है, उनमें तत्कालीन उद्योग, शिल्प आदि का व्यापक निदर्शन प्राप्त होता है। ज्ञाताधर्मकथांग में वर्णित 72 कलाओं का परिचय निम्नानुसार है–

1.	लेहं	–	लेख (लिखने की कला)
2.	गणियं	–	गणित (गणित और संबंधित विषय)
3.	रूवं	–	रूप (चित्रकारी, कसीदाकारी, रंगाई आदि)
4.	नट्टं	–	नाट्य (अभिनय और नृत्य)
5.	गीयं	–	गीत (गाने की विद्या)
6.	वाइयं	–	वादित्र (वाद्य यंत्रों को बजाने की कला)
7.	सरगयं	–	स्वरगत (सुर और स्वरों की विधाएँ)
8.	पौखरगयं	–	पुष्करगत (ढोल–ढोलक आदि का ज्ञान)
9.	समतालं	–	समताल (ताल की सूक्ष्म जानकारी)
10.	जूयं	–	धूत (बौद्धिक खेल खेलने की कला)
11.	जणवायं	–	जनवाद (वार्तालाप (बातचीत और वाद–विवाद की कला))
12.	पासयं	–	पाशक–पासा (पासा खेलना)
13.	अट्ठावयं	–	अष्टापद (चौपड़ खेलना)
14.	पोरेकच्चं	–	पुरः काव्य (कवित्व एवं आशुकवित्व)
15	दगभट्टियं	–	दक मृत्तिका (कुम्भकार कला– मिट्टी के पात्र आदि बनाने की कला)
16	अन्नविहिं	–	अन्न विधि (खेती तथा पाक कला)
17	पाणविहिं	–	पान विधि (जल उत्पत्ति, शुद्धि व पेय पदार्थों का ज्ञान)
18	वत्थविहिं	–	वस्त्र विधि (वस्त्र बनाने और प्रयोग की विधि)
19	विलेवणविहिं	–	विलेपन विधि (सौन्दर्यकरण की विधियाँ)
20	सयणविहिं	–	शयनविधि (शयनकक्ष तैयार करना और शयनकक्ष की सामग्री का निर्माण)
21	अज्जं	–	आर्या छन्द (आर्याछन्द/काव्य बनाना अथवा प्रस्तुति)
22	पहेलियं	–	प्रहेलिका (पहेलियां बनाना व रचना एवं गूढार्थ)
23	मागल्यिं	–	मागधिका (मागधी/अर्द्धमागधी, प्राकृत जानना, प्रयोग में कुशल होना एवं काव्य रचना)
24	गाहं	–	गाथा (गाथाओं/सूत्रों की रचना करना एवं समझ रखना, विशेषतः प्राकृत में)

25 गीइयं – गीति (गीत संगीत विधाएँ)

26 सीलोयं – श्लोक (श्लोक रचना व प्रयोग, विशेषतः संस्कृत में)

27 हिरण्णजूतिं – हिरण्य युक्ति (चांदी बनाना/परखना)

28 सुवण्णजुतिं – स्वर्ण युक्ति (सोना बनाना/परखना)

29 चुन्नजुतिं – चूर्णयुक्ति (औषध आदि रूपों में चूर्ण बनाना और उपयोग करना)

30 आभरविहिं – आभरण विधि (गहने गढ़ना और पहनना)

31 तरूणीपढिकम्मं– तरूणी–प्रतिकर्म (तरूणी सौन्दर्यकरण)

32 इत्थिलक्खणं – स्त्री लक्षण (स्त्री योग्यताओं का उपयोग)

33 पुरिसलवखणं– पुरूष लक्षण (पुरूष की योग्यताओं का उपयोग)

34 हरलक्खणं – हय लक्षण (अश्व लक्षण, अश्व के लक्षणों की पहचान)

35 गयलक्खणं – गज लक्षण (हाथी के लक्षणों की पहचान)

36 गौणलक्खणं – गौ लक्षण (गाय–बैल के लक्षणों की पहचान)

37 कुक्कुडलखणं– कुक्कुट लक्षण (प्रकृति व पर्यावरण की जानकारी के लिये मुर्गों–मुर्गियों/पक्षियों की पहचान)

38 छत्रलक्खणं – छत्र लक्षण (छत्र निर्माण और उपयोग)

39 दण्डलक्खणं – दण्ड लक्षण (छडिया, डण्डे आदि का ज्ञान, संभवतः मापन के लिये)

40 असिलवखणं – असि लक्षण (तलवार/शस्त्र के लक्षण)

41 मणिलक्खणं – मणि लक्षण (रत्नों की जानकारी)

42 कागविलक्खणं– कांकिणी लक्षण (कांकिणी रत्न की जानकारी)

43 वत्थुविज्जं – वास्तु विद्या (स्थापत्य कला)

44 खंधारमाणं – स्कन्ध वारमान (सेना, सैन्य प्रबन्धन का पड़ाव प्रमाण)

45 नगरमाणं – नगरमान (नगर निर्माण और संरक्षण)

46 बूहं – व्यूहरचना (सेना, राज्य संचालन आदि में व्यूह)

47 पडिबूहं – प्रतिव्यूह रचना (प्रतिव्यूह)

48 चार – चार (सैन्य संचालन, सेना का प्रमाण आदि जानना)

49 पडिचारं – प्रतिचार (प्रतिरक्षा सैन्य– सेना को रणक्षेत्र में उतारने की कला)

50 चकबूहं – चक्रव्यूह (विशेष रणनीति)

51 गरूलवूहं – गरूड़व्यूह (गरूड़क्रम में व्यूह रचना)

52 सगड़बूहं – शटक व्यूह (गाड़ियों और वाहनों का व्यूह)

53 जुद्धं – युद्ध (लड़ने की कला)

54 निजुद्धं – नियुद्ध (विशेष युद्ध/कुश्ती लड़ना)

55 जुद्धातिजुद्धं युद्धाति– युद्ध (महायुद्ध)

56 आट्ठिजुद्धं – दृष्टि युद्ध/अस्थियुद्ध (दृष्टि से अथवा हड्डियों के हथियारों से लड़ना)

57 मुट्ठिजुद्धं – मुष्ठि युद्ध (मुट्ठियों से लड़ना)

58 बाहिजुद्धं – बाहु युद्ध (बाहुओं से लड़ना)

59 लयाजुद्धं – लता युद्ध (जूड़ो कराटे एवं प्रतिपक्षी से लिपटकर किया जाने वाला युद्ध)

60 ईसत्थं – इषुशास्त्र (तीरंदाजी/तीरों/शरों का ज्ञान)

61 छरूप्पवायं – त्सरूपप्रवाद (तलवार आदि का मुठ बनाना व उपयोग करना)

62 धणुव्वेयं – धनुर्वेद/धनुर्विद्या (धनुष बनाना/उपयोग करना)

63 हिरन्नपागं – हिरण्यपाक (चांदी का रसायन अथवा चांदी से औषधि व रसायन बनाना)

64 सुवन्नपागं – स्वर्ण पाक (स्वर्ण बनाने का रसायन अथवा सोने से औषधि व रसायन बनाना)

65 सुत्तखेडं – सूत्र खेल (धागों/डोरों और रस्सियों का खेल, पंतगबाजी आदि)

66 वट्टखेडं – वस्त्र खेल (वृत खेल–वृत्त बनाकर खेलना)

67 नालिपाखेडं – नालिका खेल (तत्कालीन समय का खेल विशेष)

68 पत्तछेज्जं – पत्रच्देद्य (पत्र–छेदन–पत्र/पत्तियों का कार्य)

69 कडगच्छेज्जं – कटच्छेद्य (कुण्डल छेदन/लकड़ी का कार्य)

70 सज्जीवं – संजीवन (जीव विज्ञान)

71 निज्जीवं – निर्जीवन (अजीव/पदार्थ विज्ञान)

72 सउणरूयमित्ति– शकुनरूत (पक्षियों की बोली का ज्ञान)

अन्य ग्रंथों में वर्णित इन कलाओं के नाम और क्रम में थोड़ा बहुत अन्तर है। ये कलाएं विशेष रूप से पुरूषों के लिए बताई गई हैं। अनेक कलाएँ काल, क्षेत्र और संदर्भ के साथ जुड़ी हुई हैं।

efgykvksa dh pkSlB dyk,¡

इनके अलावा महिलाओं के लिए चौसठ कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृति[67] के अनुसार 64 कलाएँ निम्न हैं–

1	नृत्य	2	औचित्य
3	चित्र	4	वादित्र
5	मन्त्र	6	तन्त्र
7	ज्ञान	8	विज्ञान
9	दम्भ	10	जलस्तम्भ
11	गीतमान	12	तलमान
13	मेहावृष्टि	14	फलावृष्टि
15	आरामरोपण	16	आकारगोपन
17	धर्मविचार	18	शकुनसार
19	क्रियाकल्प	20	संस्कृतजल्प
21	प्रासादनीति	22	धर्मनीति
23	वर्णिकावृद्धि	24	सुवर्णसिद्धि
25	सुरभितेलकरण	26	लीला संचरण
27	हयगज परीक्षण	28	पुरूष स्त्रीलक्षण

29	हेमरत्न भेद	30	अष्टादशलिपि परिच्छेद
31	तत्काल बुद्धि	32	वस्तुसिद्धि
33	काम विक्रिया	34	वैद्यक क्रिया
35	कुम्भ भ्रम	36	सारिश्रम
37	अंजन योग	38	चूर्णयोग
39	हस्तलाघव	40	वचन पाटव
41	भोज्य विधि	42	वाणिज्य विधि
43	मुखमण्डल	44	शलिखण्डन
45	कथाकथन	46	पुष्पग्रन्थन
47	वक्रोन्ति	48	काव्य शक्ति
49	स्फारविधि वेष	50	सर्वभाषा विशेष
51	अभिधान ज्ञान	52	भूषण परिधान
53	भृत्योपचार	54	गृहाचार
55	व्याकरण	56	पर निराकरण
57	रन्धन	58	केश बन्धन
59	वीणानाद	60	वितण्डावाद
61	अंक विचार	62	अन्तयाक्षारिका
63	लोक व्यवहार	64	प्रश्न–पहेलिका

उपर्युक्त वर्णित 72 और 64 कलाएँ सुविकसित उद्योग धंधों का सुस्पष्ट प्रमाण है। हालांकि कुछ कलाओं का प्रत्यक्ष वाणिज्यिक सरोकार नहीं है, फिर भी उस प्राचीन भारत में जब विज्ञान और तकनीक आज जैसी विकसित अवस्था में नहीं रही होगी, मानव ज्ञान, विज्ञान, संस्कृति और व्यापार के क्षेत्र में कितना बहुआयामी और बढ़ा–चढ़ा था, यह आश्चर्यजनक है। बिना सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्थाओं के इतनी कलाओं का संरक्षण, संवर्द्धन संभव नहीं था, अपितु कला, हुनर आदि के शिक्षण–प्रशिक्षण और

प्रचार–प्रसार के लिए विविध रोजगारों के अवसर का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अलावा व्यवसायिक कौशल का पीढ़ी–दर–पीढ़ी अन्तरण एवं पुश्तैनी काम–धन्धों की महत्ता भी इन कलाओं से होती है।

i.e[k m|kx

भारतवर्ष के लिए 'स्वर्ण चिड़िया' की उपमा प्रसिद्ध है। जब हम प्राचीन ग्रंथों का परायण करते हें तो यह बात पूरी तरह सही लगती है। 'सोने की चिड़िया' की उपमा देश की आर्थिक उन्नति का संकेत है। प्राथमिक उद्योगों के रूप में यहाँ की विविध विपुल नैसर्गिक सम्पदा का परिचय और बहत्तर व चौसठ कलाओं से द्वितीयक शिल्प और उद्योागों की एक सुस्पष्ट भूमिका हमें प्राप्त होती है। हम आगम–युग के प्रमुख उद्योगों को निम्न रूप में वर्गीकरण कर सकते हैं–

1. वस्त्र उद्योग– सूती, रेशमी, ऊनी, चर्म वस्त्र आदि।
2. लोहा और इस्पात।
3. अलौह धातु और मूल्यवान पत्थर पर आधारित काम धंधे।
4. कृषि, बागवानी आदि पर आधारित उद्योग।
5. अन्य उद्योग धंधे, पात्र निर्माण, भवन निर्माण, बाँस उद्योग आदि।

oL= m|kx ¼VsDlVkby½

वस्त्रोद्योग कृषि के पश्चात सर्वाधिक महत्वशाली और उन्नत था। आगम ग्रंथों में भांति–भांति के वस्त्र, वस्त्र निर्माण और व्यवसाय के उल्लेख मिलते हैं।

आचारांग सूत्र[68] में छः प्रकार के वस्त्र बताये गये हैं–

1. जांगमिक (जंगिय)– जंगम जीवों से प्राप्त। वह पुनः दो प्रकार का है–विकलेन्द्रिय जन्य (लटकीय आदि) और पंचेन्द्रिय जन्य।

विकलेन्द्रिय जन्य वस्त्र 5 प्रकार है– पट्टज, सवर्णज (मटका), कलयज, अंशक और चीनांशुक। ये वस्त्र कीटों (शहतूत वगैरह) के मुँह से निकले तार/लार से बनते हैं, लेकिन अंतिम दो अंशक और चीनांशुक को विकलेन्द्रिय जन्य नहीं माना जाता है।

पंचेन्द्रिय प्राणियों से निष्पन्न वस्त्र अनेक प्रकार के होते हैं–

1. और्णिक (भेड़,बकरी बादि के बालों से बना)
2. औष्ट्रिक (ऊँट के बालों से बना)
3. मृगरोमज (शशक, मूषक या बालमृग के रोएँ से बना हुआ)
4. किट्ट (अश्व आदि के रोएँ से बना)
5. कुतप (चर्म निष्पन्न, मृग आदि के रोएँ से बना)

2. भांगिक (भांगिय) – अलसी से निष्पन्न वस्त्र, वनशंकरी के माध्य भाग को कूटकर बनाया हुआ वस्त्र। सर्वास्तिवाद के विनवस्तु में भी भांगेय वस्त्र का उल्लेख है। यह वस्त्र भांग वृक्ष के तन्तुओं से बनाया जाता था। अभी भी कुमाऊँ (उत्तरप्रदेश) में 'भागेला' नाम से इस वस्त्र का प्रचार है।

3. सानिक (साणिय)– पटसन (पाट) लोध की छाल, तिरिड़ वृक्ष की छाल के तन्तुओं से बने हुए वस्त्र।

4. पोत्रक– ताड़ आदि के पत्रों से समूह से निष्पन्न वस्त्र पोत्रक होता है।

5. खोमियं (क्षौमिक)– कपास (रूई) से बना वस्त्र खोमिय।

6. तूलवाड़ (तूलकृत)– आक आदि की रूई से बना तूलकड़ कहलाता है।

पाँच शिल्पकारों में वस्त्रकार (गंतिक्क) तथा 72 कलाओं में वस्त्र विधि का उल्लेख है। ज्ञाताधर्मकथांग में ऐसे महीन वस्त्रों का उल्लेख है जो नासिका के उच्छवास मात्र से उड़ जाते थे। वस्त्र बहुत सुन्दर, सुकोमल, पारदर्शी और बढ़िया किस्म के हुआ करते थे।[69] वस्त्रोद्योग के साथ–साथ वस्त्रों की रंगाई, कशीदाकारी तथा वस्त्रों पर विविध चित्रकारी व कलाकृतियाँ बनाने के कार्य भी आजीविका के आधार थे।

lrh oL=

वस्त्रों में सूती वस्त्र बहुत प्रचलित था। कपास सन, बाँस, अतसी आदि पौधों से सूत प्राप्त होता था।[70] कपास (सेडुन) को औट कर (रूचंत) बीज निकाल दिये जाते थे, फिर धुनकी (पीजनी) से धुनकर (पीजकर) धुनी हुई (पूनी) रूई तैयार की जाती थी।

कपास, दुग्गुल और मूज (वज्जका/मूंज) के कातने का उल्लेख प्राप्त होता है। नालघ नामक उपकरण से सूत को भूमि पर फैला कर ताना–बुना जाता और फिर 'कड़जोगी' (वस्त्र बुनने की खड्ड़ी) से वस्त्र तैयार किया जाता था।[71] कताई और बुनाई के अलग–अलग उद्योग होते थे। बुनकर की शालाओं में वस्त्र बुने जाते थे। नालन्दा के बाहर स्थित एक तन्नुवायशाला में भगवान महावीर ठहरे थे। कताई कार्य से महिलाएँ अधिक जुड़ी हुई थीं।

वृहत्कल्प भाष्य[72] पिण्ड निर्युक्ति[73] आदि में महिलाओं द्वारा सूत कातने के उल्लेख मिलते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र मे बताया गया है कि राज्य के कारखानों में विकलांगों, अपाहिजों, भिक्षुणियों, वृद्धाओं, राजपरिचारिओं एवं दासियों द्वारा सूत काता जाता था।[74] दुकूल वृक्ष की छाल से दुकूल वस्त्र बनाये जाते।[75] सूती वस्त्रों में तौलिये का उत्पादन में उल्लेखनीय है। इन सब उल्लेखों से सूती वस्त्र उद्योग की विकसित अवस्था का पता चलता है। वस्त्र निर्माण में विशिष्टता, निपुणता और विविधता तथा लोगों की सामाजिक आर्थिक दशा का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

j:'keh oL=

आगम सूत्रों में वर्णित रेशमी वस्त्रों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं–अहिंसक रेशम सूती/वानस्पतिक रेशम तथा हिंसक रेशम प्राणिज रेशम।

आचारांग[76] में पाँच प्रकार के रेशमी वस्त्रों का उल्लेख है–

–पट्ट : पट्ट वृक्ष पर पले कीड़ों की लार से निर्मित

–मलय : मलय देश में उत्पन्न वृक्षों के पत्तों पर पड़े कीड़ों की लार से निर्मित

–अंशुक : दुकूल वृक्ष की आंतरिक छाल से प्राप्त रेशों से निर्मित

–चीनाशुक : चीन देश के रेशमी वस्त्र

–देशराग : रंगे हुए रेशमी वस्त्र

अनुयोगद्वारसूत्र में अण्डों से बने रेशमी वस्त्रों को अण्डज एवं कीड़ों की लार से बने वस्त्रों को 'कीड़ज' कहा गया है। अलग–अलग वृक्ष के पत्तों के कीड़ों की लार

से निर्मित वस्त्र का अलग नाम दिया गया है। नामकरण में कीड़ों की लार से ही निर्मित हो, ऐसा स्पष्ट नहीं है। संबंधित वृक्ष के पत्तों या छाल से प्राप्त रेशों से निर्मित वस्त्र भी रहे हो, जैसे अंशुक वृक्ष की बाहरी छाल और भीतरी छाल से निर्मित वस्त्रों के अलग–अलग नाम दिये गये हें। भीतरी छाल के रेशे महीन होने से उनसे निर्मित वस्त्र रेशमी वस्त्र रेशमी लचक वाला होता था। इसके अलावा किसी देश या प्रदेश विशेष के रेशमी वस्त्र या रंगीन रेशमी वस्त्र, इसीलिए यह आवश्यक नहीं है कि वस्त्र 'कीड़ज' या 'अण्डज' ही रहे हो। आचारांग सूत्र के वस्त्रैषणा अध्ययन में समस्त प्रकार के वस्त्रों की जानकारी प्रदान की गई है, जिससे आगम युग के वस्त्रोद्योग की व्यापकता का पता चलता है। आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के पन्द्रहवें अध्ययन के अनुसार भगवान महावीर को दीक्षा के समय एक लाख रूपये के क्षौम वस्त्र पहनाये गये थे, जो महीन कपास से निर्मित थे। उन्हें 'सूती रेशम' का नाम दिया जा सकता है। श्रमण परम्परा में प्राणित रेशम का निर्माण, व्यापार और उपयोग निषिद्ध रहा है।

Åuh oL=

आचारांग में वर्णित जंगीय वस्त्र ऊनी वस्त्र हैं। वे पशुओं के बालों से निर्मित होते थे। ऊन से कम्बलें बनाई जाती थी और उनमें रत्न भी जड़े जाते थे।[77]

pe! oL=

आचारांग, निशीथचूर्णि आदि में अनेक प्रकार के चर्म वस्त्रों को उल्लेख है परन्तु व्रती समाज में चर्म वस्त्रों का व्यापार व उपयोग नहीं किया जाता था।

vU; oL=

ऊपर वर्णित वस्त्रों के अलावा आचारांग[78] में वस्त्रों के अनेक प्रकार बताए हैं–

सहिण	–	बारीक और सुन्दर
आय	–	बकरे की खाल से निर्मित
काय	–	नीली कपास से निर्मित
दुग्गल	–	दुकूल के रेशों से निर्मित
पट्ट	–	पट्ट के तंतुओं से निर्मित

अंसुय –	दुकूल वृक्ष की छाल के रेशों से बना
देसराग –	विशेष रूप से रंगे हुए वस्त्र
गज्जफल–	स्फटिक के समान स्वच्छ
कोयव –	रोंयेदार कम्बल
कम्बलग –	साधारण कम्बल
पावारण –	लबादा से लपेटने वाले वस्त्र

jaxkbZ m|ksx

निशिथसूत्र में बताया गया है कि लोग ऋतु के अनुसार अलग–अलग रंगों के वस्त्र पहनते थे, इसका अर्थ यह है कि लोग मौसम के अनुसार रंगों के प्रभाव को समझते थे। वस्त्रों की बढ़िया किस्म बनाने के लिए और वस्त्रों को सुन्दर बनाने के लिए रंगाई उद्योग अपना काम करता था।

rS;kj oL= m|ksx

वस्त्र उद्योग के साथ गारमेन्ट उद्योग भी विकसित था। स्त्री, पुरूषो, बच्चों, युवाओं, आदि के लिए तैयार वस्त्र मिलते थे। इन वस्त्रों की सिलाई करने के लिए विशेष दर्जी होते थे। रफू करने वालों को 'तुन्नग' कहा जाता था। लोग विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करते थे।

निशीथचूर्णि में मूल्य के आधार पर तीन प्रकार के वस्त्रों का वर्णन है। 'जहण्ण' वस्त्र सबसे सस्ता होता था जिसकी कीमत 18 रूवग होती थी जबकि 'उक्कोसा' सबसे मँहगा वस्त्र था जिसकी कीमत एक लाग रूवग बताई है। बीच के मूल्य वाले वस्त्र 'मज्झिम' श्रेणी के माने जाते थे। 18 रूवग से लेकर 1 लाख रूवग तक कितनी किस्में रही होंगी यह अनुमान लगाया जा सकता है।

ifl) 0;olk; dsUnz

वस्त्र व्यवसाय देश में सर्वत्र था परन्तु कुछ निर्दिष्ट स्थान इस व्यवसाय के लिये विशेष तौर पर प्रसिद्ध थे। निशीथचूर्णि में महिस्सर को ''बहुवत्थदेस'' बहुत सारे वस्त्रों वाला देश कहा गया है, इसके अलावा मदुरा, कबिंग, काशी, बंग, वत्स, सिन्धु,

मालवा, पौड्रवर्धन, नेपाल, ताम्रलिप्ति, सौवीर, लाटदेश आदि स्थान वस्त्र उद्योग और व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध स्थान थे। ये स्थान तरह–तरह के वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। ज्ञाताधर्मकथांग में वस्त्र निर्यात का उल्लेख भी मिलता है।[79] इस तरह स्पष्ट है कि अर्थतंत्र में वस्त्र व्यवसाय का भी प्रमुख योगदान था।

/kkr m|kx

खनन/उत्खनन व धातु उद्योग का जो स्वरूप वर्तमान में है वैसा आगम युग मे भले ही न रहा हो, परन्तु प्राप्त संदर्भ मानव के श्रम, कौशल और ज्ञान के अद्भुत प्रमाण हैं। 72 कलाओं में धातुवाद का उल्लेख प्राप्त किया जा चुका है। आचारांग सूत्र में पीतल और कांस्य जो मिश्रित धातु है, का उल्लेख टीन और जस्ते के प्रयोग को प्रमाणित करता है। लोहे, त्रपुस, ताम्र, जस्ते, सीसे, कांसे, चांदी, सोने, मणि, वज्र आदि से बहुमूल्य पात्र तैयार किये जाते थे। साधारण पात्रों में थाल, पात्री, थासग, मल्लग (प्याले), कइविय (चमचा) अवपतक (छोटा तवा), करोडिया (कटोरी), तवय (तवा), कवूल्लि (खडपा), कन्दुअ, अन्दालग (ताँबे की कंडाल) आदि उल्लेखनीय है।[80] धातु उद्योगों में लोहे और स्वर्ण उद्योग का प्रमुख स्थान था।

ykg m|kx

लौह कुटीर उद्योग के रूप में प्रतिष्ठित था। नगर–नगर में लुहार व लोहकारों की कार्यशालाएँ होती थीं। भगवती सूत्र[81] में लौहशाला की कार्य प्रक्रिया की एक झलक दी गई है। उसमें बताया गया है कि लोहे को भट्टी में डालकर तप्त किया जाता था। आग को तेज प्रज्ज्वलित करने के लिए चमड़े की धौंकनी से हवा दी जाती थी। लौहे को सण्डासी से प्रतप्त लोहे को ऊँचा–नीचा किया जाता। उसे एरण पर रखकर चर्मेष्ठ या मुष्ठिक (हथौड़े) से पीटा जाता। पीटे हुए लोहे को ठण्डा करने के लिए जलन्द्रोणी (कुण्ड) में डाला जाता था। आज भी गाँवों में लुहार इस विधि से अपना कारोबार चलाते हैं। राजस्थान के गाड़िया लुहार भी इस तरह लोह वस्तुएँ बनाते हैं। लौहार युद्ध के उपकरण, मुद्गल, मुषंडि, करौत, त्रिशुल, हल, गदा, भला, तोमर, शूल, बर्छी, तलवार, वसुला आदि बनाते थे।[82] प्राचीन भारत में लौहाद्योग कितना उन्नति पर था, इसका ज्वलंत प्रमाण दिल्ली में कुतुबमीनार के निकट खड़ा लौह स्तम्भ है। गुप्तकाल से आज

तक उस पर कहीं भी जंग नहीं लगा है। सूत्रकृतांग में सुई आदि के उल्लेख तथा अन्य ग्रंथों में बढ़िया लौह वस्तुओं के उल्लेख पर हर्मन जैकोबी की टिप्पणी उल्लेखनीय है–

The following verses of sutrakritiang are interesting as they afford us a glimpse of an Indian household some 2000 years ago. We find here a curious list of domestic furniture and other things of common use.[83]

ykg LrEHk ¼dqrqcehukj½

इन सभी उद्धरणों से दूसरे अन्य उद्योग धंधों के विकास की सूचनाएँ भी प्राप्त होती है।

Lo.kZ jtr vkSj jRu m|ksx

बहुमूल्य धातुओं का व्यवसाय अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता था। स्वर्णकार का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था। ज्ञाताधर्मकथांग के अनुसार मेघकुमार को दीक्षा से पूर्व हार, अर्धहार, एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, प्रालम्ब, कटक, पाद,

त्रुटित, केयूर, अंगद, मुद्रिकाएँ, कटिसूत्र, कुण्डल, चूड़मणि, मुकुट आदि अनेक प्रकार के रत्न जड़ित स्वर्ण रजत के आभूषण पहनाए गये थे। ज्ञाताधर्मकथांग के अनुसार ही स्वर्णकारों ने उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लि की जीवन्त भव्य स्वर्ण प्रतिमा बनाई थी। एक बार राजकुमारी मल्लि कुमारी का एक दिव्य स्वर्ण कुण्डल टूट गया। पिता ने स्वर्णकारों से वैसा ही कुण्डल बनाने के लिए कहा, परन्तु स्वर्णकार हुबहू कुण्डल नहीं बना सके तो कुपित राजा ने उनको निर्वासित कर दिया। भगवान महावीर के समक्ष उन्होंने आभूषण धारण करने की मर्यादा कर ली थी।[84] हाथी–घोड़े भी सोने चांदी के आभूषणों से अलंकृत किये जाते थे, रथ सिंहासन आदि भी स्वर्ण–रज और मणियों से विभूषित किये जाते थे।

Hkk.M m|kx

कुम्भकार घड़े (घड़ए), मटके, कलश, परात, धान्य पात्र, सुराही, करप (करा या करवा), वारए (वारक या गुल्लक), पिंहडए (पिठरा/मिट्टी की परात), अलिंजर, जंबूलए, (सुरही), उट्टियाएँ (लम्बी गर्दन और बड़े पेट वाले मटके जो तेल, घी आदि भरने के काम आते थे) आदि प्रकार और उपयोग के बर्तन तैयार करते थे।[85] निशीथभाष्य में तीन प्रकार के कलश बताये गये हैं– निष्पावकुट, तेलकुट व घृतकुट।[86]

ग्रंथो में विभिन्न पात्र तैयार करने की विधियाँ और उपकरणों के वर्णन प्राप्त होते हैं। कुम्हार मिट्टी–पानी को मिलाकर उसमें क्षार तथा करीश मिलाकर मृत्तिका पिण्ड तैयार करता था। ऐसे पिण्डों को चाक पर रखकर दण्ड और सूत्रादि की सहायता से विभिन्न आकारों के पात्र तैयार करता था। कुम्हार की, पाँच प्रकार की शालाएँ होती थी, जहाँ बर्तन बनाए जाते उसे 'कुम्भशाला', ईंधन रखने के स्थल को 'ईंधनशाला', भट्टियों को 'पचनशाला' तथा निर्मित बर्तनों को एकत्रित व सुरक्षित रखने के स्थल को 'पणतशाला' कहा जाता था। तैयार बर्तनों को विभिन्न प्रकार के रंगों व चित्रों से सजाया जाता था।

भट्टियाँ आज की भांति ही नगर से दूर या नगर के बाहर हुआ करती थीं, जिससे नगर में प्रदूषण नहीं हो। दुकाने नगर के अंदर तो होती ही थी, बाहर राजपथों और चतुष्पथों पर भी होती थी। बर्तनों पर राज्य द्वारा शुल्क या कर भी वसूला जाता

था। इससे भाण्ड उद्योग की महत्ता का पता चलता है। कुम्हारों का समाज में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान था। उनकी कुम्भकारशालाओं में जैन श्रमण व अन्य भिक्षु ठहरा करते थे।[87]

x'gfuek.k fo|k

कोई भी एक व्यवसाय विकसित होता है तो उसके समानान्तर अनेक अन्य व्यवसाय भी विकसित होते हैं। आवश्यकचूर्णि और वसुदेवहिण्डी में शूपरिक के कोक्कास बढ़ई को एक कुशल शिल्पकार के रूप में बताया गया है। कलिंगराज के कहने पर उसने सात मंजिला सुंदर भवन भी बनाया था। वह यंत्र विद्या का भी जानकार था। उसने यांत्रिक कबूतर बनाये थे। वे कबूतर राजभवन में जाते और गंधशालि चुगकर लौट आते। राजा के आदेश पर गरूडयंत्र भी बनाये।[88] नगरों व भवनों के उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय कुशल कारीगर व अभियंता थे जो राजप्रासाद, भवन, कुटीर, घर, गुफा, देवालय, बाजार, आश्रम, प्याऊ, सभामंडप, भुमि, पुष्करिणी, बावड़ी, स्तूप आदि बनाते थे। बृहत्कल्पभाष्य में तो वातानुकूलित घर बनाने का भी उल्लेख है।[89] परन्तु उस समय वातानुकूलित घर विद्युतीय नही होता था, बल्कि प्राकृतिक होता था। इसीलिए वह स्वास्थ्यप्रद भी होता था, निःसंदेह वास्तु उद्योग और गृहनिर्माण विद्या आय का एक बहुत बड़ा जरिया रही होगी।

dk"B 0;olk;

घर बनता है तो लकड़ी की भी आवश्यकता होती है। इसके अलावा भी लकड़ी बहुत ही आर्थिक महत्व की वस्तु है। भवनों के द्वार, खिडकियाँ, गवाक्ष, सोपान, कंगूरे आदि काष्ठ से निर्मित होते थे। घर की वस्तुओं में खूंटी, संदूक, खिलौने, ओखली, मूसल, पीढ़, पलंग, बाट आदि वाहनों में, गाड़ी, रथ, पालकी, नौका, जहाज आदि व कृषि उपकरणों में हल, जुआ, पाटा आदि लकड़ी से निर्मित होते थे। लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई कहलाते थे। शिल्पी लकड़ी की वस्तुओं को अधिकाधिक कलात्मक बनाते। कल्पसूत्र में काष्ठ–खड़ाऊ (पाउया) को वैडूर्य तथा रत्नों से जड़कर उसे अत्यन्त कलात्मक व मूल्यवान बनाने का उल्लेख है। गोशीर्ष चंदन लकड़ियों में

सबसे बहूमूल्य लकड़ी मानी जाती थी, जबकि वाहन निर्माण और मजबूती की दृष्टि से तिनिश काष्ठ श्रेष्ठ माना जाता था।[90]

x|M&'kDdj m|kx

गन्ने की खेती का वर्णन किया जा चुका है। गुड़, मिश्री, खाण्ड और शक्कर गन्ने के मुख्य उत्पाद हें। गुड़ तो मुख्य रूप से निर्मित किया जाता था, पर उस समय शक्कर का उत्पादन भी होता था, ऐसे उल्लेख मिलते थे।[91]

ज्ञाताधर्मकथांग के अनुसार भारतीय व्यापारी कालिका द्वीप में अन्य वस्तुओं के साथ शक्कर भी ले गये थे। उसमें पुष्पोत्तर शर्करा और पद्मोत्तर शर्करा का उल्लेख विशिष्ट है। इससे पता चलता है कि ईक्षु रस के अलावा अन्य रसों से भी शक्कर बनाई जाती थी। आगम ग्रंथों में[92] ईक्षुगृह (इक्खुवाड़ा) ईक्षुयंत्र (इक्खुजत) आदि के संदर्भ मिलते हे। अवश्य ही कोई परिशोधक प्रक्रिया और यंत्र भी रहे होंगे।

r:y m|kx

कृषि उपजों के अन्तर्गत तिलहन भी होती थी। तिलहन में वह समस्त प्रकार की कृषि उपज सम्मिलित है, जिससे तेल प्राप्त किया जाता है। उपासकदशांग के अनुसार सरसों, तिल, अलसी, एरण्ड, कुसुम्भा, इंगुदी आदि से भी तेल निकाला जाता था।[93] देश–विदेश में व्यापार को देखते हुए नारियल और नारियल तेल का भी प्रयोग किया जाता होगा। तेल की घाणी चलाने को यन्त्रवीड़न कर्म में गिना गया है। जिसे श्रावक के लिए त्याज्य कर्मादान बताया गया है।

nok O;olk;

औषधियों का एक लंबा चौड़ा व्यापार था, तेल से निर्मित दवाईयाँ बाहरी रूप से प्रयुक्त हुआ करती थी। ग्रंथों में शतपाक और सहस्त्रपाक तेल का उल्लेख मिलता है, जिन्हें सौ या हजार औषधियों में सौ या हजार बार पकाया जाता।[94] अन्य अनेक प्रकार के औषधिय तेलों के उल्लेख से आयुर्वेद की विकसित अवस्था का पता लगता है। स्थानांगसूत्र के आठवें अध्ययन में आठ प्रकार के आयुर्वेद का उल्लेख है– कौमारभृत्य (शिशु/बाल रोग चिकित्सा), शालाक्य (श्रवण आदि शरीर के उर्ध्वभाग के

रोगों का इलाज), शाल्यहत्य (प्राचीन शल्यों व शल्य उपकरणों का विवेचन), कायचिकित्सा (ज्वर, अतिसार आदि की चिकित्सा) जांगुल (विषघातक औषध उपाय) भूतविद्या (भूतों के निग्रह की विद्या) रसायन (आयु, बल, बुद्धि आदि बढ़ाने का तंत्र) और बाजीकरण (वीर्यवर्धक औषधियों का निरूपण) ये विधाएँ प्राचीन भारत में स्वास्थ्य जागरूकता तथा दवा/चिकित्सा व्यवसाय की प्रमाण हैं। ज्ञाताधर्मकथांग व उपासकदशांग में 16 प्रकार के रोगों का उल्लेख है। रोग–निवारण के लिए अनेक रसायनों तथा जड़ी बूटियों से औषधियों का निर्माण किया जाता था। आयुर्विज्ञान विकसित अवस्था में था।[95]

i!lk/ku 0;olk;

विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों का उत्पान और व्यापार भी होता था। इस व्यवसाय को करने वाले 'गंधी' कहलाए जाते थे। राजन्य और श्रेष्ठी वर्ग इत्र, सुगन्धित द्रव्यों और विलेपन का उपयोग करते थे। वहीं महिलाएं भी अपने श्रृंगार में तरह–तरह के प्रसाधनों का उपयोग करती थीं। लाक्षा रस नामक प्रसाधन से महिलाओं के अंग राग बनाये जाते थे। आंखों के लिए सूरमा और चिर युवती दिखाने के लिए एक विशेष प्रकार की गुटिका का भी उल्लेख मिलता है।[96] गंधीयशाला से सौन्दर्य प्रसाधनों की बिक्री होती थी। श्रावक को सातवें व्रत उपभोग परिभोग के अन्तर्गत प्रसाधनों की मर्यादा का सुझाव दिया गया है।

ued m|kx

भोजन का स्वाद बढ़ाने के लिए नमक का प्रयोग सदा से ही किया जाता है। औषधियों में भी इसका प्रयोग होता है। जैन ग्रंथों में नमक को पृथ्वी कासिक बताकर इसके विवेक सम्मत उपयोग के लिए कहा गया है। दशैवकालिक सूत्र[97] में इन लवणों का उल्लेख है।

– ऊसर भूमि की मिट्टी से प्राप्त

– समुद्र के पानी से प्राप्त (समुद्र क्षार)

– सैंधा नमक

– रोमा (चट्टानी नमक), काला नमक व सफेद नमक

लवण का इतना व्यापारिक महत्व था कि 'लवणाध्यक्ष' पदनाम से राज्य में अधिकारी तक होता था।[98]

pe! m|kx

जैन ग्रंथों में प्रसंगवश चमड़े के व्यवसाय के उल्लेख मिलते हैं। वृहत्कल्पसूत्र में गाय, भैंस, बकरी, भेड़, कुत्ते आदि पालतू पशुओं और मवेशियों तथा जंगली जानवरों के चर्म का उल्लेख मिलता है।[99] आचारांग के अनुसार सिंध देश विभिन्न प्रकार के चमड़ों के लिए विख्यात था। वहां से पेसा, पेसल, नीले और कृष्ण मर्ग के चर्म बाहर भेजने की सूचना मिलती है।[100] बाघ, चीते और ऊँट के चमड़ों से चादरें बनाये जाने की भी सूचना मिलती है। इन सूचनाओं का यह अर्थ नहीं है कि आत्मा–साधना और अहिंसा के पथ पर चलने वाले उनका उपयोग करते थे। असल में ग्राह्य और अग्राह्य को जानकर ही स्वीकार और अस्वीकार किया जा सकता है।

चमड़े से जूते भी निर्मित किये जाते थे, यह आवश्यक नहीं है कि चर्म प्राप्ति जीवित पशुओं का मारकर ही की जाए। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में चर्मकार मृत पशुओं से चमड़ा प्राप्त करता है और उसका वाणिज्यिक उपयोग करता है। आगम–युग में भी चर्मकार थे। वे मृत पशु को गाँव, नगर से बाहर ले जाते, उससे चमड़ा प्राप्त करते और उसका वाणिज्यिक उपयोग करते थे। ऐसे मृत पशुओं की हड्डियों का भी उपयोग किया जाता है। इस प्रकार चर्मकार व्यवसायिक आधार पर निर्मित समुदाय था और अहिंसक सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का एक हिस्सा था।

fp= 0;olk;

ज्ञाताधर्मकथांग में वर्णित बहत्तर कलाओं का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है, उनमें चित्रकारी भी है। धारणी देवी के शयनगार की छत लताओं, पुष्पावलियों और आकर्षक चित्रों से सज्जित थी। मल्लिका कुमारी के अनुज मल्लदिन्न ने मिथिला के राजमहल में उद्यान (प्रमदवन) में एक चित्र सभा का निर्माण कराया था। इस चित्र सभा के निर्माण में उस समय के नामी और कुशल चित्रकार आये थे। कुछ चित्रकार तो ऐसे

थे जो शरीर का एक अंग देख लेने मात्र से पूरे शरीर की अनुकृति चित्रित करने में दक्ष थे।[101]

vU; m|kx /k/k

जो विवरण और वर्णन हमें प्राप्त होते हें, उनसे यह निष्कर्ष निकालना आसान है कि आगम युग की आर्थिक गतिविधियाँ विविधतापूर्ण और विकसित अवस्था में थीं। पर्याप्त और प्रचुर संसाधनों के बीच नये उद्योग–धंधे, नये शिल्प और वाणिज्य का विकास होता है और ऐसी विकासमान या विकसित व्यवस्था में ही धर्म और आध्यात्म की गतिविधियाँ आगे बढ़ पाती हैं। ग्रंथों में ऊपर वर्णित उद्योग धंधों के अलावा भी अनेक पेशे और व्यवसाय उपलब्ध थे। अपने कार्य, रोजगार और व्यवसाय की दृष्टि से समाज में एक लम्बी वर्ग श्रृंखला थी, जिसके उल्लेख से तत्कालीन व्यवसायों की विविधता पर प्रकाश पड़ता है। ऐसे पेशेवर लोगों में आचार्य, चिकित्सक (वैद्य), वस्तु पाठक, लक्षणपाठक, नैमित्रिक, गांधर्विक, नट, नर्तक, जल्ल (रस्सी का खेल करने वाले), मल्ल, मौष्टिक, विडम्बक (विदूषक), कथक, प्लवक (तैराक), लासक (रास गाने वाले), आख्यायक (शुभाशुभ बताने वाले), लंस (बांस पर चढ़कर खेल दिखाने वाले), मंख, (चित्रपट लेकर अर्जन करने वाले), तूगइल्ल (तूण बजाने वाले), तुम्बवीणिक (वीणावादक), तालाचर (ताल देने वाले), सपेरे, मागध (गाने बजाने वाले), हास्यकार, मसखरे, चाटुकार, दर्पकार, कौत्कुच्य, आदि के अलावा राज भृत्यों में छगग्राही, सिंहासनग्राही, पादपीठ ग्राही, वीणाग्राही, कुतुपग्राही, यष्टिग्राही, कुन्तग्राही, चापग्राही, चमरग्राही, पाषकग्राही, पुस्तकग्राही, फलकग्राही, पीठग्राही, वीणाग्राही, कुतुपग्राही, धनुषग्राही, दीपिका (मशाल) ग्राही आदि का उल्लेख मिलता है।[102] एक व्यक्ति अनेक प्रकार की योग्यताएँ रखता था और जीविका के लिए वह समयानुसार अनेक कार्य भी करता था।

Hkk"kk vkj vkthfodk

यहाँ पर भाषा आर्य[103] की चर्चा करना भी इसलिए समाचीन होगा कि कर्मार्य और शिल्पार्य की भाँति भाषा भी आजीविका का माध्यम रही होगी, जैसा कि आज भी होता है अर्धमागधी जानने वालों को भाषार्य कहा गया है। भाषा–आर्य का आर्थिक पक्ष

यह है कि प्रथम तो अर्धमागधी उस समय की जन भाषा थी। व्यवसाय और वाणिज्य की अभिवृद्धि के लिए लोक भाषा या लोकप्रिय भाषा का सहारा लिया जाता है जिससे विपणन सुगमता से हो सके। दूसरा, उस भाषा के अध्ययन–अध्यापन से भी आजीविका जुड़ी होती है। तीसरा, भगवान महावीर ने अपने उपदेश उस भाषा में देकर उसे अत्यन्त गरिमामय स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया था। अर्धमागधी का लेख विधान 18 प्रकार का बतलाया गया है। वह है ब्राह्मी, यवनानी, दोषापुरिका, खरौष्ट्री, पुष्करसारिका, भोगवतिका, प्रहरादिका, अन्ताक्षरिका, अक्षरपुष्टिका, वैनायिका, निह्नविका, अंकलिपि, गणितलिपि, गंधर्वलिपि, आदर्श लिपि, माहेश्वरी, तामिली, द्राविड़ी और पौलिन्दी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योग धंधे सभी प्रकार के थे, पर श्रेष्ठ, उत्तम, अहिंसक, और अल्पहिंसक व्यवसाय करने वाले कर्मार्य और शिल्पार्य कहे गये हैं। इससे अर्थोपार्जन में एक विवेक दृष्टि परिलक्षित होती है।

0;kikj vkSj 0;kikjh

आधुनिक विज्ञान और तकनीक को छोड़ दे ंतो आगम–युग में जो व्यापार और व्यवसाय, शिल्प और कला थे, उनकी एक लंबी सूची है, जिस पर हमने विमर्श किया। कितने ही व्यवसाय और शिल्प और कलाएँ तो ऐसी हैं कि आज वे अनुपलब्ध हैं, यह समय का प्रभाव है।

प्रगति के साथ जब वस्तु विनिमय में व्यावहारिक कठिनाइयाँ पैदा होने लगी तो मुद्रा विनिमय और मुद्रा के माध्यम से क्रय–विक्रय की व्यापारिक गतिविधियाँ होने लगीं। यह निर्भरता स्थानीय, क्षेत्रीय और देशीय से बढ़कर जब अन्तर्देशीय हो जाती हैं तो आयात–निर्यात और वैश्विक व्यापार जन्म लेता है। इस प्रकार दो प्रकार की व्यापारिक गतिविधियाँ होती हैं– देशी व्यापार और विदेशी व्यापार। विदेशी व्यापार में आयात–निर्यात मुख्य हैं। व्यापार का तीसरा प्रकार है–मध्यपत्तन व्यापार (Intrepot Trade)

सामान्यतः क्रय–विक्रय को व्यापार (Trade) और इन गतिविधियों में संलग्न व्यक्ति को व्यापारी (Trader) कहा जाता है। उत्तराध्ययनसूत्र में खरीदने वाले को कइयो (क्रेता) और बेचने वाले को वणिओ (वणिक) कहा गया है।[104] व्यापारी दो प्रकार

के बताये गये हैं–1. स्थानीय व्यापारी 2. सार्थवाह।[105] स्थानीय व्यापारी के तीन प्रकार बताये गये हैं– वणिक, गाथापति और श्रेष्ठी।

LFkkuh; O;kikj

ग्राम नगर के बाजारों में नित्य उपभोग की तथा अन्य सभी वस्तुएँ उपलब्ध रहती थीं। राजमार्गों और चौराहों पर भी खाने–पीने की चीजें मिल जाया करती थी। दशवैकालिक में बताया गया है कि वहाँ सत्तू, चूर्ण, तिलपट्टी, जलेबी, लड्डू, मालपुए आदि उचित मूल्य पर बिक्री के लिए उपलब्ध रहते थे। अलग–अलग वस्तुओं के लिए अलग–अलग बाजार भी होते थे तथा अनेक दुकानें वस्तु विशेष के लिए ही होती थी। व्यवहार सूत्र में बताया गया है कि 'चाक्रिकशाला' में तेल, गौलिकशाला में गुड़, दोसियशाला में दूष्य (वस्त्र), सौतियशाला में सूत तथा बोधियशाला में तन्दुल बेचे जाते थे।[106] 'कुत्रिकापण' में सभी प्रकार की छोटी–बड़ी वस्तुएँ बिक्री के लिए उपलब्ध रहती थीं। राजा श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार के दीक्षा महोत्सव पर कुत्रिकापण से दो लाख स्वर्ण मोहरें के रजोहरण, और भिक्षा पात्र मंगवाये गये थे।[107] कुत्रिकापण की तुलना वर्तमान के विभागीय भण्डारों से की जाती है। अलग–अलग वस्तुओं की अलग–अलग दुकान तथा सभी प्रकार की वस्तुओं की एक विभागीय बड़ी दुकान से यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि स्थानीय व्यापार व्यवस्थित था।

of.kd

वणिक के अन्तर्गत 'वणि' 'विवणि' और 'कक्खपुडिय' ये तीनों भेद मिलते हैं। एक ही स्थान पर दुकान लगाकर बैठकर व्यापार करने वाले वणि, घूमकर व्यापार करने वाले विवणि और बगल में माल की गठरी लेकर व्यापार करने वाले कक्खपुडिय वणिक कहलाते थे।[108] इस प्रकार के सामान्य व्यापारी बहुतायत से पाये जाते थे।

xkFkkifr

गाथापति और श्रेष्ठी सम्पन्न वर्ग के व्यापारी होते थे। ये व्यापार (क्रय–विक्रय) के अतिरिक्त भी बहुत सारे काम धंधे करते थे तथा व्यापार भी इनका बृहद् स्तर पर होता था। समाज और शासन में गाथापति और श्रेष्ठी का अच्छा मान सम्मान था।

भगवान महावीर का प्रमुख श्रावक आनन्द गाथापति था तथा वह सुप्रतिष्ठित व्यक्तित्व का धनी था। श्रेष्ठी भी बहुत सम्माननीय व्यवसायी था। उसे राज्य की ओर से स्वर्ण मुकुट प्रदान किया जाता तथा वह 18 श्रेणियों का भी मुखिया होता था।[109]

I kFkokg

सामुहिक रूप से व्यापारिक यात्रा करना 'सार्थ' कहलाता था तथा उस यात्रा के नेतृत्वकर्ता को सार्थवाह कहा जाता था। देशी और विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने में सार्थवाहों का अहम योगदान होता था। सार्थवाह एक बहुत ही बुद्धिमान, चतुर, साहसी, दूरदर्शी और निडर व्यक्ति होता था। वह सार्थ को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाना अपना कर्तव्य समझता था। व्यापार यात्री दल के सभी सदस्यों को सार्थवाह की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। दुष्कर और विकट राहों पर दो–दो सार्थवाह भी सार्थ का नेतृत्व करते थे।[110]

व्यापारी समाज ने सार्थ जैसी महत्वपूर्ण व्यवस्था द्वारा समाज के अनेक उत्साही युवको को देशान्तर की यात्रा कराई है। उन्हें आजीविका प्रदान की है, उनमें पुरूषार्थ जगाया है। अभय, सुरक्षा, आजीविका, पूंजी, मार्गदर्शन आदि के लिए सार्थ एक निरापद सहारा था। तत्कालीन समय के व्यापार, व्यवसाय और उद्योगों के विकास में सार्थ का अत्यधिक महत्व था। सार्थ अपने प्रस्थान से पूर्व अनेक तैयारियों करता था। ऐसी यात्राओं से पूर्व सार्थ को राजाओं से भी अनुमति लेनी पड़ती थी तथा राजा बीहड़ और भयानक रास्तों में सार्थों की सुरक्षा के लिए अपने सुरक्षाकर्मी भी नियुक्त करता था। सार्थ स्वयं भी सुरक्षा के व्यापक प्रबन्ध करते थे। विपुल पाथेय साथ में रखते, प्रस्थान से पूर्व भी निर्धन और बेरोजगार यात्रियों को अपने सार्थ में सम्मिलित होने का आमंत्रण अवश्य देते और उन्हें व्यापार करने का प्रेरक सुअवसर प्रदान करते थे।[111]

efgyk m|eh

महिलाएँ व्यवसाय करने अब लगी हों, ऐसी बात नहीं है। आगम युग की नारियाँ भी व्यवसाय में निपुण थीं। खेतीबाड़ी, पशुपालन, गृह और कुटीर उद्योगों में तो महिलाओं का प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण योगदान रहता ही था, परन्तु बड़े काम धंधो में उनकी भूमिका रेखाकंनीय है। ज्ञाताधर्मकथांग में द्वारकानगरी की थावच्चा नामक सार्थवाही

महिला के बारे में बताया गया है कि वह राजकीय व्यवहार और व्यापार में निष्णात थी।[112] ज्ञाताधर्मकथांग में वर्णित रोहिणी का व्यक्तित्व भी उद्यमशीलता का परिचायक था, इसी प्रकार अनुतरोपपातिकदशा में उल्लेख है कि काकन्दी नगरी की भद्रा सार्थवाही के पास प्रचुर धन–संपत्ति थी, वह माल लेकर विदेश जाती थी और व्यवसाय करती थी। उसके अपने इकलौते बेटे के लिए बत्तीस भवन बनवाये थे।[113] पता चलता है कि भगवान महावीर के अनुयायी वर्ग में महिला उद्यमियों को प्रतिष्ठापूर्वक स्थान प्राप्त था। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि उद्यम करने वाली नारियाँ अपने पारिवारिक दायित्वों को भी निष्ठा से निभाती थीं।

0;kikfjd laxBu

व्यापारी और व्यवसायी अपने व्यापारिक हितों की रक्षार्थ संगठन भी बनाते थे। भागीदारी और संयुक्त श्रम पूंजी से व्यवसाय के अलावा इन संगठनों की एक सामाजिक व्यवसायिक पहचान और प्रतिष्ठा थी। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने 18 प्रकार की व्यापारिक श्रेणियों–पश्रेणियों को चक्ररत्न की पूजा करने के लिए बुलवाया। इन श्रेणियों में कुम्भार, पट्टइल, सुवझण्कार, सूवकार, गन्धल, कासवग, मालाकार, कच्छकार और ताम्बोलिक नाम के नौ नारू तथा चर्मकार, यंत्रपीलनक, गंदिय, छिपांय, कंसकार, सीवग, गुआर, भिल्ल और धीवर ये नौ कारू के नाम गिनाये गये हैं। आगमों में सुर्णकार, चित्रकार और रजक की श्रेणियों (संगठनों) का उल्लेख है।[114] ये श्रेणियों अपने व्यवसाय और सदस्यों के हित में कार्यरत थीं, जब मल्लिकुमारी के पांव के अंगूठे को देखकर एक चित्रकार ने मल्लिकुमारी का आकर्षक चित्र बना दिया तो मल्लदिन ने बुरा मान लिया और उस चित्रकार को देश निकाला अथवा मृत्युदण्ड का आदेश दिया, ऐसा सुनकर चित्रकारों की श्रेणी राजकुमारी के पास पहुँची और अपना पक्ष रखा, राजकुमार मल्लदिन ने चित्रकार को क्षमा कर दिया।[115] इसी प्रकार अन्य व्यापारों के भी संगठन थे, जिनमें जाति और धर्म गौण व्यापार मुख्य था, राजा को भी इन संगठनों की बात माननी पड़ती थी, वर्तमान में भी इस प्रकार के संगठन होते थे।

0;kikj dsUnz

व्यवसाय और उद्योग के विस्तार के साथ–साथ, बड़े–बड़े व्यवसायिक स्थल और केन्द्र भी उस समय अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते थे, ऐसे स्थलों और केन्द्रों के अध्ययन से तत्कालीन व्यवसायिक उन्नति का पता चलता है। भगवती सूत्र में सोलह महाजनपदों का उल्लेख है– अंग, बंग, मगध, मलय, अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पाढ, लाढ, वज्ज, मोलि, काशी, कोसल, अवध और संभूतरा। आरम्भ में जैन श्रमणों का विहार क्षेत्र व्यापक नहीं था। बृहत्कल्पसूत्र में साधु सध्वियों के लिए साकेत के पूर्व में अंग–मगध तक, दक्षिण में कौशाम्बी तक, पश्चिम में स्थूणा (स्थानेश्वर) तक और उत्तर में कुणाला (श्रावस्ती, जनपद) तक विहार कर सकने की बात कही गयी है तथा इतने ही क्षेत्र को आर्य क्षेत्र बताया गया है।[116] निःसन्देह इन क्षेत्रो में व्यवसाय और वाणिज्य भी उन्नति पर था, पर धीरे–धीरे आर्य क्षेत्रों का विस्तार होता गया। राजा सम्प्रति (220–211 ई.पू.) के समय में साढ़े पच्चीस देशों को आर्य क्षेत्र माना जाने लगा था। ये साढ़े पच्चीस जनपद और उनकी राजधानियाँ निम्न हैं–

tuin	jkt/kkuh	tuin	jkt/kkuh
मगध	राजगृह	अंग	चंपा
बंग	ताम्रलिप्त	कलिंग	कांचनपुर
काशी	वाराणसी	कोशल	साकेत
कुरू	गजपुर	कुशार्त	सोरिय
पांचाल	कौपिल्यपुर	जांगल	अहिच्छत्रा
सौराष्ट्र	द्वारवती	विदेह	मिथिला
वत्स	कौशाम्बी	शांडिल्य	नंदिपुर
मलय	भद्रिलपुर	मत्स्य	वैराट
वरणा	आछा	दशार्ण	मृत्तिकावती
चेदि	शक्तिमती	सिंधु–सौवीर	वीतिभय
शूरसेन	मथुरा	भंगि	पासा
वट्टा	मासपुरी	कुणाल	श्रावस्ती
लाढ़	कोटिवर्ष	केकयीअर्ध	श्वेतिका[117]

इन जनपदों की जो राजधानियाँ है, उनमें से अधिकांश तत्कालीन समय के मुख्य व्यवसायिक केन्द्र थे जो स्थल और जल मार्ग से देश विदेश से जुड़े हुए थे। आगे के पृष्ठों पर जिनकी चर्चा की जाएगी। प्रश्नव्याकरण सूत्र[118] में आठ प्रकार के व्यापार केन्दों का वर्णन है–

1. गम्म (ग्राम)– आगम साहित्य में ग्राम की अनूठी परिभाषा मिलती है। जहाँ के निवासियों को अठारह प्रकार का कर चुकाना पड़ता है, वही ग्राम है। यह परिभाषा प्राचीन भारत के गाँवो की व्यवसायिक समृद्धि का बड़ा प्रमाण है, जो वर्तमान के भारतीय गाँवों के लिए दूर की कौड़ी है।
2. आकर– स्वर्ण, रजत और धातुओं के उत्खनन क्षेत्र को आकर कहा गया है। निश्चित तौर पर ये उत्खनन क्षेत्र वाणिज्यिक और औद्योगिक गतिविधियों के केन्द्र थे।
3. नगर– 'नत्येत्थ करो नगंर' जहां अठारह प्रकार के करने लगते हो उसे (न+कर) कहा गया है। ग्राम और नगर की उपर्युक्त परिभाषाएँ अद्भुत हैं, बेशक नगर में अन्य प्रकार के कर लगते होंगे।
4. निगम– जहाँ बड़ी संख्या में व्यापारी व्यापार के लिए बसते हों, उस स्थान को निगम कहा गया है। वर्तमान में आर्थिक क्षेत्रों का उद्योग विहारों से इनकी तुलना की जा सकती है।
5. खेड/खेत– कृषि ग्रामों/नगरों को खेड़ कहा गया। आज भी खेतिहर बहुल ग्रामों के साथ खेड़ा शब्द जुड़ा रहता है।
6. कब्बडग या कर्वत– जिन स्थानों पर लघु स्तर पर व्यापारिक गतिविधियाँ हो उन्हें कर्वत कहा गया है।
7. द्रोणमुँह/द्रोणमुख– ये ऐसे वाणिज्यिक केन्द्र होते थे जो जल और स्थल दोनों प्रकार के व्यापारिक मार्गों से जुड़े रहते थे।
8. जलपट्टन– विशाल बंदरगाहों को जलपट्टन कहा गया है। ये स्थल, विदेश और सामुद्रिक व्यापार के केन्द्र हुआ करते थे।

ifl) 0;kikj dsUn

इन सारे तथ्यो के प्रकाश में अब हम उस समय के प्रसिद्ध व्यापार केन्द्रों पर एक विहंगम दृष्टिपात करते हैं। डॉ. दिनेश चन्द्र जैन ने इन केन्द्रों को वर्तमान परिस्थिति के साथ जोड़ा है।[119] ये 26 केन्द्र इस प्रकार हैं–

dsUn dk uke	orZeku izns'k@ns'k	dsUn dk uke	orZeku izns'k@ns'k
राजगृह	बिहार	चम्पा	बिहार
पाटलिपुत्र	बिहार	मिथिला	बिहार
वैशाली	बिहार	गम्भीर	पं. बंगाल
दन्तपुत्र	पं. बंगाल	हस्तीशीर्ष	अज्ञात
कंचनपुर	उड़ीसा	पिहुण्ड	आंध्रप्रदेश
वाराणसी	उत्तरप्रदेश	कौशाम्बी	उत्तरप्रदेश
साकेत (अयोध्या)	उत्तरप्रदेश	श्रावस्ती	उत्तरप्रदेश
मथुरा	उत्तरप्रदेश	अहिच्छत्रा	उत्तरप्रदेश
हस्तिनापुर	उत्तरप्रदेश	उज्जैनी	मध्यप्रदेश
महिष्मती	मध्यप्रदेश	प्रतिष्ठान	महाराष्ट्र
शूरपारक	महाराष्ट्र	भृगुकच्छ	गुजरात
द्वारवती	गुजरात	वीतियभयपट्टन	पाकिस्तान
तक्षशिला	पाकिस्तान	पुष्कलावती	पाकिस्तान

इन सभी स्थानों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व भी खूब रहा है। परन्तु यहाँ उनके वर्णन में वाणिज्यिक महत्व को रेखांकित किया गया है।

1- jktx`g& यह प्रसिद्ध व्यापार केन्द्र था। यहां सम्पन्न व्यापारी लोग रहते थे। अनेक स्थानों से लोग यहाँ माल विक्रय करने आते थे। तक्षशिला से यह सीधे तौर पर जुड़ा था। श्रेणिक और कुणिक (अजातशत्रु) राजगृह के शासक थे। निरयावलिका में राजगृह के लिये कहा गया है– रिद्धित्थिमिय समिद्ध अर्थात वह धन–धान्य, वैभव, ऋद्धि, समृद्धि से युक्त था।[120]

2 pEik& श्रेणिक के निधन के पश्चात् कुणिक ने चम्पा को अपनी राजधानी बनाया था। औपपातिक और उववाई सूत्र में चम्पा का ऐसा वर्णन है जिससे यह समृद्ध व्यवसाय केन्द्र के रूप में हमारे सामने आता है। यह मिथिला, अहिच्छत्रा, पिहुण्ड आदि से स्थल मार्ग से जुड़ा हुआ था। वहाँ के बाजार (विवाटी) शिल्पियों से आकीर्ण रहा करते थे। इस सुन्दर और धन–धान्य से परिपूर्ण नगर में अनेक व्यापारी, नौवणिक, श्रेष्ठी, कारीगर और कलाकार रहते थे। धन्य सार्थवाह यहीं का निवासी था। अर्हन्नक, मालन्दी और जिनपालित चंपा के निवासी थे, जिन्होंने साहसिक व्यापारिक समुद्र यात्राएं की।[121]

3- ikVfyiq= ¼iVuk½& इस नगर को अजातशत्रु (कूणिक) ने बसाया था, तथा उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र उदायी ने इसे अपनी राजधानी बनाया। बाद में चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक और कुणाल पाटलिपुत्र के राजा बने। ई.पू. पांचवी सदी से छठी सदी तक इस नगर का अपरिमित उत्कर्ष हुआ था।[122]

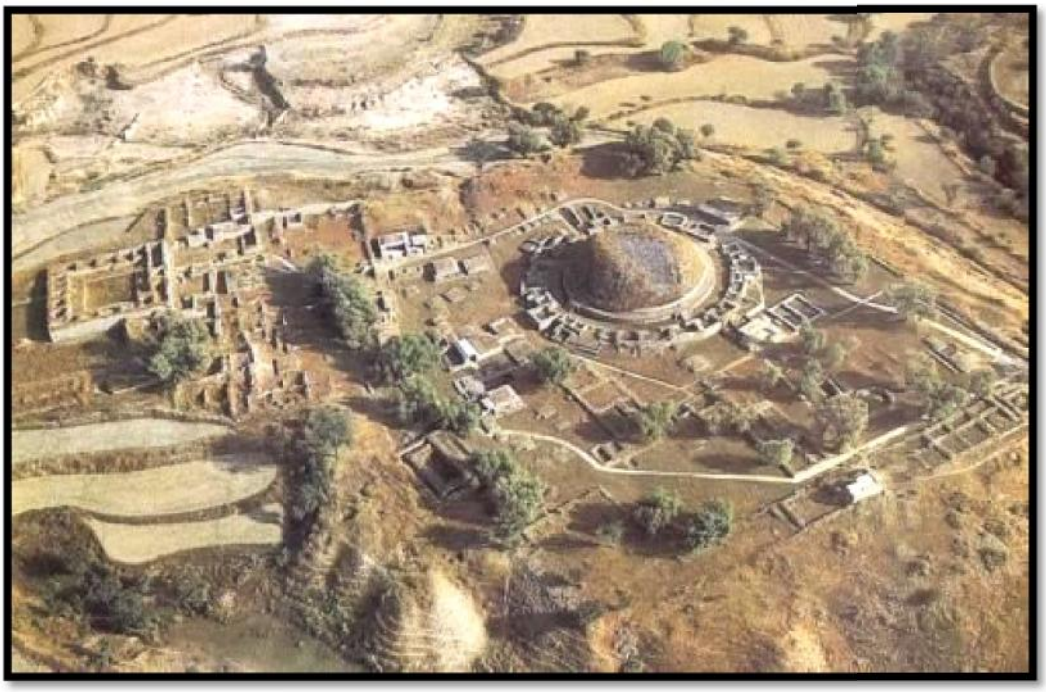

ikVfyiq= vo’ks"k

4- fefFkyk ¼tudiqj½& ज्ञाताधर्मकथांग में इस नगर का वर्णन है। पास और दूर देशों के व्यापारी यहाँ व्यापार करने आते थे। व्यापार करने की राजा से अनुमति लेते थे और राजा भी उनका शुल्क माफ कर देता था। वर्तमान में नेपाल तराई में इसकी अवस्थिति मानी गई है।[123] यह चंपा से भी जुड़ा था।

5- oS’kkyh& वैशाली गणराज्य में कुण्डपुर को भगवान महावीर का जन्म स्थान भी माना जाता है। महाराजा चेटक जो महावीर के नाना या मामा थे, वैशाली गणराज्य के प्रमुख थे। यह भी व्यापार का मुख्य केन्द्र था। निकट ही वाणिज्यग्राम की स्थिति से वैशाली व्यापार केन्द्र के रूप में भी सिद्ध होता है। यहाँ अनेक व्यापारी आते–जाते और रहते थे।

6- xzHkhj& साढ़े पच्चीस आर्य देशों में इसकी गणना की गई है। यह बंग की राजधानी था। प. बंगाल के मिदनापुर जिले के ताम्लुक के रूप में इसकी पहचान की गई है।[124] यह सचमुच व्यापार, वाणिज्य का बड़ा केन्द्र था, इसे ‘द्रोणमुख’ कहा जा सकता है, जहाँ से स्थल मार्ग, नदी मार्ग और समुद्र मार्ग तीनों जुड़े हुए थे। अनेक देशों में यहाँ

से माल का निर्यात, अनेक देशों से यहाँ माल का आयात तथा स्थानीय व्यापार यहां होता था।

7- nUrkiqj& वर्तमान में मिदनापुर जिले (पं. बंगाल) के दन्तन ग्राम माना जाता है।[125] हाथी दाँत के लिए यह प्रसिद्ध था। संभवतः इसीलिए इसका नाम दन्तपुर पड़ा है। यहाँ का धनमित्र, उसकी पत्नी की इच्छापूर्ति के लिए हाथी–दाँत का भवन बनाना चाहता था, परन्तु गैर कानूनी कार्य के कारण उसे गिरफ्तार कर लिया गया।[126]

8- gLrh'kh"kZ& ज्ञाताधर्मकथांग[127] के अनुसार इस नगर में अनेक सांयत्रिक (संयुक्त रूप से व्यापारिक यात्रा करने वाले) और नौकावणिक रहते थे। वे धनाढ्य और समर्थ थे। यहाँ के व्यापारी व्यापार के लिए कालिका द्वीप तक गये थे। कालिका द्वीप पूर्वी अफ्रीका में कहीं माना जाता है।

9- dkpuiqj& जैन ग्रंथों में इसे कलिंग की राजधानी बताया गया है। ईसा की सातवीं शताब्दी से आज तक यह भुवनेश्वर (उड़ीसा की राजधानी) के नाम से जाना जाता है। यह व्यापार का केन्द्र था तथा यहाँ के व्यापारी श्रीलंका व्यापार के लिए जाते थे।[128]

10- fiqg.M& उत्तराध्ययन सूत्र में पिहुण्ड का उल्लेख है, यह व्यापार केन्द्र था। चम्पा का व्यापारी पालित यहाँ पहुँचा था। यह समुद्री किनारे बसा हुआ था। इसे वर्तमान में विशाखापट्टनम (आ.प्र.) के पश्चिम में नागवती नदी के पास नगर के रूप में पहचाना गया है।[129]

11- okjk.klh ;k ok.kkjlh& भारतीय साहित्य, संस्कृति और इतिहास में वाराणसी का महत्वपूर्ण स्थान है। यह काशी जनपद की राजधानी थी। इसे तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है।[130] वरूणा तथा असी इन दो नदियों के बीच अवस्थित होने के कारण इसका नाम वाराणसी पड़ा। नदियों के निकट/किनारे होने से नदी जल मार्ग इससे जुड़े थे। रेशम और कलात्मक वस्तुओं के लिए यह प्रख्यात थी।

12- dk'kkEch& यह वत्स साम्राज्य की राजधानी थी। यह नगर 'कोसम' नामक गाँव के रूप में पहचाना गया है जो इलाहबाद से 337 मील दूर दक्षिण पश्चिम में तथा

यमुना नदी के उत्तर में स्थित है।[131] यह भी अच्छा व्यापार केन्द्र था तथा उसमें जल–परिवहन की भी भूमिका थी।

13- lkdsr ¼v;ks/;k½& अयोध्या भगवान राम की जन्म स्थली के रूप में विख्यात है। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की जन्मस्थली भी अयोध्या (विनीता) को माना जाता है। भगवान महावीर का भी यहां विचरण हुआ था। व्यापार और व्यवसाय खूब होता था। नदी जलमार्ग का भी उसमें योगदान था। यहाँ के निवासी सुसभ्य और सुसम्पन्न थे। कुछ विद्वान साकेत और अयोध्या को दो अलग–अलग स्वतंत्र नगर मानते हैं।[132]

14- lkoRFkh ¼JkoLrh½& कुणाल राजा की इस राजधानी को 25½ आर्य देशों में गिना गया है। इसे वर्तमान में उत्तरप्रदेश में अयोध्या के निकट राप्ती नदी के किनारे 'सहेत–महेत' नामक नगर के रूप में जाना जाता है।[133]

15- eFkqjk ¼eFkqjk½& जैन ग्रंथों में इसे भारत का अत्यन्त प्राचीन नगर माना जाता है। यह शूरसेन की राजधानी थी। शौरसेनी प्राकृत का नामकरण शूरसेन से हुआ माना जाता है। प्रसिद्ध उत्तरापथ रास्ते में मथुरा भी आता है, इससे इसका व्यापारिक महत्व बढ़ गया था।

16- vfgPN=& चम्पा के धन्य सार्थवाह ने अहिच्छत्र जाने के लिए अपना सार्थ तैयार किया था। अहिच्छत्र ने अन्य नगरों से अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे। उत्तरापथ का रास्ता यहां से होकर गुजरता था। उत्तरप्रदेश के बरेली जिलान्तर्गत रामनगर के रूप में वर्तमान में जुड़ा हुआ है।[134]

17- gfLrukiqj& यह नगर विभिन्न प्रकार की कला, शिल्प और उद्योग के लिए माना जात है। यह भी गंगा के किनारे बसा था। महाभारत में इसका वर्णन मिलता है। वर्तमान में इसे मेरठ (उ.प्र.) से 22 मील दूर उत्तर पश्चिम कोण में तथा दिल्ली से 56 मील दक्षिण पूर्व में स्थित खण्डहरों के रूप में पहचाना गया है। आदि तीर्थंकर के पौत्र हस्तिन के नाम से इसका नामकरण हस्तिनापुर किया।[135]

18- mTtuh& यह वर्तमान में मध्यप्रदेश में उज्जैन के रूप में विद्यमान है। आवश्यकचूर्णि में इसे एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र बताया गया है। यहाँ का व्यापार दूर–दूर तक फैला हुआ था।

19- ekgljh& उत्तर से दक्षिण के बीच का स्थल होने से यह स्थान दोनों ओर का व्यापार केन्द्र था। नर्मदा के दक्षिण में इन्दौर (म.प्र.) के पास इसे स्थित माना जाता है।

20- ifr"Bku& यह गोदावरी के उत्तरी किनारे पर महाराष्ट्र के औरंगाबाद के निकट स्थित माना जाता है। प्राचीन समय का प्रतिष्ठित व्यापारिक केन्द्र था।

21- lkikj;& वर्तमान में यह मुम्बई से 42 मील उत्तर में ठाणे जिलान्तर्गत सोपारा (नालसोपारा) के नाम से पहचाना जाता है।[136] प्राचीन समय में यह समुद्री किनारे होने से विदेश व्यापार की गतिविधियों का मुख्य केन्द्र था। भृगुकच्छ से सुवर्णभूमि तक इसका नियमित व्यापार था।

22- Hk'xdPN& यह नगर भी 'द्रोणमुख' व्यापार केन्द्र का उत्तम उदाहरण है। यह समुद्री किनारे भी था और नर्मना नदी के भी। स्थल मार्ग से यह जुड़ा हुआ था। यह उज्जैनी से भी व्यापारिक तौर पर जुड़ा हुआ था। वर्तमान में यह गुजरात में भरूच के रूप में पहचाना गया है।[137]

23- }kjorh& यह गुजरात में द्वारका के रूप में पहचाना जाता है। कोई इसे जूनागढ़ के निकट मानते है। प्राचीन भारत में यहाँ भी समुद्री बंदरगाह रहा होगा। ज्ञाताधर्मकथांग[138] में इस नगर को बहुत सुन्दर और समृद्ध बताया गया है। द्वारवती में सभी प्रकार की गतिविधियाँ सम्पन्न की जाती थीं।

24- ohfrHk;iêu& वर्तमान में इस नगर की अवस्थिति पाकिस्तान के शाहपुर जिले के 'मेर' नगर के रूप में की गई है। आवश्यकचूर्णि में इसका 'कुम्भकार–प्रक्षेप' नाम मिलता है। सिंधु नदी के बायें किनारे पर स्थित होने तथा रेगिस्तान में होने से इस नगर का अलग ही व्यापारिक महत्व था।

25- r{kf'kyk& तक्षशिला व्यापारिक केन्द्र तो था ही, एक शिक्षा केन्द्र के रूप में इसकी ख्याति थी। पूर्वोत्तर भारत के व्यापारी पश्चिम में तक्षशिला होकर जाते थे।

कुवलयमालाकहा के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के धर्मचक्र का प्रवर्तन वहाँ हुआ था और वह उनके समवसरण से शोभित थी। तक्षशिला में द्वीप समुद्र की भांति असंख्यात धन–वैभव बिखरा पड़ा था।[139] पाकिस्तान में रावलपिण्डी के निकट इसके अवशेष आज भी विद्यमान हैं।

26- i"djkorh& यहां भी पूर्वोत्तर भारत के व्यापारी व्यापार के लिए पहुंचते थे तथा यहां के व्यापारी भी देश–विदेश में व्यापार करते थे तथा व्यापारिक सम्बन्ध अच्छे थे। पुष्कलावती (कमल के फूलों का शहर) वर्तमान में पेशावर (पाकिस्तान) से 17 मील उत्तर–पूर्व में स्थित माना गया है।[140]

संपूर्ण भारतवर्ष में फैले ये व्यापारिक केन्द्र तत्कालीन समय की आर्थिक गतिविधियों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। डॉ. प्रेमसुमन ने 'कुवलयमालाकहा' के सांस्कृतिक अध्ययन में प्राचीन भारत के भौगोलिक विवरण और आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए अनेक नये तथ्य प्रस्तुत किये हैं।[141] आगमिक आर्थिक जीवन को समझने में वे भी उपयोगी है।

ifjPNsn r`rh;

vk;kr&fu;kZr

भारत प्रचुर प्राकृतिक वैभव सम्पन्न और उन्नत वाणिज्यिक गतिविधियों का केन्द्र था। भारत का विदेशी व्यापार भी तत्कालीन समय के अन्य देशों के मुकाबले बढ़–चढ़ कर था। जैन आगम ग्रंथों में प्राचीन भारत की तस्वीर भी हमें देखने को मिलती है। ज्ञाताधर्मकथांग के अनुसार राज्य निर्यात को प्रोत्साहित करता था तथा आयातित वस्तु पर कर लगाता था।[142] इससे अनेक बातें फलित होती है कि उस समय विपुल उत्पादन होता था तथा आन्तरिक खपत के बावजूद निर्यात योग्य बहुत सारी वस्तुएँ होती थीं।

राजा महाराजा विदेशों के विलासिता की वस्तुएँ भी मंगवाते थे। सिर्फ वस्तुएँ ही नहीं, श्रम का दास–दासियों का भी आयात–निर्यात होता था। महाराज श्रेणिक के अन्तःपुर में विदेशी दासियाँ थीं। यवन बब्बर, वाहलिक, पारस सिंहल, अरब आदि देशों की दासियाँ यहां थी। विदेशों से सुदर व बलिष्ठ घोड़े भी आयात किये जाते थे। भारतीय व्यापारी मिथिला नरेश कनककेतु के लिए कालिका द्वीप से धारीदार घोड़े लाये थे। अरब और कम्बोज से कत्थक जाति के घोड़ों को भारत लाया गया था। अश्व और दास दासियों के अलावा विदेशों से स्वर्ण, रजत और वस्त्र व रत्न आदि भी आयात किये जाते थे।[143] आयातकर्ता राजकर से बचने के लिए अपना मार्ग भी बदल लेते थे।

निर्यात के अन्तर्गत भारत से अनेक प्रकार की वस्तुएँ विदेशों को भेजी जाती थी जिनमें रत्न, वस्त्र, सौन्दर्य प्रसाधन, खिलौने, गुड़ जैसी अनेक चीजें भेजी जाती थी। हस्तीशीर्ष में पोतवणिक, चन्दन, खस, इलायची, सुपारी आदि सुगंधित वस्तुएँ, विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र, गुड़, खाण्ड, मिश्री, सूती और ऊनी वस्त्र, खिलौने आदि लेकर कालिकाद्वीप गये थे। व्याख्या साहित्य में आयात–निर्यात के अनेक उल्लेख प्राप्त होते है। उत्तराध्ययन टीका के अनुसा पारसकुल (ईरान) के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध थे और वहीं से सोना, चाँदी, मोती, मूंगे, मंजीठ आदि का आयात किया जाता था।[144]

0;kikfjd ekx

आज जैसी पक्की डामर की सड़कों का निर्माण उस समय हुआ हो ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। परन्तु आवागमन के लिए सुव्यवस्थित मार्ग प्राचीन समय से ही थे। आज से पच्चीस छब्बीस शताब्दियों पूर्व जब वैज्ञानिक यंत्र और मशीने नहीं थी, जिन आधारभूत सुविधाओं (Infrastructure) का वर्णन हमें मिलता है, वह मानव के पुरूषार्थ का बडा प्रमाण है। जैन आगम ग्रंथों में स्थल, जल व सामुद्रिक मार्गों के उल्लेख प्राप्त हैं।

LFky ekx

व्यापारिक स्थल मार्ग बीहड़, वन प्रदेशों और जोखिमों से भरे होते थे। जंगली जानवरों, जीव–जन्तुओं, लुटेरों और चोरों का भय बना रहता था। व्याख्याप्रज्ञप्ति में कम यातायात वाले मार्ग को पथ और अधिक यातायात वाले मार्ग को महापथ कहा गया है।[145] तिराहों (श्रृंगाटक), चौराहों (चतुष्क) के अलावा प्रवह (जहां रास्ते मिलते हो) भी होते थे। नगर और नगर मार्गों की स्वच्छता और सुरक्षा के लिए राज्य की ओर से नगर गुप्तिक नियुक्त रहते थे। उनके द्वारा मार्गों की देखभाल की जाती थी और सड़कों की मरम्मत की जाती थी। सड़कों के रखरखाव के लिए राज्य की ओर से पथ–कर भी वसूला जाता था। देशान्तर गमन करने वालों को राज्य की ओर से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। इससे अवैध व्यापार और घुसपैठ रोकी जा सकती थी। अच्छी सड़कों से राज्य की समृद्धि जुड़ी होती थी। मार्ग सुरक्षित रहें इसके लिए राज्य की ओर से सुरक्षाकर्मी भी नियुक्त किये जाते थे। उन्हें 'ग्रौल्मिक' कहा जाता था।[146] आवश्यकता के अनुसार मार्गों का निर्माण किया जाता था। राजमार्ग, द्रोणमुख तथा व्यापारिक मण्डियों को जाने वाले रास्ते आठ दण्ड चौड़े, तालाब और वन की ओर जाने वाले चार दण्ड चौड़े, हाथियों के चलने और खेत जाने वाले दो दण्ड चौड़े, रथों के लिए पांच रत्न (दो रत्ममाप को एक गज के बराबर माना जाता था), पशुओं के लिए चार रत्न तथा मानव और छोटे पशुओं के लिए दो रत्न चौड़े मार्ग निर्मित किये जाते थे।[147]

t y ekx

प्राचीन भारत की धरती कलकल करती अनेक सरिताएँ बहती थी तथा वर्तमान की भांति पुल भी नहीं थे। इससे देश का एक अलग ही भूगोल था। उसमें नदियों के पास व्यापार में विशिष्ट साहस और योग्यता की आवश्यकता थी। गंगा, यमुना, सरयू, इरावती, माही, कोसी, सिंधु आदि नदियों के रास्ते देश–विदेश में व्यापार होता था।[148] नदियों में प्रचुर जल उपलब्ध था और वह प्रदूषित भी नहीं थीं। नदी के किनारे बसे नगरों का व्यापारिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व था। नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक माल और सवारियाँ ढोने वाले नाविकों का धंधा भी अच्छा चलता था। नेपाल से आने वाली एकठा नाव में एक बार में 40 से 50 मन तक अनाज भरा जा सकता था। नदी पार करने के लिए निरा श्राविणी नौका सुरक्षित मानी जाती थी। अविकसित क्षेत्रों में खाल पर बैठकर भी नदी पार की जाती थी।[149]

l e|nh ekx

समुद्र पार व्यापार के लिए समुद्री जहाजों से यात्राएं की जाती थी। ये यात्राएं अत्यन्त रोमांचक, साहसभरी और जोखिमों से भरी होती थी। वे असुरक्षित भी होती थी। जलदस्युओं का भय रहता था। वे काली पीली सफेद झण्डियों वाले, बड़े पतवालों वाले, द्रुतगामी पोतों द्वारा आक्रमण कर व्यापारियों को लूट लेते थे। ज्ञाताधर्मकथांग के अनुसार समुद्री यात्रा करने वाले सार्थवाह भी होते थे। चम्पा के मकन्दी नामक सार्थवाह के पुत्रों जिनमालित और जिनरक्षित ने ग्यारह बार समुद्री मार्ग से यात्राएँ की। बाहरवीं बार उनकी समुद्री मार्ग की यात्रा में जहाज टूट गया तथा उन्हें भयंकर कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। चम्पा का ही एक पालित नामक व्यापारी जलपोत पर सवार होकर व्यापार के लिए पिहुण्ड गया था। डॉ. जगदीशचन्द्र जैन के अनुसार पिहुण्ड खारवेल शिलालेख का पिथुडग हो सकता है जो चिकाकोल और कलिगपटम के अंदरूनी हिस्से में स्थित था।[150] वासुदेवहिण्डी, कुवलयमालाकहा आदि ग्रंथों में भी समुद्री मार्गों से की जाने वाली यात्राओं के उल्लेख मिलते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार जलमार्गों की सुरक्षा के लिए राज्य की ओर से पोतवाध्यक्ष नियुक्त किया जाता था, जो मार्गों और यानों की सुरक्षा सुनिश्चित करता था।[151]

ok;q;ku

राजप्रश्नीयसूत्र में विमान और देवयान का उल्लेख मिलता है। व्यवसायिक उद्देश्यों से इन यानों के उपयोग का कोई विवरण नहीं मिलता है। जैन कथा साहित्य में विधाधरों और लब्धिधारियों द्वारा आकाश मार्ग में गमन के उल्लेखों में कोई आर्थिक प्रयोजन दृष्टिगोचर नहीं होता है। जैन साहित्य का वृहद इतिहास (भाग–5)[152] के अनुसार प्राचीन भारत में विकसित विमान विद्या थी। विमान बनाने और वायु मार्ग से उसे संचालित करने की वैज्ञानिक विधि, तकनीक और कौशल की जानकारी प्राचीन भारत में भी थी। विमान विद्या से आर्थिक गतिविधियों की पूरी श्रृंखला जुड़ी थी। महाराज भोज के कोल में विमान उड़ते थे और राजा महाराजाओं के पास निजी विमान होते थे। कबूतर डाकिये का दायित्व वायु मार्ग से ही निभाते थे। कमाई के लिए परदेश गये प्रिय को संदेश भिजवाने, राजकीय संदेशों के प्रेषण आदि में कपोतों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। मोटे तौर पर गैर आर्थिक कार्यो से भी आर्थिक प्रयोजन जुड़े रहते थे।

vkfFkZd i{k ls tqM+ dqN pfj=[153]

पूर्व में बताया गया है कि आर्यरक्षित ने जैन आगम साहित्य को चार अनुयोगों में वर्गीकृत किया गया है। चरणकरणानुयोग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग। चरणकरणानुयोग में आचार का विशेष प्रतिपादन है। धर्मकथानुयोग में दृष्टान्त, कथा चरित्र आदि का वर्णन है। गणितानुयोग में अर्थशास्त्र सहित सभी विषयों की गणित सम्बन्धी जानकारियाँ समाहित रहती हैं। द्रव्यानुयोग में तत्व और दर्शन सम्बन्धी विषयों का समावेश रहता है। आर्थिक पक्ष मुख्य रूप से धर्मकथानुयोग और चरणकरणानुयोग में विद्यमान रहता है। उपासकदशांग के दसों ही श्रावकों का जीवन अर्थशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहां ऐसे ही प्रेरक चरित्रों में से कुछ पर एक विहंगम दृष्टिपात किया जा रहा है।

jkfg.khKkr

छठवें अंग आगम ज्ञाताधर्मकथांग के सातवें अध्ययन में यह कथा आती है। राजगृह नगर के धन्य सार्थवाह के चार पुत्र थे– धनपाल, धनदेव, धनगोप और

धनरक्षित। चारों ही नामों के साथ धन शब्द जुड़ा होना प्रस्तुत संदर्भ में उल्लेखनीय बात है। उनकी पत्नियों के नाम थे– उज्झिता, योगवती, रक्षिका और रोहिणी। जीवन की सांध्यवेला में धन्य सार्थवाह ने यह सोचा कि उसके पश्चात् कौटुम्बिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुछ किया जाना चाहिये। उसने एक कार्यक्रम रखा, उसने अपने सभी सगे–सम्बन्धियों, मित्रों और परिचितों को एक कार्यक्रम में आमंत्रित किया तथा सबके समक्ष चारों पुत्रवधुओं को बुलाकर चावल के पाँच–पाँच दाने दिये और कहा कि– 'मेरे मांगने पर ये पांच दाने वापस लौटाना।'

उज्झिता ने सोचा कोठार में ढेर सारे चावल हैं, श्वसुर जब भी मांगेगे, दे दूंगी। यह सोच उसने चावल के उन पांच दानों को एकांत में डाल दिया। भोगवती ने उन पाँचों शालि के दानों को छीला और छीलकर खा गई। तीसरी बहु रक्षिका ने विचार किया कि श्वसुर जी ने समारोहपूर्वक ये पाँच दाने पुनः लौटाने की हिदायत के साथ दिये है। निश्चित ही इसका कोई अर्थ होना चाहिये, उसने पाँच दानों को डिब्बी में संभाल कर रख लिया। चौथी बहु रोहिणी ने सोचा– 'इस प्रकार पांच दाने देने में अवश्य ही कोई रहस्य होना चाहिये, इसीलिए मेरे लिए यह उचित है कि चावल के इन पाँच दानों का संरक्षण, संगोपन और संवर्धन करूँ।' ऐसा विचार करके उसने अपने कुलगृह के सदस्यों को बुलाया और उन्हें उन पाँच शालि अक्षतों को दिया और कहा कि इन पाँच शालि अक्षतों को अलग–अलग क्यारी में बोना। इस निर्देश के साथ रोहिणी बुवाई और बुवाई के बाद की सारी प्रक्रिया व प्रविधि अपने कुलगृह के सदस्यों को समझाती है। कुलगृह के सदस्य रोहिणी के निर्देशानुसार उन पांच अक्षत दानों को अलग से बोते हैं, उनकी फसल अलग से लेते हैं। उनका भण्डारण करते हैं। पुनः उन बढ़े हुए दानों को बोते हैं। वर्ष दर वर्ष यह क्रम चलता है।

पाँच वर्ष बाद धान्य सार्थवाह पुनः एक भोज आमंत्रित करता है। उसमें सभी परिवारजनों, मित्रों और परिचितों को आमंत्रित करता है। कार्यक्रम के दौरान चारों बहुओं को बुलाकर पांच वर्ष पूर्व दिये पांच शालि अक्षत के दानों के बारे में पूछता है। पहली बहू उज्झिता से दाने लेते हुए पूछा कि ये वही दाने हैं या दूसरे? उज्झिता कहती है– दूसरे। इस पर सार्थवाह ने उस बहू को उसके स्वभाव के अनुसार घर के झाडू–कचरा और बाहर के कार्यों की जिम्मेदारी सौंपी। दूसरी बहू भोगवती जो अक्षत

के दाने खा गई थी, को रसोई संबंधी जिम्मेदारी दी। तीसरी बहू रक्षिता ने पाँच दाने डिब्बी में संभाल कर रखे थे। श्वसुर जी को वही दाने लौटाये। श्वसुर जी सन्तुष्ट हुए और उन्होंने रक्षिता को धन सम्पदा, रत्न–मणि और बहुमूल्य खजाने की भण्डार गृहिणी के रूप में नियुक्त कर दिया। चौथी बहू रोहिणी को पूछने पर बताया गया कि वे पाँच शालि अक्षत के दाने पाँच वर्षों में बहुत बढ़ गये हैं। इसलिए गाडियाँ भरकर उन्हें लौटाना होगा, इस पर सार्थवाह ने रोहिणी को बहुत छकड़ा–छकड़ी दिये। रोहिणी ने गाड़ियाँ भर–भर कर वे दाने लौटाये तो सब देखते रह गये। धन्य सार्थवाह ने रोहिणी को कुटुम्ब का सर्वेसर्वा नियुक्त कर दिया।

इस कथा के माध्यम से हालांकि ग्रंथकार धर्म–शिक्षा देता है, परन्तु इसके कई आर्थिक पक्ष उभरते हैं–

– धन्य सार्थवाह था। सार्थवाह देश–विदेश में व्यापार करने वाला बहुत बड़े व्यापारिक दल का मुखिया होता है। वह विशिष्ट प्रबंधकीय कौशल का धनी होता है तथा प्रस्तुत कथा में उसके इस कौशल को वह प्रकट करता है।

– धन्य के चारों पुत्रों के नाम अर्थशास्त्रीय हैं।

– गोपनीय बातों को छोड़कर कोई भी बड़ा फैसला सबके सामने अथवा सबकी सम्मति से किया जाता था।

– एक प्रतिष्ठित कुटुम्ब की बहू भी कृषि संबंधी आद्योपान्त ज्ञान रखती थी। इससे तत्कालीन समय में समृद्ध कृषि और खेती बाड़ी की सूचना मिलती है। कृषि कार्यों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। कृषि के लिए सहायक उपकरणों और वाहनों तथा खेती–बाड़ी की प्रक्रिया के विवरण का बहुत आर्थिक मूल्य है।

ekdUnh lkFkokg

छठवें अंग आगम ज्ञाताधर्मकथांग के नवम अध्याय में यह कथा आती है। कथा अत्यन्त रोचक है। इसमें साहित्य के नौ रस– श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त तथा इन नौ रसों के स्थायी भाव– रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शम का समावेश हुआ है। कथा के अनुसार

चम्पानगरी में माकन्दी सार्थवाह रहता था। उसके दो पुत्र थे जिनपालित और जिनरक्षित। उन्होंने ग्यारह बार व्यापार के लिए लवण समुद्र की साहसिक यात्राएँ की और प्रचुर धन कमा कर वे सकुशल स्वदेश लौटे। वे बाहरवीं बार समुद्री यात्रा करना चाहते थे, परन्तु उनके माता–पिता ने उन्हें मना कर दिया। फिर भी वे धन लाभ की आशा में बारहवीं बार समुद यात्रा करते हैं। समुद्र में भारी भयानक तूफान आता है, वे उसमें बुरी तरह फंस जाते हैं। किसी तरह जलयान के टूटे पाटियों के आसरे, दोनो भाई अपनी जान बचाकर एक द्वीप पर पहुँच जाते हैं। वहाँ द्वीप पर रहने वालों के अधीन उन्हें रहना पड़ता है। एक भाई तो अपनी चतुराई, धैर्य और दृढ़ता के सहारे द्वीप से सकुशल चम्पा लौट आता है। उनकी यह वापसी वायु मार्ग से होती है, परन्तु दूसरा चूक करता है और बीच समुद्र में ही उसे जान से हाथ धोना पड़ता है। इस कथानक में आगम युग की वाणिज्यिक गतिविधियों का मार्मिक चित्रण है। उनके निम्न आर्थिक बिन्दु उभरते हैं–

– धनार्जन करना आसान नहीं। जीवन और जगत के सारे रंग–ढंग उसमें देखने को मिलते हैं।

– समुद्री यात्रा की तैयारी, जोखिम भरी समुद्री यात्राएँ।

– माल, माल का प्रकार, माल को मापने के उपकरणों का वर्णन

– स्थल यान और जल यान का वर्णन

– आयात–निर्यात और विदेशी व्यापार।

/kU; lkFkokg

उस समय चम्पा एक वाणिज्यिक नगरी थी। एक कथानक भी चम्पानगरी से सम्बन्धित है। ज्ञाताधर्मकथांग के पन्द्रहवें अध्याय 'नन्दीफल' में इसका वर्णन है। चम्पानगरी में धान्य सार्थवाह रहता था। एक बार उसने विक्रय के लिए माल लेकर अहिच्छत्रा नगरी जाने का विचार किया। प्रस्थान के कुछ दिनों पूर्व उसे पूरी चम्पानगरी में घोषणा करवाई कि जो कोई व्यक्ति धान्य के साथ चलना चाहे वह उसके साथ चल सकता है। साथ में चलने वालों के लिए भोजन, वस्त्र, आवास आवश्यकता पड़ने पर

सार्थवाह अनेक लोगों के साथ व्यापार के लिए प्रस्थान करता है। पूर्व घोषणा के अनुसार प्रत्येक सहयात्री के लिए धन्य सारी व्यवस्थाएँ करता है। किसी को कोई तकलीफ नहीं होने देता है तथा नीतिपूर्वक व्यापार, व्यवसाय और धर्म की शिक्षा देता है। धन्य सभी व्यापारिक मार्गों को भलीभांति जानता था। चम्पा से अहिच्छत्र के रास्ते में एक भयानक अटवी पड़ती थी। उसमें जहरीले पेड़, पौधे, फल और वनस्पतियाँ थी। धन्य सभी यात्रियों को ऐसे वृक्षों से दूर रहने की हिदायत देता थ। इस तरह पूरा सार्थ लेकर धन्य अहिच्छत्र पहुँचता है। वहां के राजा कनककेतु से भेट कर उन्हें बहुमूल्य उपहार देता है। राजा ने धन्य को व्यापार करने की अनुमति दी और कर माफ कर दिये। सभी लोगों ने अपनी योग्यता के अनुसार व्यापार किया और यथा समय चम्पा लौटे। आर्थिक जीवन की दृष्टि से यह कथानक बहुत ही महत्वशाली है। इससे निम्न आर्थिक बिन्दु स्पष्ट होते हैं–

– सार्थवाह की प्रभावशीलता और उदारता का दिग्दर्शन।

– व्यवसाय की उद्देश्य केवल लाभ ही नहीं वरन् समाज सेवा और देश की उन्नति भी है।

– धन्य का सार्थ मानवीय एकता का जीवन्त समूह है। वह अपने सार्थ में बिना किसी भेदभाव के समाज के हर वर्ग, धर्म, जाति और स्तर के व्यक्ति को अपने सार्थ में शामिल करता है। व्यवसाय के माध्यम से सामाजिक समता और सौहार्द का यह अनूठा कथानक है।

– कठिन यात्रा पथ का वर्णन।

– राजकीय संपर्कों से व्यापार सुगम बना लेना और कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करना।

mikldn'kkx dk nl Jkod

उपासकदशांग सातवीं अंग आगम है। इसमें ई.पू.600 का सजीव सांस्कृतिक चित्रण है। आनन्द और अन्य श्रावकों का जीवन तत्कालीन व्यापार, वाणिज्य और व्यवसाय पर प्रकाश डालतता है। राजा, ईश्वर, तलवर आदि नाम राज्याधिकारियों के परिचायक है। चम्पा, राजगृह आदि नगरों एवं राजाओं के नाम मगध तथा आसपास के

जनपदों का भौगोलिक और व्यवसायिक परिचय देते है।[154] प्रस्तुत शोध प्रबंध में अनेक स्थलों पर उपासकदशांग के आर्थिक महत्व के संदर्भों का उल्लेख हुआ है। आनन्द आदि श्रावको का लंबा चौड़ा व्यवसाय है और उनके पास अपार वैभव है। सभी तीर्थंकर महावीर से अणुव्रत, शिक्षाव्रत और गुणव्रत ग्रहण करते हैं। व्रतों के अनुसार अपना जीवन यापन करते हैं। मितव्ययता और उदारता, कर्म और धर्म, त्याग और भोग, राग और विराग आदि का उनके जीवन में अद्भुत सुमेल था उपासकदशांग से स्पष्ट होता है कि महावीर ने एक व्रती समाज की आधारशिला रखी थी। उससे क्रांतिकारी सामाजिक आर्थिक और धार्मिक उत्कर्ष हुआ था। उसका प्रभाव आज भी है। व्रत–नियमों से चलने वाले विपुल भौतिक और आध्यात्मिक वैभव से स्वामी बन जाते हैं। विपाकसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में सुबाहूकुमार तथा भद्रनन्दी, सुजात आदि का जीवन भी व्रतों से ओत–प्रोत था। एक शोषण मुक्त श्रम आधारित उन्नत अर्थ व्यवस्था आगम युग में जन्म ले रही थी। उसके सूत्रधार तीर्थंकर महावीर थे।

इस प्रकार आगम ग्रंथों में अनेक कथाएं, चरित्र, दृष्टान्त उदाहरण आदि मिलते हैं, जिनका अर्थशास्त्रीय अध्ययन हमें कई जानकारियां देता है। आगमोत्तर काल में भी तंरगवती, समराइच्चकहा, कुवलयमाला जैसी कालजयी कथाएँ लिखी गई है और अनेक कथाकोश रचे गये। जिनमें तत्कालीन समय के आर्थिक सामाजिक जीवन में बारे में अनेक अज्ञात–अल्पज्ञात जानकारियाँ मिलती हैं। पेथड़शाह, जगडूशाह, भामाशाह जैसे साढ़े–चौहत्तर हजार शाह जैन समाज में प्रसिद्ध है। जिनके चरित्रों का आर्थिक पक्ष अत्यन्त उज्ज्वल व प्रेरक रहा है।

I UnHk

1. नेमीचन्द (डॉ.) शाकाहार मानव सम्म्यता की सुबह, पृ. 61
2. ठाणांग, 5/71, उपाध्याय अमर मुनि की मुस्तक 'अहिंसा दर्शन' के 24, 25 व 26 वें अध्याय।
3. बृहत्कल्पभाष्य 1.297, 338 एवं 4.489
4. बृहत्कल्पभाष्य 2.1089, 1092
5. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज़ डेपिक्टेड इन जैन कैनोनिकल
6. आचारांग सूत्र 2/10/300–301
7. आत्माराम, आचार्य, श्री उपासकदशांग सूत्रम् (1/35) पृ. 102
8. बृहत्कल्पभाष्य 2.3301
9. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 123
10. आचारांग सूत्र 2/1/8.45, व्याख्याप्रज्ञप्ति 7/3/5 एवं प्रज्ञापना 1/23.31
11. जैन जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.125
12. सूत्रकृतांग 6.18, प्रज्ञापना 1.23, उत्तराध्ययन 19.52
13. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–127
14. ज्ञाताधर्मकथांग 7/20
15. व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र 14/7/51
16. अनुयोगद्वार सूत्र 144, 132
17. ज्ञाताधर्मकथांग 7/6
18. रायप्पसेणीय सूत्र–82 एवं ज्ञाताधर्मकथांग 7/19
19. प्रश्नव्याकरण 1/17, 18 व 28
20. पिण्डनिर्युक्ति गाथा 118
21. अभयदेव (आचार्य) उपासकदशांग टीका पृ.–39
22. ठाणांग 4/576
23. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज़ डेपिक्टेड इन जैन कैनोनिकल लिटरेचर, पृ.–17
24. पउमचरिउं 10/35, 51
25. बृहत्कल्पभाष्य 2.1239
26. जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पृ.–49
27. आवश्यकचूर्णि भाग–2
28. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–128
29. जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पृ.–57–58
30. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति 2/22
31. आत्मारामजी (आचार्य) सम्पादित उपासकदशांग, पृ.–366
32. आत्मारामजी (आचार्य) सम्पादित उपासकदशांग, पृ.–78
33. बन्धे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाण विच्छेअ का निषेध। आवश्यक सूत्र, प्रथम अणुव्रत के अतिचार।
34. नन्दी सूत्र 74

35. ज्ञाताधर्मकथांग 1/66

36. ज्ञाताधर्मकथांग तीसरा अध्ययन

37. बृहत्कल्पभाष्य 1.2199, 4.5202

38. निशीथचूर्णि 2.1893

39. आवश्यकचूर्णि 1.270

40. नीतिवाक्यामृत 22/31

41. पिण्डनिर्युक्ति गाथा 83

42. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2.32/48

43. निशीथचूर्णि 3/3697

44. विपाकसूत्र 3/20

45. आयारवंत–चेइय–जवइ–विविह–सण्णिविट्ठबहुला ...... – औपपातिक सूत्र –2

46. अन्तकृतदशासूत्र 6/3/4

47. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–128

48. प्रज्ञापना 1/20, 23, 25

49. प्रज्ञापना 1/23, 25 एवं आचारांग सूत्र 2/1/8/266

50. बृहत्कल्पभाष्य 1.872

51. आचारांग सूत्र 2/1/8/44

52. श्रावक के 7वें व्रत में 15 कर्मादान

53. ज्ञाताधर्मकथांग 13वाँ अध्ययन

54. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज़ डेपिक्टेड इन जेन कैनोनिकल लिटरेचर पृ.–30–31

55. ज्ञाताधर्मकथांग 1/85

56. उत्तराध्ययन चूर्णि 1/26

57. आचारांग सूत्र 1/9/2/2

58. ज्ञाताधर्मकथांग 1/85

59. जैण धातु पाणिएणं तम्बगादि आस्तिं सुवण्णदि भवति सो रसो भण्णत्ति – निशीथ चूर्णि भाग 3, गाथा 4313

60. उत्तराध्ययन 36.73–74, सूत्रकृतांग 2, 3.61 प्रज्ञापना 1.17 एवं निशीथ–सूत्र 4.39

61. उत्तराध्ययन सूत्र 36/75 एवं उत्तराध्ययन सूत्र 36/76 व प्रज्ञापना 1/17

62. णदे णामं मणियार सेट्ठी – ज्ञाताधर्मकथांग 13/6

63. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–143

64. उपासकदशांग सूत्र 7/19

65. ज्ञाताधर्मकथांग 1/68

66. औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीय सूत्र, समवायांग सूत्र–72, कल्पसूत्र टीका

67. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिवृत्ति, वखस्कार 2, पत्र 139–2, 140–1 एवं देखें – 'ऋषभदेव एक परिशीलन'– देवेन्द्र मुनि शास्त्री, परिशिष्ट पृ–11

68. अमर मुनि, उप–प्रवर्तक सम्पादित आचारांग सूत्र 2/5/1/211, पृ.–311

69. ज्ञाताधर्मकथांग 1/107, भगवती 9/33/57

70. बृहत्कल्पभाष्य 3.2997

71. आवश्यक निर्युक्ति

72. बृहत्कल्पभाष्य 1.171

73. पिण्डनिर्युक्ति गाथा 605

74. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/23/40

75. आचारांग सूत्र 2/5/1/145

76. आचारांग सूत्र 2/5/1/215

77. प्रश्नव्याकरण 9/2

78. आचारांग 2/5/1/215

79. ज्ञाताधर्मकथांग 17/3

80. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–145

81. व्याख्याप्रज्ञप्ति 16/9/7

82. प्रश्नव्याकरण 3/5

83. जैकोबी, हर्मन, सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, भाग 45वाँ, पृ.–276

84. उपासकदशांग 1/34

85. उपासकदशांग सातवाँ अध्याय, 22

86. उपासकदशांग एवं अनुयोगद्वार सूत्र 132

87. निशीथ भाष्य 10.3228

88. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–147

89. बृहत्कल्पभाष्य, 3.2716

90. अनुयोगद्वार 1/66

91. राजप्रश्नीय सूत्र 42, प्रश्नव्याकरण 2/13

92. जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पृ.–93

93. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–153

94. निशीथ सूत्र 1/452

95. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया ... पृ.–55

96. सूत्रकृतांग 1/4/2, 248, 285, 286

97. दशवैकालिक सूत्र 3/8

98. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/12/30

99. बृहत्कल्पसूत्र 3.3

100. आचारांग सूत्र 2/5/3/146

101. ज्ञाताधर्मकथांग 8वाँ अध्ययन

102. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ.–155 एवं सूत्रकृतांग 4.2.7, निशीथसूत्र 9.21

103. प्रज्ञापना सूत्र 1.107

104.. उत्तराध्ययन 35/14, व्याख्या–प्रज्ञप्ति 5/6/5

105. ज्ञाताधर्मकथांग 15/6, उपासकदशांग 1/12

106. व्यवहार–सूत्र 9/19–20
107. ज्ञाताधर्मकथांग 1/138
108. निशीथचूर्णि 4.5750, 2.1191
109. निशीथचूर्णि 2.1735
110. जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पृ.–112 एवं सार्थवाह– डॉ. मोतीचन्द्र
111. ज्ञाताधर्मकथांग 15/6, 15/11
112. ज्ञाताधर्मकथांग 5/7
113. अनुत्तरोपपातिक 3/1/2
114. ज्ञाताधर्मकथांग 8वाँ अध्ययन
115. ज्ञाताधर्मकथांग 8वाँ अध्ययन
116. बृहत्कल्पसूत्र 1.50
117. जैन, जगदीश चन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय, पृ.–459 एवं प्रज्ञापना 1.66
118. प्रश्नव्याकरण सूत्र 5.17, बृहत्कल्प में सोलह स्थान ऐसे बताये गये है, जहाँ श्रमण या श्रमणी वर्षा ऋतु के अलावा अधिक समय नहीं ठहर सकती हैं। शेष आठ भी वाणिज्यिक महत्व के हैं।
119. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज डेपिक्टेड इन जैन कैनोनिकल लिटरेचर, पृ.– 81–82
120. निरयावलिका 1/2
121. ज्ञाताधर्मकथांग 8/47 व 9वाँ अध्ययन
122. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ.–67
123. सरकार, डी.सी. प्राचीन और मध्ययुग के भारत का भौगोलिक अध्ययन, पृ.–323
124. अवस्थी, ए.एल., प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ.–43
125. बोस, ए.एन. सोश्यल एंड रूरल इकोनोमी इन नार्दर्न इंडिया पृ.–213
126. आवश्यकचूर्णि 6/72
127. ज्ञाताधर्मकथांग 17/3
128. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.–466
129. जैन, जगदीशचन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज डेपिक्टेड इन जैन कैलोनिकल लिटरेचर पृ.–86
130. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन' पृ.–54
131. वाजपेयी, के.डी. उत्तरप्रदेश की ऐतिहासिक विभूति, पृ.6
132. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ.–73
133. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज़ डेपिक्टेड इन जैन कैनोनिकल लिटरेचर, पृ.–87
134. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज़ डेपिक्टेड इन जैन कैनोनिकल लिटरेचर, पृ.–87
135. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ.–74
136. मोतीचन्द (डॉ.) 'सार्थवाह' पृ.–103

137. जैन, दिनेन्द्र चन्द्र (डॉ.) इकोनोमिक लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज डेपिक्टेड इन जैन कैनोनिकल लिटरेचर, पृ.–89
138. ज्ञाताधर्मकथांग 5/2
139. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ.–65
140. सरकार, डी.सी., प्राचीन और मध्ययुग के भारत का भौगोलिक अध्ययन, पृ.–323
141. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन' अध्याय दूसरा व चौथा।
142. ज्ञाताधर्मकथांग, अष्टम् अध्ययन
143. जैन, कमल (डॉ.) प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पृ.–120
144. उत्तराध्ययन टीका, पृ.–144
145. भगवती सूत्र 2/5/96
146. बृहल्कल्पभाष्य 1/260
147. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/4/22
148. निशीथ सूत्र 42 – तं जहा– गंगा, जउणा, सरऊ, एरावई, मही।
149. सूत्रकृतांग 1/11, पिण्डनिर्युक्ति 42
150. उत्तराध्ययन सूत्र 21.2 एवं जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ.–173
151. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/28/45
152. भारद्वाज, एस.के. (डॉ.) का लेख 'प्राचीन भारत में विमान विद्या' जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ.–6
153. धर्मकथानुयोग में अर्थ–कथाएँ भी मिलती हैं अथवा उपयोगी आर्थिक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। उपाध्याय कन्हैयालाल 'कमल' ने चारों अनुयोगों पर ऐतिहासिक कार्य किया, जिसमें धर्मकथानुयोग भी है। कथा साहित्य पर डॉ. जगदीश चन्द्र 154. जैन की दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ तथा जैन कथा साहित्य विविध रूपों में, डॉ. प्रेम सुमन जैन की 'अहिंसा की कथाएँ', 'प्राकृत कथा साहित्य परिशीलन', उपाध्याय पुष्कर मुनि की 'जैन कथाएँ' (111 भाग) प्रवर्तक रमेश मुनि की 'प्रताप कथा कौमुदी' आदि पुस्तकें द्रष्टव्य।
154. शास्त्री, इन्द्रचन्द्र (डॉ.) उपासकदशांग सूत्र (व्याख्याकार–आचार्य–आत्मारामजी) में प्रस्तावना पृ.–13

prqFkZ v/;k;

tSu lkfgR; esa eSY;ijd vFkZ0;oLFkk vo/kkj.kk

ifjPNsn izFke

vfgalk dk vFkZ'kkL=

- शाकाहार एवं अर्थतन्त्र
- जल बचत एवं पर्यावरण
- मांस निर्यात एवं अर्थतंत्र

ifjPNsn f}rh;

v.kqozr dk vFkZ'kkL=

- अणुव्रत के नियम
- उपभोग–परिभोग व परिमाण व्रत
- पन्द्रह कर्मदान

ifjPNsn r`rh;

la;e dk vFkZ'kkL=

- आर्थिक संयम
- संयम के प्रकार
- असंयम के परिणाम

v/;k; prqFkZ

tSu lkfgR; esa eSY;ijd vFkZ0;oLFkk vo/kkj.kk

अहिंसा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव जाति का। इतिहास के क्षितिज के पार भी अहिंसा का वैभव बिखरा पड़ा है। प्राग–आर्य सभ्यता तो अहिंसा, सत्य और त्याग पर ही आधारित थी। यही तक उस संस्कृति में पले–बढ़े लोग अपने सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक हितों के संरक्षण के लिए भी युद्ध करना पसन्द नहीं करते थे। अहिंसा उनके जीवन व्यवहार का प्रमुख अंग थी। भौतिक विकास की दिशा में भी लोग प्रगति के शिखर पर थे। उनके आवास, ग्राम, नगर आदि बहुत सुव्यवस्थित थे। हाथी, घोड़ों की सवारी के अलावा उनके पास गमनागमन के यान भी थे। इतिहास के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यो के आगमन से पूर्व अहिंसा धर्म इस देश मे व्यापक था और राज–परिवारों द्वारा भी वह समावृत था। सम्भव तो यह भी है कि वह बहुत सारे भागों में राज धर्म भी था।[1] निःसन्देह अहिंसा अर्थशास्त्र सहित सारी व्यवस्थाओं की धुरी थी।

ifjPNsn izFke

vfgalk dk vFkZ'kkL=

प्राचीनतम ग्रंथ आचारांग सूत्र में अहिंसा को शाश्वत और नित्य बताया गया है।[2] आगम ग्रंथों में अहिंसा की अनेक परिभाषाएं और व्याख्याएं मिलती हैं। दशवैशकालिक सूत्र में प्राणी मात्र के प्रति संयम को अहिंसा कहा गया है।[3] यह भयभीत प्राणियों के लिये शरणभूत, पक्षियों के लिये आकाश में मुक्त विहार के सामन, प्यासों के लिये जल के समान, भूखों के लिये भोजन के समान, समुद्र के बीच डूबते हुओं के लिए जहाज के समान, पशुओं के लिये आश्रय स्थल के समान, रोगियों के लिये औषधि के समान और भयानक जंगल में सहयोगियो के समान है। इतना ही नहीं यह अहिंसा अत्यन्त विशिष्ट है। यह त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का कुशल–मंगल करने वाली है।[4] आचार्य शिवार्य कहते हैं कि अहिंसा सब आश्रमों का हृदय है तथा सभी शास्त्रों का गर्भ (उत्पत्ति स्थान) है।[5] यहां आश्रम शब्द बड़ा ही अर्थपूर्ण है। इसके अन्तर्गत वाणिज्य और

उद्योग सहित श्रमाधारित व श्रम की प्रतिष्ठित करने वाले सभी निकायों को समविष्ट किया जा सकता है। सभी प्रकार के उपक्रमों में पराक्रम (श्रम) और पराक्रम के साथ अहिंसा का विवेक, आश्रम से प्रतिध्वनित होता है। शिवार्य अहिंसा को भी सभी शास्त्रों का उत्पत्ति स्थान भी मानते हैं, निश्चित ही उसमें अर्थशास्त्र व समाज शास्त्र भी समविष्ट है।

आगमकारों ने प्रश्नव्याकरणसूत्र[6] में अहिंसा के साठ नाम देकर उसकी व्यापकता और महिमा को कई गुणा बढ़ा दिया। अहिंसा का प्रत्येक नाम (रूप), जीव, जीवन और जगत के मंगल का हेतु है। कुछ नाम अर्थशास्त्रीय दृष्टि से काफी मूल्यवान हैं। जैसे– व्यवसाय (44 वां नाम), समृद्धि (19 वां नाम), ऋद्धि, वृद्धि, विश्वास, शांति (विश्वशांति), तृप्ति, बुद्धि, धृति, पुष्टि, उत्सव, अप्रमाद आदि। अहिंसा हमारे आस–पास सदैव विद्यमान रहती है। आवश्यकता है उसके अहसास और समादर की। अहिंसा का जितना अहसास और समादर किया जाएगा, उसका विकास होगा। अहिंसा का विकास व्यवस्थाओं के विकास से जुड़ा है। अहिंसा के अर्थशास्त्र में संयम और किफायत का शीर्षस्थ स्थान है, जबकि हिंसा की जमीन पर खड़े अर्थशास्त्र में तृष्णा, संग्रह और असंयम की भरपूर छूट है।

’kkdkgkj vkSj vFkZra=

शाकाहार मानव सभ्यता और संस्कृति का अरूणोदय है तो अर्थशास्त्र का उषाकाल है। ऋषभदेव ने जनता को कृषि संबधी ज्ञान देकर शाकाहारिता को व्यवस्थित रूप से स्थापित किया। 22वें तीर्थंकर भगवान नेमीनाथ, जिन्हें कुछ विद्वानों द्वारा ऐतिहासिक तीर्थंकर माना जाने लगा है।[7] अपने विवाह के अवसर पर समस्त प्रजाजनों को पशुवध और माँसाहार का विरोध करते है और विद्रोह स्वरूप बिना विवाह किये लौट जाते हैं।[8] 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ कर्मकाण्डी हिंसा को नाजायज ठहराकर अहिंसा व समतामय समाज की स्थापना करते हैं। 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर माँसाहार और पशुवध को नरक का कारण बताते हैं।[9] सचमुच माँसाहार और पशुवध की वजह से धरती पर नारकीय स्थितियां बढ़ती जा रही हैं। आगम सूत्रों से प्रवर्तित और समर्थित

शाकाहार के कितने अर्थशास्त्रीय आयाम हमारे समक्ष हैं, उनकी चर्चा हम यहाँ पर कर रहे हैं।

अनेक वैज्ञानिक शोधों और प्रयोगों से अब यह दिन की रोशनी की तरह स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य मूलतः शाकाहारी प्राणी है। जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के नृेतत्वशास्त्री डॉ. एलनवॉकर का कथन है कि मानव के पूर्वज मांसभक्षी नहीं थे। वे सर्वभक्षी भी नहीं थे। वे फलहारी/शाकाहारी थे। उन्होंने मनुष्य की दन्त रचना का 1 करोड़ 20 लाख वर्षों के काल–पटल पर विस्तृत वे गहन अन्वेषण किया और निष्कर्ष दिया कि मानव 12 लाख वर्ष ईसा पूर्व तक शाकाहारी था। करीब 12 हजार वर्ष पूर्व नव–पाषाण युग की क्रांति ने उसे गाँव, खेत, बीज, हल, खलिहान आदि से परिचित करवाया, तद्‌नुसार वह सुव्यवस्थित व सुविकसित शाकाहारी बना।[10]

t y cpr vkj 'kkdkgkj

आज शाकाहर न सिर्फ मात्र आहार, अपितु एक सम्पूर्ण सुविकसित जीवन शैली बन चुका है। शाकाहार मितव्ययता का अर्थशास्त्र है। संसार में जल संकट का सबसे बड़ा कारण माँसाहार है। एक पौण्ड (1 पौण्ड=0.453592 कि.ग्रा.) माँसाहार के उत्पादन में औसतन 2500 गैलन (1 गैलन = 3.788 लीटर) पानी लगता है। इतने जल से पूरे एक परिवार का महीने भर का काम चल जाता है जबकि एक पौण्ड गेहूँ के उत्पादन में केवल 25 गैलन पानी लगता है। अमेरिका में एक माँसाहारी के दिनभर के आहार उत्पादन में 4000 गैलन से अधिक जल लगता है, एक अण्डाहारी व्यक्ति के आहार पर 1200 गैलन और एक शुद्ध शाकाहारी के आहार पर सिर्फ 300 गैलन जल खर्च होता है। यह हैरानी की बात है कि जितने जल से एक शाकाहारी पूरे वर्ष काम चला लेता है, माँसाहारी उस जल का उपभोग केवल एक महीने में कर लेता है।[11]

कृषि और माँस उत्पादन में लगने वाले जल की तुलना भी चौकाने वाली है। एक पौण्ड गेहूँ के उत्पादन में जितना जल लगता है, उससे 100 गुना अधिक जल एक पौण्ड माँस के उत्पादन में लगता है। माँस के उत्पादन में जितना पानी लगता है, धान्य (चावल) के उत्पादन उसका 10वां भाग ही लगता है।[12] पानी हर प्रकार के शाकाहार में

माँसाहार की तुलना में कई गुना कम लगता है। इस सम्बन्ध में अमेरिका के कैलीफोर्निया उत्पाद संस्थान के आँकड़े प्रस्तुत किये जा रहे हैं:—

,d fdyks mRiknu	ifryhVj ty [kir
टमाटर	00090
आलू	00092
गेहूँ	00100
गाजर	00125
सेव	00190
संतरा	00240
अंगूर	00280
दूध	00520
अण्डे	02000
चूजे	03200
सुअर माँस	04800
पशु माँस	10000

कत्लखाने भी अनाप—शनाप जल खपत के अड्डे हैं। देश में अधिकृत कत्लखानों की संख्या 4000 से अधिक है वहीं अनाधिकृत करीब 2 लाख। अर्थशास्त्री प्रो. एन.एस. रामास्वामी के अनुसार मुम्बई स्थित देवनार कत्लखाना प्रतिवर्ष 44,58,000 करोड़ लीटर पेयजल का उपभोग करता है।[13] संपूर्ण विश्व में माँस का उत्पादन 233 मिलियन टन था। 2020 में वही 300 मिलियन टन होने की संभावना है। इससे कत्लखानों में होने

वाली जल–खपत का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। कत्लखानों को बन्द, कम या नियंत्रित करके धरती पर अपरिमित पेयजल की बचत की जा सकती है।

'kkdkgkj % de tehu ij vf/kd mRiknu

अमेरिका के कृषि विज्ञानी सी.डब्लू फॉवर्ड ने शाकाहार व मॉंसाहार के उत्पादन में लगने वाली जमीन के जो आंकड़े[14] दिये हैं वे भी अर्थशास्त्रीय दृष्टि में अवलोकनीय हैं।

tehu ,d ,dM	otu ik.M e
गोमाँस	182.25
बकरे का गोश्त	228.00
गेहूँ	1680.00
जौ	1800.00
फलियाँ	1800.00
जई / जौ	2300.00
मक्का	3120.00
चावल	4565.00
आलू	20160.00

जितनी जमीन पर उत्पादित चावल से 75 आदमियों का पेट भरना संभव है, उतनी जमीन पर उत्पादित गोमाँस से 1 आदमी का पेट भर पाता है।

'kkdkgkj ;kfu vUu cpr

यह तथ्य बहुत ही कम लोग जानते हे कि माँस उत्पादन अन्न उत्पादन की तुलना में अत्यन्त महंगा है। इस संबंध में यहा पर आंकडे दिये जा रहे हैं।[15]

एक पौण्ड माँस उत्पादन पर अनाज की खपत निम्नानुसार है–

ek| l	ik.M
गोमाँस	16
सूअर माँस	06
टर्की	04
चूजे	03
अण्डे	03

डॉ. नेमीचन्द बताते हैं कि एक पौण्ड माँस पैदा करने के लिए 26 पौण्ड अनाज खर्च होता है। इस प्रकार एक माँसाहारी की खुराक बचाकर कम से कम 20 शाकाहारियों का पेट आसानी से भरा जा सकता है। यदि सिर्फ अमेरिका अपने माँसाहार में 10 प्रतिशत की कमी कर ले तो छः करोड़ लोगों का पेट आसानी से भरा जा सकता है। केन्द्रीय मंत्री श्रीमती मेनका गाँधी का कहना है कि यदि भारत की माँस की खपत 20 प्रतिशत घटा दे तो 6 करोड़ टन अनाज बचेगा, जो 30 करोड़ लोगों का पेट भरने के लिए पर्याप्त होगा। दुनिया के अर्थशास्त्री भी यह स्वीकारने लगे है कि संसाधनों की बचत और धरती की खुशहाली के लिए शाकाहार वरदान साबित हो सकता है। शाकाहार के प्रसार से आर्थिक और पर्यावरणीय क्षति को रोका जा सकता है। अर्थशास्त्री डॉ. भरत झुनझुनवाला के अनुसार अमेरिका सौ एकड़ भूमि में मक्का उगाता है और उसे गाय को खिलाता है फिर गाय को मारकर उसका मांस 10 लोगों को खिलाता है। हम उसी 100 एकड़ भूमि में चावल/गेहूँ उगाते हैं तो 100 मनुष्यों का पेट भरता है। भूसा गाय को खिलाया जाता है और उसका दूध मनुष्य पीते हैं। विश्व के समक्ष विकल्प यह है कि वह दस माँसभक्षी मनुष्यों को पाले या सौ शाकाहारियों को, बेशक सौ शाकाहारी ही उत्तम होंगे। आर्थिक उत्पादन भी सौ मनुष्यों से अधिक हो सकेगा, चूंकि दो सौ हाथों से उत्पादन हो सकेगा।[16] जानवरों से हासिल प्रोटीन वाला खाना (माँस, मछली, अण्डे आदि) कार्बोहाइड्रेट वाले खाने (अनाज, सब्जियाँ आदि) से

सामान्यतः सात गुना मँहगा होता है, क्योंकि एक किलो प्रोटीन प्राप्त करने के लिए जानवर को सात किलो अनाज खिलाना पड़ता है। माँसाहारी भोजन के पीछे प्राकृतिक संसाधनों के बहुत अधिक खर्च के कारण गरीब वर्गों के लिए मूल खाद्यान्न की कमी आती है, क्योंकि माँसाहारी प्रोटीन के लिए जानवरों को यही मूल खाद्यान्न दिये जाते हैं। साथ ही खेती की जमीन के बदले चारागाह छोड़ना होता है।[17] पर्यावरण प्रदूषण, भूखमरी और खाद्यान्न की कमी का एक प्रमुख कारण माँसाहार है।

dRy[kkus vkSj vFkZrU=

अहिंसा की नींव पर खड़े अर्थतंत्र के कम से कम सात आधारभूत तत्व हैं–1. जीवन के प्रति सम्मान 2. शोषण मुक्त जीवन शैली, 3. सह–अस्तित्व में घनीभूत आवश्यकता, 4. परस्पर सहयोग का संकल्प, 5. व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में सादगी का अनुसरण, 6. अपव्यय पर अंकुश 7. गुणवत्ता पर सावधान नजरें।[18] आगमों के पृष्ठ–पृष्ठ पर इन मूल्यो का जीवन निरूपण हुआ है। आचारांग[19] में कहा गया– सभी प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है तथा सभी प्राणी जीना चाहते हैं। सुख सबको प्रिय है और वध अप्रिय, इसीलिए कभी किसी प्राणी की हिंसा नहीं करना चाहिये। जीवन के प्रति सम्मान की भावना को गहराई प्रदान करते हुए कहा गया है कि जीव वध अपना ही वध है और जीव दया अपनी ही दया है।[20]

जहाँ जीव वध का निषेध है, वहां जीवन के प्रति सम्मान के साथ–साथ सह अस्तित्वपूर्ण, शोषणमुक्त, संयमित व श्रेष्ठ व्यवस्था आकार लेती है। आगम साहित्य में उन सब काम धंधों का स्पष्ट निषेध है, जो पशु–पक्षियों के वध से जुड़े हैं। पशु–पक्षियों का कत्ल देश के अर्थतंत्र का कत्ल है। कत्लखानों ने अत्यन्त भयानक, रोद्र और महाहिंसा के अड्डों का रूप ले लिया है। कत्लखानों ने सामाजिकता, मानवीयता, संस्कृति और पर्यावरण को करारी शिकस्त दी है। भारत में केरल राज्य में सर्वाधिक कत्लखाने हैं, आत्महत्या की सर्वाधिक दर भी केरल में है। जिस पावन धरा पर जहाँ एक ओर पशु–पक्षियों को परिवार के सदस्यों की तरह पाला पोसा जाता था, वहीं अब इन मूक भोले–भाले निरीह प्राणियों के साथ बेजान/निर्जीव वस्तु की तरह सलूक किया जाने लगा है। क्षणिक लोभ–लालच में किये जाने वाले खूनी धंधों से अर्थ के साथ जुड़ने

वाले नीति, व्यवस्थाओ और शास्त्र जैसे शब्द लज्जित हो गये। अर्थतन्त्र मानव, मानवता और दुनिया के लिये अनर्थ का तंत्र हो गया।

तीर्थंकर महावीर के प्रमुख उपासक आनंद आदि के पास प्रचुर पशुधन था। पशुधन गाँव को अत्मनिर्भर और गरीब को अमीर बनाकर अर्थव्यवस्था को सदियों से गति देता रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत के पशुधन का बाजार मूल्य 80000 हजार करोड़ रूपये है। ये पशु वर्ष में 8 करोड़ टन दूध देते हैं तथा इनसे दो अरब टन गोबर मिलता है। देश में 19 करोड़ 40 लाख गाय–बैल और 7 करोड़ भैंसे हैं जो 4 करोड़ अश्व शक्ति के बराबर ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। यह ऊर्जा परिवहन में काम आती है। देश में जितनी ऊर्जा प्रयुक्त है उसकी दो तिहाई ऊर्जा पशु जनित है। हिसाब लगाया गया है कि यदि हम कृषि क्षेत्र से पशु बल को हटाना चाहें तो भारत को पेट्रोल पर प्रतिवर्ष 64 हजार करोड़ रूपये अतिरिक्त खर्च करने पड़ेंगे। माँस के लिए पशुओं को कत्लखानों के हवाले करना न तो अहिंसा के अर्थशास्त्र की परिधि के अन्तर्गत है और न ही किसी भी प्रकार के नीतिशास्त्र के अनुरूप यह कृत्य है।

noukj dRy[kkuk

मुम्बई स्थित देवनार कत्लखाना एशिया का सबसे बड़ा कत्लखाना माना जाता है। उसमें प्रतिवर्ष करीब 1 लाख 20 हजार बैल, 80 हजार भैंसे तथा 25 लाख

भेड़–बकरियों का वध किया जाता है। करीब डेढ़ हजार कर्मचारी इस बर्बर कार्य को अंजाम देते हैं। बताया जाता है कि इससे 4 करोड़ रूपयों की आमदनी होती है। इसके विपरीत करीब 200 करोड़ रूपयों की सम्पत्ति नष्ट होती है और गाँवों में लगभग 1 लाख लोग हर साल बेरोजगार हो जाते हैं।[21] भारतीय भेड़ों को यदि माँस के लिये मारने की बजाय, उनकी ठीक तरह से देखभाल की जाये तो उनसे प्रतिवर्ष 450 करोड़ रूपये मूल्य का खाद, 40 करोड़ रूपये का ऊन और 500 करोड़ रूपये मूल्य का दूध प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु माँस की खातिर उनको मारकर 27 करोड़ रूपये मूल्य का ऊन विदेशों से मंगवाते हैं और हजारों बुनकरों की रोजी–रोटी छीनते हैं।[22] एक अनुमान के अनुसार हमारा पशुधन हमें प्रतिवर्ष 34000 करोड़ रूपये का आर्थिक लाभ देता है, जिसमें 6000 करोड़ रूपये का दूध, 5000 करोड़ रूपये की भारवाहन शक्ति, 3000 करोड़ रूपये की खाद और 20000 करोड़ की गैस सम्मिलित है।[23] यह तथ्य है कि बेतहाशा बढ़ते वाहनों की संख्या से आर्थिक और पर्यावरण की भारी क्षति हो रही है। पर्यावरणविद् भी पशु–वाहनों की वकालत करने लगे हैं।

dRy[kkus vkSj i;kZoj.k

पशु पक्षियों के कत्ल के साथ–साथ सृष्टि में बहुत सारी चीजें कत्ल हो कर खत्म हो जाती हैं। बहुत सारी चीजों का स्वरूप नकारात्मक हो जाता है। इसीलिए भगवान महावीर द्वारा प्राणी वध को चण्ड, रौद्र, क्षुद्र, अनार्थ, करूणारहित, नृशंस और महाभयंकर कहना सौ टका सही है।[24] संपूर्ण मानव जाति को वे परम पावन और प्रेरक संदेश देते हैं– जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है।[25] प्रकृति और पर्यावरण के विनाश में हिंसा और असंयम की प्रमुख भूमिका है। मांसाहार और कत्लखानों ने तो विश्व–पर्यावरण पर गजब ढ़ाया है।

हमारे देश की टिकाऊ कृषि प्रणाली का रहस्य यही है कि इसमें खेती और पशुपालन को एक दूसरे से जोड़कर रखा गया है। जैव पदार्थों को एक ऐसे रूप में बदलने में, जिसका इस्तेमाल पौधे आसानी से कर ले, पशुओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। स्वतंत्र भारत के प्रथम कृषि मंत्री के.एम. मुंशी के अनुसार 'मवेशी प्रकृति के सबसे बड़े भूमि उपचारक हैं। वे मिट्टी को उर्वर बनाने वाले अभिकर्ता हैं। वे गोबर

के रूप में वह जैव सामग्री उपलब्ध कराते हैं, जो तनिक से परिष्कार के बाद बहुमूल्य पोषक तत्व में तब्दील हो जाती है। भारत में परम्परा, धार्मिक भावना और आर्थिक जरूरतों ने मिलकर मवेशियों की इतनी बड़ी आबादी खड़ी की है कि वह जीवन चक्र को हमेशा गतिशील बनाए रखने में सक्षम है, बशर्ते हम इस तथ्य को जान पाएं।[26] कत्लखाने भूमि के उपजाऊपन को नष्ट करते हैं। मौत की इस अर्थव्यवस्था ने जैव विविधता संरक्षण को भारी क्षति पहुंचाई है। भारत की 30 प्रतिशत स्तनपायी पशु–प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। कत्लखानों से निकलने वाला मलबा भी पर्यावरण को दूषित करता है। वह अस्वच्छता बढ़ाता है। कोई भी व्यक्ति शाकाहारी हुए बिना पर्यावरण रक्षक नहीं हो सकता। जो जमीन, हवा, पानी और गरीब की रोजी–रोटी बनाने की कोशिश कर सके। शाकाहारी बनने का अर्थ सभी के लिए पर्याप्त व सस्ता भोजन, ज्यादा जंगल, स्थायी बारिश, बेहतर भू–जल स्तर, स्वच्छ नदियाँ आदि होगा।

जंगलों को नहीं, जंगलीपने को खत्म करो।
पशुओं को नहीं, पशुता को खत्म करो।
अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने वालों,
जीवनदायी पर्यावरण पर अब नहीं सितम करो।[27]

dRy[kkus vkj HkdEi

यह आगमिक तथ्य है कि जहाँ तीर्थंकर होते हैं अथवा विचरण करते हैं, वहाँ कोई उपद्रव नहीं होता। यदि कहीं कोई उपद्रव होता है तो शान्त, समाप्त हो जाता है। तीर्थंकर अहिंसा साधन और आध्यात्मिक शांति के सघन पुंज होते हैं। करूणा उनके अणु–अणु में होती है, इसीलिए वे सबके कल्याण के लिए उपदेश प्रदान करते हैं।[28] तीर्थंकर के पंच कल्याणकों के समय लोक (सृष्टि) सकारात्मक तरंगों से रोमांचित हो जाती हैं। फलस्वरूप नरक में प्रतिपल दारूण कष्ट झेल रहे जीव भी क्षण भर के लिए सुखानुभूति करते हैं।[29]

जिस प्रकार करूणा की तरंगों का असर अच्छा होता है, उसी प्रकार कराह, चीख और पीड़ा से उपजी तरंगों का असर भी होता है और वह बुरा होता है। कत्लखाने सघन और मारक पीड़ा तरंगे उत्सर्जित करते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के

वैज्ञानिक डॉ. मदनमोहन बजाज ने अपने शोध पत्र में इन तरंगों का वैज्ञानिक अध्ययन करके यह सिद्ध किया है कि भूकम्प, सुनामी और अन्य प्रकार की आपदाओं की प्रमुख वजह हिंसा, हत्या और कत्लखाने हैं।[30] भौतिकी का क्रिया–प्रतिक्रिया सिद्धान्त भी इस बात को सिद्ध करता है। प्राणियों के वध से उत्पन्न ये तरंगें निरंतर संघनित होती रहती हैं। जब इन तरंगों की ऊर्जा विस्फोटक बिंदु पर पहुँच जाती है, तब धरती कांपती है जिसे भूकम्प कहा जाता है। भूकम्प और महामारियों से जन–धन की बेहिसाब बर्बादी होती है, जो लोग सतही बातें करते है, उन्हें अहिंसा के अर्थशास्त्र के दर्शन को समझना चाहिये।

यांत्रिक बूचड़खानों ने अर्थतंत्र को तार–तार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उसके अतृप्त रक्त रंजित पंजों से खूनी डॉलर प्राप्त करने के लिए माँस के निर्यात का लंबा–चौड़ा करोबार फैला दिया। जिस देश ने दुनिया को अहिंसा, सत्य और शांति जैसे मूल्य निर्यात किये हो, यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि वह अब अव्वल माँस निर्यातक बनना चाह रहा है। मांस निर्यात की कुनीति से देश की अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड ही हिल गया है। खेती बाड़ी पर निर्भर देश की तो तिहाई आबादी से उसका एकमात्र सहायक पशुधन छीना जा रहा है तथा उसे कत्ल कर विदेशों में भेजा जा रहा है। पशुधन की निरन्तर होती कमी से या बेरोजगारी बढ़ी है या लोगों के रोजगार के साधन वक्र और नकारात्मक ढंग से बदल गये है अथवा बदल देने पड़े हैं।

एक ओर देश में 32 करोड़ की आबादी भूख और कुपोषण की शिकार हो, दूसरी ओर निर्यात के लिए पशुओं का अंधाधुंध कत्ल देश के साथ क्रूर आर्थिक खिलवाड़ है। यांत्रिक बूचड़खानों से प्राप्त चमड़ा हड्डी आदि वस्तुएं बड़ी संख्या में कंपनियाँ खरीदती हैं, जबकि स्वाभाविक मौत से मरने वाले पशु की खाल, सींग, खुर आदि देश के गाँवों–कस्बों के लाखों लघु–कुटीर उद्योगों के आधार हैं। कत्लखानों की वजह से जनसंख्या और पशुसंख्या के अनुपात में भारी अन्तर पैदा हुआ है। इस अन्तर से अर्थव्यवस्था कई जटिल समस्याओं से घिर गई।

जो लोग गौ–संरक्षण के लिए कार्य कर रहे हैं, उन्हें गाय–बैल के साथ–साथ अन्य पशु–पक्षियों के संरक्षण पर भी ध्यान देना चाहिये। महात्मा गांधी ने उनकी आत्मकथा में ''गौ माता'' शब्द के साथ–साथ ''भैंस माता'' और ''बकरी माता'' शब्द का प्रयोग किया।[31] यह शब्द प्रयोग क्रांतिकारी और समाधानकारी है। गाय के दूध और दुग्ध उत्पादों का आर्थिक महत्व है। जिस प्रकार गाय के दूध, गोबर, मूत्र आदि पर अनुसंधान किये जा रहे हैं, उसी प्रकार भैंस, भेड़, बकरी आदि पर भी अनुसंधान किये जाये तो उपयोगी नतीजे मिल सकते हैं। गाय के साथ–साथ अन्य पशु–पक्षियों के संरक्षण से कृषि, ग्राम–तंत्र और ग्रामाधारित अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सकेगा। जिसकी आज आवश्यकता है।

मांसाहार से देश को जो नुकसान हुआ उससे अधिक बूचड़खानों से हुआ है। उससे अधिक यांत्रिक बूचड़खानों से और उससे भी अधिक नुकसान मांस निर्यात से हुआ। मांस निर्यात के चौकानें वाले आंकड़े यहाँ दर्शाये जा रहे हैं[32]–

वर्ष	माँस निर्यात (करोड़ रू. में)	चर्म निर्यात (करोड़ रू. में)
1951	1	28
1961	3	80
1971	56	390
1981	140	2600
1998	231	3128
2004	615	4000
2008	832	5117
2012	1036	7214

Figures in Rs. Crores

Year	Agro Products Export	Meat Product	As % of agro product
1995-96	7915	614	8
1996-97	7723	690	9
1997-98	7271	792	11
1998-99	9682	770	8
1999-2000	7365	797	11
2000-01	9213	1453	16
2001-02	10169	1177	12
2002-03	13828	1345	10

2003-04	14184	1647	12
2004-05	15270	1832	13
2005-06	16732	1956	13.5
2006-07	18840	2232	15
2007-08	20168	2564	16
2008-09	22649	2858	16.5
2009-10	24652	3102	17
2010-11	27756	5255	19.5
2011-12	29725	6230	20

ये आंकड़े साफ–साफ बयां करते हैं कि हम हिंसक अर्थतंत्र के जिस रास्ते पर चल रहे है, वहां मानवता, पर्यावरण और व्यापार–वाणिज्य सब कुछ तहस–नहस हो रहा है। उन्नतियों के बावजूद मानव अवनतियों की ओर बढ़ रहा है। पशु–पक्षियों की तरह मानवीय मूल्यों की अन्य प्रजातियाँ (विशिष्टताएँ) भी लुप्त हो गई प्रतीत होती है।

अहिंसा की प्रथम पहचान भाव–शुद्धि है।
अहिंसा का प्रकर्ष प्रतिमान अक्रूर बुद्धि है।
सहज खिल जाते शान्ति/समता के सुमन
अहिंसा का प्रधान परिणाम सर्व समृद्धि है।[33]

ifjPNn f}rh;

v.kqor dk vFk'kkL=

जैन धर्म में सद्गृहस्थ और सद्गृहिणी को श्रावक और श्राविका कहा गया है तथा चतुर्विध संघ के चार स्तम्भों में से दो स्तम्भ श्रावक और श्राविका के हैं। इस प्रकार संघीय व्यवस्था का आधा भार गृहस्थ वर्ग पर है। यदि व्यवस्था की दृष्टि से देखा जाए तो श्रमण वर्ग श्रमणीय मर्यादाओं में जीता है तथा उनकी संख्या भी थोड़ी होती है, इसलिए संघ का अधिकांश दायित्व श्रावक–श्राविकाओं पर ही। सामुदायिक प्रबंधकीय कौशल का अभ्यास और प्रयोग गृहस्थ संघीय व्यवस्थाओं में सहयोग करके करता है।

भगवान महावीर ने गृहस्थाचार के रूप में श्रावक के लिए बाहर व्रतों की व्यवस्था की है। इनमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत अलग–अलग नहीं होकर सात शिक्षाव्रत कहते हुए गुणव्रतों का उनमें समावेश कर लिया गया है।[34] बारह व्रतों में गुणव्रत और शिक्षाव्रत के नाम व क्रम को लेकर दिगम्बर, श्वेताम्बर परम्पराओं में मामूली अन्तर है। यह अन्तर नगण्य होने से इसकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है।

अणुव्रत यानि छोटे–छोटे व्रत। ये छोटे–छोटे व्रत व्यक्ति को बड़े से बड़ा बनाने में सक्षम है। छोटे–छोटे नियम आदमी को पूर्णता प्रदान करते है और पूर्णता कोई छोटी बात नहीं होती है। भगवान महावीर की संपूर्ण आचार व्यवस्था समझ और प्रज्ञा पर अवलम्बित है। इसीलिए वहां अनाग्रह तथा निर्णय की स्वतंत्रता विद्यमान है। आगम साहित्य में कहीं भी ऐसी भाषा नहीं है, जहां साधक को उसकी इच्छा के विपरीत साधना मार्ग पर अग्रसर होने के लिए कहा गया हो।

व्रत व्यवस्था में भगवान महावीर ने क्रमबद्ध और सूक्ष्म चिंतन दिया है। हिंसादि पाप तीन करण और तीन योग से होते हैं। तीन करण हैं–पाप स्वयं नहीं करना, पाप दूसरों से नहीं करवाना और पाप का अनुमोदन नहीं करना।[35] तीन योग हैं–मन, वचन, काया। इनके कुछ 49 भेद बनते हैं। श्रावक के लिए अधिकतर व्रत दो करण तीन योग से अनुपालनीय बताए गये हैं।[36] कुछ व्रत एक करण एक योग से अनुपालनीय हैं।[37] इन

व्रतों का आचरण समाज व देश के लिए योग्य नागरिक का निर्माण करना है। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से वह नागरिक सीमित संसाधनों का उपयोग करने वाला होता है। 'न्यूनतम लेना, अधिकतम देना और श्रेष्ठतम जीना' उसके जीवन का सूत्र होते हैं।

आगम–ग्रंथों में प्रत्येक व्रत के पाँच–पाँच अतिचार बताये गये हैं। ग्रंथों में व्रतों के निरतिचार पालन पर जोर दिया गया है। स्थानांगसूत्र[38] में व्रत के खंडन की चार कोटियां बताई गयी हैं–

1. अतिक्रम– व्रत की परिधि तोड़ने का मानसिक संकल्प
2. व्यतिक्रम– व्रतों को तोड़ने के लिए सामग्री जुटाना
3. अतिचार– व्रत का आंशिक रूप से खंडन
4. अनाचार– व्रत का भंग हो जाना

अतिचार तक जो दोष लगते है, वे नहीं लगे इसकी सावधानी रखनी चाहिये। अतिचार तक लगे दोषों से व्रत खंडित नहीं होता है। अनाचार से वह खंडित हो जाते हैं।

v.kqozr ds ckjg ozrksa dk vFkZ'kkL=h; v/;;u%&

1. vfgalk& अहिंसा प्रथम और प्रमुख अणुव्रत है। इस व्रत के अन्तर्गत श्रावक स्थूल हिंसा का त्याग करता है। इस व्रत का नाम 'स्थूल प्राणातिपात विरमण' है। श्रावक स्थूल प्राणातिपात के अन्तर्गत संकल्पर्वूक त्रस निरपराध प्राणियों की हिंसा का दो करण तीन योग से त्याग करता है। हिंसा के चार प्रकार बतताये गये हैं।[39] संकल्पजा, आरम्भजा, उद्योगिनी और विरोधिनी।

   ladYitk fgalk& अहिंसा व्रती इरादतन हिंसा का पूर्ण त्यागी होता है। इससे समाज में प्रतिशोध की भावना कभी नहीं पैदा होती है तथा तोड़–फोड़ और विनाश पर अंकुश लगता है। एक व्यक्ति इरादे से कोई अपराध करता है और एक व्यक्ति से भूलवश कोई पाप हो जाता है, धर्म और कानून दोनों दृष्टियों से इरादतन अपराध करने वाला अधिक सजा का भागी होता है।

vkjEHktk fgalk& जीवन व्यवहार में नहीं चाहते हुए भी आरम्भजा हिंसा होती है। श्रावक के लिए वह छूट योग्य होती है। पाप कम से कम हो, इसका विवेक श्रावक रखता है।

m|kfxuh fgalk% जीविकोपार्जन के लिए व्यवसाय और उद्योग संचालन में जो हिंसा होती है, उसका परित्याग व्रती के लिए संभव नहीं है, इसलिए वह छूट योग्य है। उदाहरण के तौर पर श्रावक खेती–बाड़ी करता है, उसमें त्रस जीवों की हिंसा भी हो जाती है। परन्तु, उसमें उन जीवों की हिंसा का इरादा नहीं है, इसलिए वह क्षम्य है।[40]

fojksf/kuh fgalk& श्रावक के लिए अनाक्रमण मुख्य बात है, लेकिन यदि कोई हमला करता है तो उसका प्रतिहार अवश्यभावी हो जाता है। आत्मरक्षा तथा परिवार, समाज और देश की रक्षा के लिए व्रती को शस्त्र भी उठाना पड़ सकता है। उससे उसका व्रत टूटता नहीं है। अन्याय और आक्रमणकारी के प्रति की गई हिंसा से गृहस्थ का अहिंसा व्रत खण्डित नहीं होता। निशीथचूर्णि में तो यहां तक कहा गया है कि ऐसी अवस्था में गृहस्थ तो क्या साधु का व्रत भी खण्डित नहीं होता है। इतना ही नहीं अन्याय का प्रतिहार नहीं करने वाले साधक को दण्ड का भागी भी बताया गया है।[41]

इस प्रकार श्रावक के अहिंसा अणुव्रत में अकारण अथवा बिना किसी को कष्ट दिये जीवन को सजाने संवारने के पूरे अवसर विद्यमान हैं। इस अणुव्रत के पांच अतिचार निम्न हैं[42]–

1. cU/k& आगम युग में पशुपालन मुख्य व्यवसाय था। जो पशु मानव के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन हो, उनकी समुचित देखभाल की जानी चाहिये। उन्हें कठोर बन्धन से बांधना, पिंजरों में कैद करना आदि अहिंसा व्रती के लिए अतिचार है।[43] अधीनस्थ कर्मचारियों को निश्चित समयावधि से अधिक समय तक रोक कर कार्य करवाने को भी बन्ध अतिचार के अन्तर्गत माना गया है।[44] इस अतिचार से श्रमिकों और दास–दासियों के शोषण के विरूद्ध माहौल बना। यदि उनके अधिक काम करवाना है तो

उन्हें अधिक पारिश्रमिक दिया जाये। वर्तमान के श्रम कानून में अधिसमय (ओवरटाईम) के प्रावधानों को इस अतिचार के सम्बन्ध में देखा जाना चाहिए।

2. c/k& इसके अन्तर्गत पीटना, ताड़ना देना, घातक प्रहार करना आदि को अतिचार बताया गया है। मवेशियों व पशुओं पर घातक प्रहार नहीं होना चाहिये।[45] वे हमारे मित्र की तरह होते हैं। उनके साथ करूणा और प्रेम का व्यवहार करना चाहिये। इसी प्रकार नौकरों और श्रमिकों के साथ भी पूर्ण मानवीय व्यवहार होना चाहिये। किसी की मजबूरी का अनुचित फायदा उठाना बध अत्याचार है।[46] भगवान महावीर ने इसका निषेध किया है।
3. NfoPNsn& इस अतिचार के अन्तर्गत पशु आदि के अंगोपांग काटना, उनका छेदन करना, खस्सीकरण करना आदि सम्मिलित हैं। इसका लाक्षणिक अर्थ होता है–वृत्तिच्छेद जिसका अत्यधिक आर्थिक मूल्य है। किसी की जीविका छीन लेना, जीविका में बाधा उत्पन्न करना, उचित पारिश्रमिक से कम देना छविच्छेद अतिचार हैं।[47]
4. vfrHkkj& मानवों और भारवाहक पशुओं पर अधिक भार नहीं डालना और क्षमता से अधिक काम नहीं करवाना इस अतिचार से बचने के लिए आवश्यक है।[48] माल ढ़ोने वाले श्रमिकों पर उनकी क्षमता से अधिक भार नहीं उठवान तथा नौकरों से शक्ति से अधिक कार्य नहीं करवाना चाहिये।[49] बालश्रम निषेध कानून, महिला श्रमिक कानून और कामकाजी गर्भवती महिलाओं के लिए विशेष कानूनी प्रावधानों का इस सम्बन्ध में विशेष महत्व है।
5. Hkkstu&ikuh dk fujks/k& इस अतिचार से बचने के लिए पालतू मूक पशुओं को समय पर चारा पानी देने का एवं नौकरों व दास–दासियों को समय पर भोजन और वेतन देने का निर्देश है।

अहिंसा अणुव्रत के जो अतिचार हैं, उनका वर्तमान में श्रम और सुरक्षा कानूनो ंकी दृष्टि से बहुत मूल्य है। श्रमिकों के शोषण के विरूद्ध जो आवाज आज उठाई जाती

है, श्रावकाचार में उसका प्रावधान ढाई हजार वर्ष पूर्व हो गया था। श्रावकाचार में तो मूक प्राणियों के हितों का भी बहुत ख्याल रखा गया है, जिसका वर्तमान में अभाव देखा जाता है। हालांकि, पशु–पक्षी क्रूरता निवारण अधिनियम में पशु पक्षियों पर होने वाली ज्यादतियों के निषेध के प्रावधान हैं।

2. lR;& इस व्रत के अन्तर्गत गृहस्थ जीवनभर के लिए दो करण तीन योग से स्थूल मृषावाद का त्याग करता है।[50] स्थूल मृषावाद के अन्तर्गत के सारे झूठ आ जाते हैं तो लोक निन्दनीय और राज–दण्डनीय हैं। श्रावक प्रतिक्रमण में पांच प्रकार के झूठ का त्याग करता है।[51]

   1. oj dU;k lEcU/kh& वर कन्या सम्बन्धी झूठ बोलकर तय किये गये रिश्ते दीर्घ समय तक नहीं टिक पाते हैं। इससे परिवार टूटता और समाज कमजोर होता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति और समाज के आर्थिक हितों पर कुठाराघात होता है।
   2. xkS&lac/kh lk'k| lac/kh& पशु मुख्य आर्थिक उत्पादन थे। इसलिए पशु संबंधी झूठ का निषेध का निषेध किया गया है। इसका लाक्षणिक अर्थ है कि व्यापारिक वस्तुओं और वाहनों के सम्बन्ध में झूठ नहीं बोला जाना चाहिये। जिससे व्यापार, व्यापारी और व्यापारिक वस्तुओं के प्रति लोक विश्वास बना रहे। अतिरंजित और झूठे विज्ञापनों से मृषावाद का दोष लगता है। ऐसे प्रलोभनों से निम्न व मध्यमवर्गीय परिवारों पर अनावश्यक आर्थिक भार पड़ता है।
   3. Hkwfe lEcU/kh& भूमि एक मँहगा सौदा होता है, इसीलिए आर्थिक जगत में भूमि में स्वामित्व और स्वत्व को लेकर बहुत साँच–झूठ ओर ठगाई होती है। भोले और निर्धन व्यक्ति उसमें फँस भी जाया करते हैं। व्यक्ति को भूमि सम्बन्धी झूठ नहीं बोलना चाहिये।
   4. /kjkgj lEcU/kh& लाटी संहिता में इसे न्यासापहार अतिचार माना है।[52] प्राचीन परम्परागत बैंकिग प्रणाली में मूल्यवान धरोहर के बदले में ऋण दिया जाता है। सद्गृहस्थ को निर्देश दिया गया है कि वह ऐसी अमानत को दबाने या परिवर्तित करने के लिए कभी झूठ का सहारा नहीं ले।

5. dV lk{kh& वाणिज्यिक गतिविधियों और न्याय प्रणाली में गवाही का महत्व होता है। झूठी गवाही और छद्म साक्ष्यों से आर्थिक जगत में बड़े–बड़े अपराध होते हैं। न्यायिक व्यवस्था भी उनके समक्ष दीन–हीन बन जाती है।

उपरोक्त स्थूल मिथ्या वचनों का त्याग करते हुए श्रावक को निम्न पाँच अतिचारों से बचना चाहिए[53]–

1. lg;k vH;k[;ku& बिना सोचे समझे किसी के लिए कुछ कह देना अतिचार है। कभी किसी के लिए एकाएक गलत बात मुँह से निकल जाती है, उससे भी दोष लगता है। लेकिन दुर्भावनापूर्वक किसी के लिए अनुचित कहने से अनाचार का दोष लगता है। वचनों की दरिद्रता से जीवन की सम्पन्नता घट जाती है।
2. jgL; vH;k[;ku& जीवन में गोपनीयता का अपना स्थान होता है। जिम्मेदार व्यक्ति को गोपनीयता की शपथ भी दिलाई जाती है। व्यवसाय में भी गोपनीयता का महत्व होता है। किसी की गोपनीय बात को प्रकट करने से उसकी प्रतिष्ठा पर आँच आती है और आर्थिक हितों को धक्का लगता है। कभी–कभी तो किसी बात का रहस्योद्‌घाटन या पटापेक्ष होने पर बवाल मच जाता है। इसीलिए समझदार व्यक्ति कभी किसी की अप्रकटनीय बात को प्रकट नहीं करता है।
3. e= Hksn& इस अतिचार का सम्बन्ध मुख्यतः दाम्पत्य और पारिवारिक जीवन संबंधी गोपनीय बातों के प्रकटीकरण से है। सद्‌गृहस्थ को चाहिये कि कैसी भी स्थिति में ऐसी बातें प्रकट नहीं करे जिससे किसी के मर्म को, हृदय को चोट पहुँचे अथवा वैसी बात से कलह उत्पन्न हो जाए।
4. e"kksin'k& मृषावाद के त्यागी को कभी किसी की गलत राय नहीं देनी चाहिए। पेशेवर जगत में सलाह का अत्यन्त महत्व है। गलत सलाह भ्रम और हानि उत्पन्न करती है।
5. dVy[kdj.k& आचार्य अभयदेव ने जाली दस्तावेज बनाने, झूठी मुद्राएँ बनाने और जाली हस्ताक्षर करने को कूटलेखकरण अतिचार माना है।[54] आर्थिक अपराध और भ्रष्टाचार को रोकने के लिए इस अतिचार के निषेध का

बहुत महत्व है। दुर्भावना से कार्य करने वाले के लिए अतिचार अनाचार बन जाता है।

व्यापार में विश्वास की परम्परा को स्थापित करने के लिए मृषावाद विरमण व्रत एक 'व्यापार मंत्र' की तरह है जिसका अनुपालन व्यापर और व्यापारी दोनों के लिए वरदान है।

3. vLr;& श्रावक प्रतिज्ञा करता है कि वह यावज्जीवन मन, वचन और कर्म से न तो स्थूल चोरी करेगा और न करवाएगा[55] प्रतिक्रमण सूत्र[56] पाँच प्रकार की स्थूल चोरियाँ बताई गई हैं–
    1. खान खनना यानि सेंध लगाकर वस्तुएँ ले जाना।
    2. गाँठ खोलकर या जेब काटकर चोरी करना।
    3. ताला तोड़कर या दूसरी चाबी से चोरी करना।
    4. दूसरों की पड़ी वस्तु को चोरी की नियत से ले लेना।
    5. जबरदस्ती किसी की वस्तु को अपने अधीन करना।

इस प्रकार की चोरियाँ लोक–निन्दनीय और राज–दण्डनीय होती है, इसलिए जो व्रत ग्रहण नहीं करता है उसके लिए भी पूर्ण वर्जनीय है। व्रत ग्रहणकर्ता अपने प्रतिज्ञासूत्र में अदत्तादान का त्याग करता है।[57] उसके लिए बिना दी हुई वस्तु को लेने का निषेध है। वह वस्तु सचित्त भी हो सकती है और अचित भी। प्रश्नव्याकरण सूत्र में अदत्तादान के चार प्रकार बताये गये है– स्वामीअदत्त, जीव अदत्त, देव अदत्त और अजीव अदत्त। इसका अर्थ है कि श्रावक किसी भी वस्तु को उसके धारक, प्रभारी या संबंधित अधिकृत व्यक्ति की अनुमति के बगैर प्राप्त नहीं करे। व्यवस्था और विश्वास को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि किसी की चीज को हड़पना, वेतन, किराया, ब्याज, पारिश्रमिक आदि में नियमों से परे जाकर दुर्भावना से फेरबदल करना तथा साहित्य संबंधी चोरियाँ भी श्रावक के लिए वर्जित है।[58]

अस्तेय व्रत के पाँच अतिचार बताये गये हें–[59]

1. Lrukgr& चोरी की वस्तु लेना, खरीदना और अपने घर में रखना स्तेनाहत है। चोरी करने वाले तो कम होते हैं, परन्तु चोरी की चीजें लेने वाले बहुत

लोग मिल जाते हैं, क्योंकि वे सस्ते दामों मे मिल जाती हैं। इससे चोरी को प्रोत्साहन मिलता है और बिना चोरी की सही वस्तुओं के व्यापार पर विपरीत प्रभाव होता है। कीमती वस्तुओं की चोरी करने वाले अनेक समूह भी कार्य करते है कितनी ही जगहों पर ऐसी चोरी के गिरोह पकड़े जाते हैं। चोरी की वस्तुएँ खरीदना कानूनी तौर पर भी अपराध है।

2. rLdj i;kx& चोरी तस्करी करने वालों को किसी भी रूप में सहयोग करना श्रावक के लिए निषिद्ध है। जो लोग चोरों, तस्करों आदि को वित्तीय या गैर वित्तीय किसी भी प्रकार की मदद करते है, वे समाज व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था में गम्भीर व्यवधान पैदा करते हैं।

3. fo:) jkT;kfrØe& राजकीय नियमों का उल्लंघन विरूद्ध राज्यातिक्रम अतिचार है। आचार्य अभयदेव के अनुसार राज्य की निषिद्ध सीमाओं का उल्लंघन भी विरूद्ध राज्यातिक्रम है।[60] सरकार द्वारा अन्तर्देशीय व्यापार और अन्तर्देशीय व्यापार के नियमन व नियंत्रण के लिए नियमों के विरूद्ध सीमा उल्लंघन पर प्रतिबंध लगाया जाता है। एक श्रावक के लिए यह विधान उसके व्रतों के अन्तर्गत ही हो जाता है। वह बल या भयपूर्वक नहीं, अपितु इच्छापूर्वक राजकीय नियमों के पालन की प्रतिज्ञा करता है।

4. dVrqyk dVeku& गलत माप–तौल इस अतिचार के अन्तर्गत आता है। सद्गृहस्थ यह संकल्प करता है कि वह जीवन, व्यवहार और व्यापार में सर्वत्र ईमानदारी का परिचय देते हुए अपनी प्रतिष्ठा और व्यापार की प्रामाणिकता कायम रखेगा। पता चला है कि आजकल इलेक्ट्रॉनिक तौल के कांटो में भी व्यक्ति कम तौल सेट कर देता है, जबकि ग्राहक उसे पूरा समझ कर ले आता है, उससे बचना चाहिये।

5. rRifr:id 0;ogkj& इस अतिचार के अन्तर्गत गृहस्थ को वस्तुओं में मिलावट नहीं करने का निर्देश किया गया है।[61] मिलावट वस्तुओं को बेचने से जन–स्वास्थ्य और सही व्यापार के साथ खिलवाड़ होता है। ऐसा व्यवहार श्रावक को नहीं करना चाहिये।

दूसरे और तीसरे व्रत के अतिचारों के निषेध को व्यवसाय के आदर्श नीति नियम निरूपित कर सकते हैं।

4. clãp;l & ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अन्तर्गत सद्गृहस्थ या सद्गृहिणी के द्वारा अपने जीवन साथी या जीवन संगिनी के प्रति पूर्ण निष्ठा व्यक्त की जाती है तथा अन्य समस्त स्त्रियों (पुरूषों के लिए) और पुरूषों (स्त्रियों के लिए) के प्रति विकार मुक्त संबंध का सत्संकल्प किया जाता है। यह व्रत सदाचार और सामाजियकता की नींव है। जिस समाज और राष्ट्र का चरित्र ओर चारित्र उज्ज्वल होता है, वह यशस्वी, अजेय और सम्पन्न होता है। बलवान, समर्थ और धनवान नागरिकों का वहां वास होता है। भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य पर बहुत बल दिया। उसकी परम्परा के सद्गृहस्थ आज भी ब्रह्मचर्य का पालन का आदर्श उपस्थित करते है। वहाँ अपने जीवन साथी के प्रति भी अधिकाधिक विकार मुक्त रह कर जीवन की रचनात्मकता को बहुगणित किया जाता है।

उपासकदशांग[62] में आनन्द श्रावक भगवान महावीर से संकल्प करता है, मैं स्वपत्नी सन्तोषव्रत ग्रहण करता हूँ, मेरी शिवानन्दा नामक पत्नी के अतिरिक्त सभी प्रकार के मैथुन का त्याग करता हूँ। आवश्यकसूत्र के चौथे व्रत के अनुसार श्रावक देव–देवी संबंधी मैथुन का त्याग दो करण तीन योग ये तथा मनुष्य और तिर्यच संबंधी मैथुन का त्याग एक करण एक योग से करता है। सांसारिक जीवन की जिम्मेदारियों और व्यावहारिक कठिनाईयों को ध्यान में रखकर इस व्रत का विधान किया गया है। इस व्रत के पाँच अतिचार इस प्रकार है[63]–

1. bRoj ifjx`fgrkxeu– इस अतिचार के तीन अर्थ बताये गये हैं[64]– थोड़े समय के लिए रखी गई परस्त्री से समागम, वाग्दत्ता के साथ समागम और अल्पवयस्क के साथ समागम। वर्तमान संदर्भों में इस प्रकार के संबंधो को शारीरिक, सामाजिक और कानूनी दृष्टियों से भी वर्जनीय व हेय माना जाता है। ऐसे सम्बन्ध व्यक्ति को दरिद्रता की ओर ढकेलते हैं।
2. vifjx`fgrkxeu& इस अतिचार का अर्थ किसी भी प्रकार की पराई स्त्री या पर पुरूष के साथ समागम करने की ओर बढ़ा है। जिसका व्रत के द्वारा निषेध है। व्रत का मूल हेतु भी यही है। सप्त कुव्यसनो में दो व्यसन

वेश्यागमन और परस्त्री या परपुरूषगमन इस अतिचार से संबंधित हैं। अवैधानिक और असामाजिक संबंधों से जीवन संकटों से घिर जाता है।

3. vuxØhMk& स्वाभाविक रूप से काम सेवन की बजाय अप्राकृतिक तरीकों से कामक्रीड़ा करना अनंगक्रीड़ा अतिचार है।[65] समलैंगिक कामक्रीड़ाएँ भी इसी अतिचार के अन्तर्गत आती है। सद्गृहस्थ इनन पापों को पूर्णतः त्यागकर अपने जीवन को सजाता है।

4. ijfookgdj.k& गृहस्थ को चाहिये कि वह अपने परिवार के सदस्यों के विवाह के अतिरिक्त अन्य जनों के विवाह करवानें से बचे। कितने ही व्यक्तियों को दूसरे के लड़के–लड़कियों के रिश्ते जुड़वाने में दिलचस्पी होती है। आध्यात्मिक दृष्टि से वह ठीक नहीं है।

निरपेक्ष भाव और सहयोग भाव से इस संबंध में किसी की मदद करने का सामाजिक मूल्य है। वर्तमान समय में जहाँ सम्बन्ध जुडना कठिनतर हो रहा है, विलम्बित विवाह और अविवाह की स्थितियाँ समाज में पैदा हो रही हैं, वहाँ इस सहयोग का मूल्य और बढ़ जाता है। ब्रह्मचर्य व्रत का मुख्य लक्ष्य भोगासक्ति घटाना और समाज में सदाचार की स्थापना करना है। विवाह भी इन उच्चतर लक्ष्यों से जुड़ा है।

5. dke;kx dh rhoz bPNk& कामाग्नि से आकुल व्याकुल होकर व्यक्ति अपना विवेक ओर सुधबुध खो देता है। व्रती को कामोत्तेजना को बढ़ाने वाली औषधियों व मादक चीजों का सेवन नहीं करना चाहिये जो व्यक्ति कामभोग की तीव्र अभिलाषा से बचता है वह अपनी जीवन शक्ति दीर्घ जीविता और रचनात्मकता को बढ़ाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रावक के चौथे व्रत के अन्तर्गत सुन्दर समाज व्यवस्था, समर्थ सन्तति और चरित्रवान नागरिक निर्माण के सारे नियम मौजूद है। समाज की शांति और समृद्धि इस व्रत पर निर्भर करती है। लड़के का विवाह इक्कीस वर्ष से पूर्व और लड़की का विवाह अठारह वर्ष की उम्र से पूर्व बाल विवाह, बेमेल विवाह, वृद्ध विवाह का निषेध भी इस व्रत के अन्तर्गत हो जाता है। विधवा–विववाह और विधुर विवाह को भी प्रचलित समाजिक परम्परा तथा व्यक्ति विशेष की परिस्थितियों के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। व्रत का विधान स्त्री और पुरूष दोनों के लिए है,

इसीलिए प्रत्येक नियम, उपनियम को समानता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। ये सारी बातें व्यक्ति और समाज की आर्थिक बेहतरी से संबंधित हैं।

5- vifjxg& समाज और देश में आर्थिक समता की स्थापना और विषमता के निवारण में अपरिग्रह व्रत की युगान्तरी, निरापद और विकासोन्मुख है। श्रावक–सूत्र में इस व्रत का नाम परिग्रह परिमाण व्रत है। श्रावक एक करण तीन योग से परिग्रह की मर्यादा करता है। उपासकदशांग में इसका नाम इच्छापरिमाण व्रत है, जो अत्यन्त अर्थपूर्ण है।[66] इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।[67] उनके परिमाण से जीवन में और संसार में सुखों की सृष्टि होती है। तीन प्रकार के परिग्रह[68] कर्म, शरीर और बाहरी में से यहां मुख्यतः बाहरी परिग्रह पर विशेष विमर्श अभिप्रतत है। इच्छाओं के परिसीमन के लिए बाहरी परिग्रह का परिसीमन भी आवश्यक है। उपासकदशांग[69] में यह परिग्रह सात प्रकार का और आवश्यकसूत्र में यह नौ प्रकार का बताया गया है–

1- क्षेत्र – कृषि, आवासीय या वाणिज्यिक भूमि अथवा भूखण्ड।

2- वास्तु – मकान आदि अचल सम्पत्ति।

3- हिरण्य – चाँदी और चाँदी की मुद्राएँ व वस्तुएँ।

4- सुवर्ण – स्वर्ण और स्वर्ण की मुद्राएँ व वस्तुएँ[70]।

5- द्विपद– दास–दासी, नौकर–चाकर, कर्मचारी आदि।

6- चतुष्पद – पशुधन।

7- धन – समस्त चल सम्पत्ति, वाहन आदि।

8- धान्य – अनाज और खाने–पीने की वस्तुएँ।

9- कुप्य – घर गृहस्थी का अन्य सामान।

आजकल मध्य व उच्चवर्गीय परिवारों के घर अनेक प्रकार की अनावश्यक चीजों से भरे होते हैं। गृहस्थ को सभी प्रकार की वस्तुओं की मर्यादा करनी चाहिये। धरती पर मानव की उचित आवश्यकता पूर्ति के लिए तो संसाधन है, परन्तु इच्छा पूर्ति के लिए नहीं। उपासकदशांग के अनुसार इच्छा परिमाण व्रत के पंचातिचारों का वर्णन किया जा रहा है।

1. क्षेत्र और वास्तु के परिमाण का अतिक्रमण : श्रावक व्रत ग्रहण के द्वारा जितने भूमि और भवन की मर्यादा करता है, उससे अधिक रखने पर दोष लगता है।
2. हिरण्य सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण – श्रावक हिरण्य और सुवर्ण का परिमाण करे तथा निर्धारित परिमाण का उल्लंघन नहीं करे। उल्लंघन पर इस अतिचार का दोष लगेगा।
3. धन–धान्य का परिमाण उल्लंघन– इसमें व्रत ग्रहण के द्वारा जितने धन और धान्य की मर्यादा करता है उससे अधिक रखने पर अतिचार का दोष लगता है।
4. द्विपद चतुष्पद का परिमाण अतिक्रमण– इस अतिचार में भी मर्यादा से अधिक सेवक और पशु संपदा रखने को दोषपूर्ण बताया है।
5. कुप्य का परिमाण अतिक्रमण – परिग्रह का परिमाण करने वाला गृहस्थ घर की, व्यवसाय की सारी वस्तुओं की मर्यादा करता है। वैसी मर्यादा के उल्लंघन पर इस अतिचार का दोष लगता है।

इन अतिचारों के दोषों से बचने के लिए मर्यादा से अधिक संगह को सत्कार्यों मे लगाकर वत का निरतिचार पालन करना चाहिये, ये पांच अणुव्रत कहलाते हैं। आगे के सात व्रतों में गुणव्रत हैं और चार शिक्षाव्रत हैं। इसके पूर्व रात्रि भोजन त्याग पर विचार किया जा रहा है।

jkf= Hkkstu fu"ks/k

रात्रि भोजन त्याग भगवान महावीर की विशिष्ट और अनुपम देन है। आचार्य सुधर्मा भगवान महावीर की स्तुति में कहते हैं– 'से वारिया सराइ भतं'[71] श्रमणाचार में रात्रि भोजन त्याग को छठवें महाव्रत का दर्जा दिया गया है तथा श्रमण वर्ग के लिए रात्रि भोजन पूर्ण रूप से निषिद्ध बताया गया है।[72] श्रमण वर्ग रात्रि में जल सेवन भी नहीं करता है। सूर्यास्त होते होते भी कोई श्रमण भोजन त्याग करता है तो वह 'पापी श्रमण' कहलाता है।[73] महाव्रतों के अपवाद मिल सकते हैं, पर रात्रि भोजन त्याग का कोई अपवाद नहीं है। इससे रात्रि भोजन त्याग की विशिष्टतता और महत्ता का पता

चलता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने 11 प्रकार के संयमाचरण में रात्रि भोजन त्याग को समाविष्ट किया है।[74] श्रावकाचार में भी रात्रि भोजन त्याग को छठवें व्रत की संज्ञा दी गई है।[75] रात्रि भोजन त्याग का स्वास्थ्य के साथ भी गहरा संबंध है। रात को नहीं खाने वाला रात्रिजन्य भोज्य बीमारियों से बचा हुआ रहता है। इसका व्यक्ति के बजट और क्षमता पर अनुकूल प्रभाव होता है। जैन गृहस्थाचार में रात्रि भोजन त्याग एक विशिष्ट पहचान है। वह पहचान आज कम होती जा रही है। उसका सामाजिक जन–जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। वह इस रूप में कि पहले तो व्यक्तिगत तौर पर रात्रि भोजन होता था, अब सामूहिक रूप से रात को खाया और खिलाया जा रहा है। वह भी सामान्य रूप से नहीं, आडम्बर और वैभव प्रदर्शन के साथ। बड़े–बड़े रात्रि भोज किये जाते हैं। धनाढ्य वर्ग ऐसे रात्रि भोजो में कुछ घंटों में अनाप–शनाप पैसा पानी की तरह बहा देते हैं। निम्न मध्यमवर्गीय जनजीवन पर इस प्रकार के प्रदर्शनों का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। यदि इन भोजों को दिन में कर लिया जाए तो समाज का अपव्यय तो रूकेगा ही, समाज में अनावश्यक होड़ा–होड़ी में भी कमी आएगी। अनेक जैन गृहस्थ आज भी सामूहिक रात्रि भोजों का निषेध करके समाज में समता और समृद्धि का संदेश देते हैं। रात्रि भोजों का समाज और राष्ट्र पर विपरीत आर्थिक प्रभाव होता है। इस प्रभाव के आँकलन की आवश्यकता है।

x|.kor

गृहस्थ के बारह व्रतों के क्रम में भगवान महावीर ने पांच अणुव्रतों के बाद तीन गुणव्रतों की व्यवस्था की। दिशा, परिमाण, उपभोग, परिभोग, परिमाण और अनर्थदण्ड त्याग गुणव्रत और शिक्षाव्रत के नाम, क्रम और संख्या को लेकर आचार्यों और विद्वानों में मामूली मतभेद हैं। लेकिन उसकी चर्चा यहां पर आवश्यक नहीं है। गुणव्रत अणुव्रतों के परिपालन में सहायक बनते हैं। साथ ही गृहस्थाचार को अधिक उन्नत व परिपूर्ण बनाते हैं जैसे परकोटे नगर की रक्षा करते हैं, वैसे ही शील व्रत (गुण–शिक्षाव्रत) अणुव्रतों की रक्षा करते है।[76] आर्थिक दृष्टि से गुणव्रत अत्यन्त महत्वशाली हैं।

6. **fn'kk ifjek.k or ¼fnXor½&** उपासकदशांग में परिग्रह परिमाण की तरह इस व्रत को भी इच्छा परिमाण व्रत कहा गया है। आवश्यकसूत्र के छठवें व्रत

में श्रावक एक या दो करण तथा तीन योग ये ऊँची–नीची और तिरछी दिशाओं का यथा परिमाण करता है। श्रावक यह संकल्प करता है कि वह अमुक–अमुक दिशाओं में इतनी दूरी तक नहीं जाएगा।[77] जो गृहस्थ दो करण तीन योग से दिशा का परिमाण करता है वह दूसरों से भी दिशाओं का अतिक्रमण नहीं करवायेगा। दिशाओं को तीन भागों में बांटा गया है–

1. m/oZfn'kk& ऊपर की ओर जाने की मर्यादा करना जैसे पहाड़, वृक्ष, बहुमंजिले मकान आदि की अमुक ऊँचाई तक जाना। वर्तमान संदर्भों में अन्तरिक्ष यात्रा व उपग्रह प्रक्षेपण संबंधी आचार संहिताओं के संबंध में इस सीमाकरण का महत्व है।
2. v/kkfn'kk& खदान, समुद्र या धरती के निचले हिस्सो में अमुक गहराई तक जाने की मर्यादा करना। किस सीमा तक खदान खोदने से भूगर्भीय पर्यावरण पर नुकसान नहीं होगा, जल के लिए कितनी गहराई तक कूप या नलकूप (हैण्डपम्प और बोरिंग) खुदवाने से भूगर्भीय जल स्त्रोतों और पर्यावरण पर विपरीत असर नहीं होगा। ये प्रश्न आज बहुत प्रासंगिक हो गये हैं जिनके उत्तर दिग्व्रत में ढूंढे जा सकते हैं। झील, समुद्र आदि की अमर्यादित गहराईयों में मत्स्याखेट व जलीय वस्तुओं को पकडने से समुद्री पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर होने वाले दुष्प्रभावों का आंकलन भी दिग्व्रत की दृष्टि से किया जाना चाहिये। विशेषज्ञों का मत है कि बेहिसाब उत्खनन और अत्याधिक मत्स्याखेट भूकम्प की वजह बनते हैं, हालांकि जैन सूत्रों में मत्स्याखेट और हिंसक धंधों को पूरी तरह निन्दित माना गया है, लेकिन हिंसा का अल्पीकरण भी अहिंसा है, इस संदर्भ में सारी बातों पर विचार किया जाना चाहिये।
3. rh;Zd fn'kk& इसके अन्र्तत चारों मुख्य दिशाएँ– पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण तथा चारों विदिशाए– ईशान, आग्नेय, नैत्रृत्य और वायव्य समविष्ट हैं।[78]

    1. ऊँची दिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना।
    2. नीची दिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना।
    3. तिरछी दिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना।

4. दिशा के परिमाण का विस्मरण हो जाना।

5. एक दिशा के परिमाण को घटाकर दूसरी दिशा का परिमाण बढ़ाना।

दिग्व्रत धारण करने से मनुष्य की असीम लालसाएँ सीमित हो जाती हैं। यह व्रत संसार की अनेक आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक समस्याओं का समाधान करता है। घुसपैठ और प्रतिभा पलायनन की समस्या का समाधान इस व्रत की आचार संहिता में समाहित है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार गाँधीजी के स्वदेशी का मूल स्त्रोत दिशा परिमाण है। महात्मा गाँधी श्रीमद् राजचन्द्र की छत्रछाया में अहिंसा के सिद्धान्त को पल्लवित कर रहे थे। गाँधीजी पर उनका प्रभाव था, इसलिए भगवान महावीर के सूत्रों को अपनाना गाँधीजी के लिए स्वाभाविक था। भगवान महावीर की आचार संहिता से तीन नियम अविभूत होते हैं– विकेन्द्रित अर्थनीति, विकेन्द्रित उद्योग और स्वदेशी।[79]

उपनिवेशवादी मनोवृत्ति पर अंकुश लगाने में दिग्व्रत की महत्वपूर्ण भूमिका है। विश्व में लोकतंत्र के प्रसार के साथ भौगोलिक साम्राज्यवाद के विरूद्ध कुछ माहौल बना तो आर्थिक साम्राज्यवाद फैलता जा रहा है। क्रय–विक्रय, आयात–निर्यात आदि में मुक्त व्यापार प्रणाली और उदारीकरण से विश्व में आर्थिक उपनिवेश बढ़ रहे हैं। इसके अलावा हथियारों के वैध–अवैध व्यापार और आयात–निर्यात से संसार भय और हिंसा से आक्रान्त है। ऐसे विकट समय में दिशा–परिमाण व्रत दिशा सूचक यंत्र की तरह सबका दिशा बोध कर रहा है।

7- miHkksx&ifjHkksx ifjek.k ozr& सातवाँ व्रत गरीब की सम्पन्नता और सम्पन्न की संतुष्टि का अर्थशास्त्र है। भगवान महावीर ने व्यक्ति को संयमपूर्वक जीने की राह दिखाई। उस राह का बहुत सारा पाथेय इसी व्रत में उन्होंने प्रदान किया है। इस व्रत के अन्तर्गत उपभोग और परिभोग का सीमाकरण किया जाता है। उपभोग के अन्तर्गत उन वस्तुओं को लिया जाता है जिनका उपयोग एक बार ही किया जा सकता है, जैसे जल, भोजन, खाने–पीने की चीजें, श्रृंगार प्रसाधन सामग्री, एक उपयोग वस्तुएँ (Use and Throw Items) आदि। परिभोग के अन्तर्गत एक से अधिक बार उपयोग की जा सकने वाली वस्तुएँ आती हैं जैसे वस्त्र, वाहन और अन्य सारी वस्तुएँ।[80] आवश्यक

सूत्र के अनुसार उपभोग परिभोग की निम्न छब्बीस वस्तुओं का इस व्रत के अन्तर्गत परिमाण करना होता है–

1- mnnof.kdk fof/k& स्नान के पश्चात् शरीर पौंछने के काम आने वाले तौलिये की मर्यादा करना।

2- nUr/kkou fof/k& दाँतो को साफ करने के द्रव्यों की मर्यादा करना। वर्तमान में सच्चे–झूठे टूथपेस्टों और टूथब्रशों का अनाप शनाप विज्ञापन और लंबा–चौड़ा व्यापार फल–फूल रहा है। इसके बावजूद दन्त रोगो में बेहताशा वृद्धि हो रही है। यह विचारणीय है।

3- Qy fof/k& खाद्य फल, औषधीय फल और प्रसाधन के रूप में काम में लिये जाने फलों की मर्यादा करना।

4- vE;xu fof/k& मालिश के लिए काम में आने वाले तेलों की मात्रा और संख्या की मर्यादा करना।

5- m}ru fof/k& उबटन, पीठी आदि की मर्यादा निश्चित करना।

6- Luku fof/k& स्नान के लिए जल की मात्रा की मर्यादा करना। कुँए–बावड़ी, झील, सरोवर, नदी– निर्झर, स्वीमिंग पुल आदि में स्नान नहीं करना अथवा मर्यादा करना। स्नानादि से जल स्त्रोतों को प्रदूषित नहीं करना। जल संकट के दौर में इस नियम का बहुत महत्व है। जल के सीमित उपयोग का अभ्यास सबको करना चाहिए।

7- oL=fof/k& पहनने के वस्त्रों के प्रकार और संख्या की मार्यादा करना। अनेक व्यक्ति रेशम का त्याग करते हैं, अनेक सिर्फ खादी के वस्त्र ही पहनते हैं तो कितने ही व्यक्ति थोड़े से वस्त्रों में जीवन की लम्बी यात्रा तय कर लेते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के इस नियम के जीवन्त उदाहरण रहे हैं।

8- foyiu fof/k& शरीर पर लेप करने की वस्तुओ, क्रीम आदि की मर्यादा करना। हिंसक सौन्दर्य प्रसाधनों का त्याग इस नियम के अन्तर्गत आता है।

9- i"i fof/k& फूलों और फूल मालाओं की मर्यादा करना। फूलों की रक्षा के साथ तितलियों, भौरों और अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव जन्तुओं की रक्षा जुड़ी

है। इस प्रकार इसमें पर्यावरण पारिस्थितिकी और जैव विविधता का संरक्षण जुड़ा है।

10- vkHk"k.k fof/k& आभूषणों के प्रकार और संख्या की मर्यादा करना।

11-/ki fof/k& धूप, अगरबत्ती आदि की मर्यादा करना।

12-Hkk tu fof/k& भोज्य पदार्थों की मर्यादा करना।

13- vknu fof/k& चावलों के प्रकार एवं मात्रा की मर्यादा करना।

14- li fof/k& विभिन्न दालों व चीजों से बनने वाले सूपों की संख्या व मात्रा की मर्यादा करना।

15-fox; fof/k& दही, मक्खन, घी, तेल आदि की मर्यादा करना।

16- 'kkd fof/k& खाने की हरी सब्जियों की मात्रा और संख्या की मर्यादा करना।

17-Ekk/kdj fof/k& गुड़, शक्कर, सूखे मेवे आदि की मर्यादा करना।

18- teu fof/k& विभिन्न प्रकार के व्यंजनों की मर्यादा करना।

19- ikuh; fof/k& पीने के पानी के प्रकार और परिमाण की मर्यादा करना।

20-e[kokl fof/k& पान, पान मसाला, सौंफ, सुपारी, इलायची, लौग आदि की मर्यादा करना। तम्बाकु युक्त पदार्थों के त्याग को इसके अन्तर्गत लिया जा सकता है।

21-okgu fof/k& विभिन्न प्रकार के वाहनों की मर्यादा करना।

22-mikug fof/k& विभिन्न प्रकार के जूते, पगरखी, मौजे आदि की मर्यादा करना।

23- lfpr fof/k& विभिन्न प्रकार की संचित वस्तुओं की मर्यादा करना।

24- i; fof/k& पेय पदार्थों के प्रकार और मात्रा की मर्यादा करना।

25- 'k;u fof/k& शय्या, पलंग आदि की मर्यादा करना।

26-n0; fof/k& खाने–पीने की चीजजों की मर्यादा करना और अन्य प्रकार के द्रव्यों की मर्यादा करना। सामूहिक भोजों में खाने–पीने की वस्तुओं की संख्या सीमित रखना भी इस नियम की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

उपासकदशांग में इक्कीस वस्तुओं के नाम प्राप्त होते हैं।[81] इन बोलों में सभी प्रकार की खाने–पीने, पहनने–ओढ़ने और उपयोग करने की वस्तुओं का समावेश हो जाता है। श्रावक को चाहिये कि वह तय करे कि क्या खाना, नहीं खाना, कौनसी चीज उपयोग करनी या नहीं करनी। मर्यादा का जीवन उसके स्वास्थ्य और बजट पर अनुकूल असर डालेगा।

उपभोग–परिभोग परिमाण व्रत के 5 अतिचार निम्न हैं[82]–

1. मर्यादा उपरान्त संचित वस्तुओं जल, वनस्पति, कंद मूल आदि का सेवन करना।[83]
2. मर्यादा उपरान्त संचित वस्तुओं से संश्लिष्ट आहार करना।
3. मर्यादा उपरान्त अपक्व भोजन अथवा कच्ची वनस्पति आदि का आहार करना।
4. मर्यादा उपरोन्त दुषपक्व/अधपके भोजन का आहार करना।
5. ऐसी वस्तुओं का सेवन करना जिनमें खाने योग्य भाग थोड़ा हो और फैंकने योग्य अधिक हो।

इन अतिचारों के माध्यम से श्रावक इस विवेक को पुष्ट करें कि उसे कब, क्या, कितना, कहाँ खाना है? वह अपनी आचार–संहिता, स्वास्थ्य, मर्यादा आदि का ध्यान रखते हुए खान–पान को निर्धारित करे।

iUng deinku

उपभोग–परिभोग परिमाण के अन्तर्गत भोजन सम्बन्धी मर्यादा और व्यवसाय सम्बन्धी मर्यादाओं की व्यवस्था की गई है। व्यक्ति की जीवनचर्या और जीविकोपार्जन मे सह–सम्बन्ध होता है। इस दृष्टि से इस व्रत के अन्तर्गत व्रती श्रावक के लिए निषिद्ध व्यवसायों की सूची दी गई है। वह ऐसे व्यवसाय नहीं करे जिससे समाज, संस्कृति, पर्यावरण और अर्थतंत्र पर विपरीत असर पड़े। ऐसे पन्द्रह धंधें को पन्द्रह कर्मदान के रूप मे जाना जाता है।[84] उपासकदशांग और आवश्यकसूत्र में 15 कर्मदानों के नामों की सूची मिलती है जबकि गृहस्थाचार के अन्य ग्रंथों में उनकी व्याख्याएं भी मिलती हैं। पन्द्रह कर्मदान, जो श्रावक के लिए निषिद्ध हैं, निम्न हैं–

1. vxkj del ¼bxkydEe½& कोयले का धंधा करने के लिए हरे–भरे वृक्षों को काटना और जंगलों को नष्ट करना इस कर्मादान के अन्तर्गत आता है। प्रो. सागरमल जैन ने इसमें कुम्हार, लुहार, सुनार, हलवाई, भड़भूजा आदि को परिगणित करने से इन्कार किया है।[85] उपासकदशांग में सकडालपुत्र कुम्हार को 12 व्रतधारी श्रावक बताया गया है।

2. ou del ¼o.kdEe½& हरे–भरे जंगलों को नुकसान पहुँचाकर अपना व्यवसाय करना। लकड़ी और अन्य उन वन्य चीजों का व्यवसाय करना, जिससे जंगलों के प्राकृतिक स्वरूप को नुकसान पहुँचता है।

3. 'kdVdel ¼lkMh dEe½& शकट का अर्थ बैलगाड़ी, गाडी, वाहन आदि होता है। उनके निर्माण और बिक्री और धंधे को शकट कर्म कहा गया है।[86] आचार्य हेमचन्द्र मूल प्राकृत शब्द साडीकम्मे का अर्थ वस्तुओं को सड़ाकर नई चीज बनाना, बेचना करते है। जैसे मदिरा व्यवसाय। प्रो. सागरमल जैन इस दूसरे अर्थ को उचित मानते हैं।[87]

4. HkkVd del ¼HkkMh dEEk½& बैल, अश्व, ऊँट, खच्चर आदि पशु तथा इनसे चलने वाली गाड़ियों को भाडे पर देने के धंधे को भाटक कर्म बतया गया है।[88] भाड़े पर लेने वाले व्यक्तित इन मूक प्राणियों पर भार ढ़ोने–हाँकने आदि में ज्यादतियाँ कर लेते हैं। इसीलिए इस कर्म को निषिद्ध बताया है। वर्तमान में अधिकांश वाहन पेट्रोलियम (पेट्रोल/डीजल) से चलते हैं। शटक व भाटक कर्म के निषेध में वाहनों के कम और विवेक सम्मत उपयोग की प्रेरणा है। पर्यावरण–संरक्षण की दृष्टि से इसकी आज बहुत उपयोगिता है।

5. LQkVdel ¼QkMh dEe½& ऐसे काम धंधे जिनमें विस्फोट करना पड़े, स्फोटक कर्म है। विस्फोट का धमाका प्रकृति को तीव्र रूप से प्रकम्मित कर देता है। इसका पर्यावरण पर असर होता है। व्याख्या ग्रंथों में खान खोदने, शिला तोड़ने आदि को स्फोट कर्म कहा जाता है।[89] असावधानी से करने पर ये कार्य मानव, जीव–जन्तुओं व प्रकृति के लिए भारी नुकसानदायक सिद्ध होते हैं। सम्भव है निर्धारित मानदण्डों का ध्यान रखे बगैर किए जाने पर ही इन्हें कर्मादान माना गया है। वर्तमान में विभिन्न प्रकार की मनोरंजनात्मक स्फोटक वस्तुएँ (पटाखे आदि) अन्य छोटे–बड़े विस्फोट को/बमों से लेकर सर्वविनाशक अणु–बमों का

निर्माण व व्यवसाय किया जाता है। वे सब इन कर्मादान के अन्तर्गत माने जायेंगे। आतिशबाजी से देश के करोड़ों रूपयों को धुँआ हो जाता है। आतंकियों द्वारा किये जाने वाले बम–विस्फोटों से अगणित निर्दोष व्यक्ति अपनी जान गँवा देते है और करोड़ों अरबों की सम्पत्तियाँ नष्ट हो जाती है। अणुबम के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। 6 व 9 अगस्त 1943 को हुई हिरोशिमा और नागासाकी की विनाशलीला विश्व इतिहास के सर्वाधिक काले दिनों में से एक है।

6. nUr okf.kT; ¼nUrokf.kTt½& नाम के अर्थ में इस कर्मादान के अन्तर्गत हाथी दांत का व्यापार आता है। वीरप्पन ने दांतों के लिए दक्षिण भारत के छोटे से वन प्रदेश के करीब 2 हजार हाथियों की हत्या कर डाली। उपलक्षण से इस कर्मादान के अन्तर्गत उन सभी प्रकार के पशु उत्पादों को लिया जाता है जिनके लिए पशु पक्षियों का वध किया जाता है।[90] इन उत्पादों में चर्म, हड्डी, नाखून, सींग, पंख, कस्तरी आदि गिनाये जा सकते हैं। व्यावसायिक लाभों के लिए मानव ने मूक प्राणियों पर बेहिसाब जुल्म ढ़ाये। भगवान महावीर के उपदेशों के प्रभाव से उनके अनुयायियों ने वन्य जीवों और अन्य जीवों की रक्षा के लिए हर युग में युगान्तरकारी कार्य किये। उससे संसार अधिक सुन्दर, बेहतर और रहने योग्य रह सका।

7. yk[k okf.kT; ¼yD[kokf.kT;½& श्री हेमचन्द्राचार्य इसके अन्तर्गत लाख, चमड़ी, मैनसिल, नील, धातकी के फूल–छाल आदि के व्यापार को परिगणित करते है।[91] जिन वानस्पतिक उत्पादों के साथ प्रत्यक्ष रूप से त्रस जीवों की हिंसा जुड़ी हो, वे सारे लाख वाणिज्य मानने चाहिए। कुछ प्रकार के व्यापारों से वनस्पतियों की कुछ प्रजातियों पर अस्तित्व का संकट खड़ा हो जाता है। उनका निषेध भी यही माना जा सकता है।

8. jl okf.kT; ¼jl okf.kTt½& इसके अन्तर्गत शराब आदि मादक रसों का व्यापार आता है। मद्य के अलवा माँस, चर्बी, मधु आदि का व्यवसाय भी रस वाणिज्य के अन्तर्गत माना गया है।[92] आधे चिकित्सालय और कारागृह मदिरा की वजह से भरे पड़े हैं। व्यक्ति की शांति और समृद्धि मदिरा पी जाती है।

9. fo"k okf.kT; ¼folokf.kT t½& विभिन्न प्रकार के विषों का व्यवयाय विष वाणिज्य है। नकली दवाईयों के गोरख धंधों को इसमें लिया जा सकता है। जिससे आदमी दवा के नाम पर जहर बेचता है और जन स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करता है। सभी प्रकार की प्राणघातक वस्तुओं और हथियारों के व्यापार को भी विष वाणिज्य में लिया जाता है।[93] अहिंसा के पथ पर चलने वाला समाज और संसार का जाने अनजाने बहुत भला करता है।

10. d'k okf.kT; ¼dlokf.kT t½& शब्दार्थ की दृष्टि से केशों का व्यापार करना केश वाणिज्य है। श्रृंगार बाजार में मानव केश एक व्यापारिक वस्तु है। निर्धन बालाएं अपने केशों को कोड़ियों के मोल बेच देती थी और न केवल केशों को, अपने सौन्दर्य और सम्मान को भी उन्हें बेचना पड़ता था। यह व्यवसाय मानवाधिकारों का हनन करता है। भगवान महावीर ने सद्गृहस्थ के लिए ऐसी वस्तुओं के व्यवसाय क्रय–विक्रय का निषेध किया। आचार्यों ने दास–दासियों व केश युक्त प्राणियों के क्रय–विक्रय को इसमें गिना है।[94] संभवतः केश और अन्य व्यापारिक लाभों की प्राप्ति के लिए मानव और प्राणियों का क्रय–विक्रय किया जाता रहा होगा। अन्य प्राणियों को तो आज भी वस्तु की तरह खुल्लम–खुल्ला खरीदा बेचा, मारा–पीटा और नोचा जाता है। रंग–रोगन और चित्रकारी में ऐसे ब्रशों का प्रयोग भी किया जाता है जो सुअर, गिलहरी, नेवले आदि प्राणियों के बालों से निर्मित होते हैं। बाल प्राप्ति के लिए इस तरह से इन निरीह प्राणियों को असहाय यातना देते हुए मार दिया जाता है। ऐसे व्यवसाय अमानवीय होते हैं, इसलिए अन्ततः अनार्थिक होते हैं।

11. ;U=ihMude ¼trihy.kdEe½& व्याख्या ग्रंथों में घाणी, कोल्हू आदि से तिलहन या तेल निकालने तथा तेल निकालने के ऐसे यंत्रो के धंधे को इस कर्मादान के अन्तर्गत लिया है।[95] शब्दार्थ में जायें तो प्राणियों को यंत्र से पीड़ा देना और जन्तुओं को पीलना जैसे अभिप्राय प्रकट होते हैं। ऐसे धंधे विभिन्न रूपो में समाज में देखने को मिल सकते हैं। कुछ चिकित्सा पद्धतियाँ व औषधियाँ ऐसी होती हैं जो छोटे–छोटे और छोटे–बड़े जीव जन्तुओं की प्रत्यक्ष हिंसा पर आधारित है। ऐसे व्यापारों से पारिस्थितिकी असन्तुलन पैदा होता है। सद्गृहस्थ को चाहिये कि वह सदैव निरापद व अहिंसक विकल्प चुने।

12. fuYyZN.kdeZ ¼fuYyZN.kdEesZ½& आचार्य अभयदेव ने बैल आदि पशुओं को नपुंसक बनाने के व्यापार को इस कर्मादान के अन्तर्गत माना है।[96] जबकि आचार्य हेमचन्द्र ने पशुओं के नाक बींधने, डाम लगाने, कान छेदने, पीठ गालने आदि को भी इसमें मानते हैं।[97]

13. nkokfXunkiu ¼nofXxnko.k;k½& जंगल किसी भी राज्य की बहुत बड़ी सम्पत्ति होते हैं। विभिन्न प्रकार के व्यापारिक उद्देश्यों के लिए जंगलों में आग लगा दी जाती थी। इससे जंगल के साथ बहुत सारी चीजें नष्ट हो जाती थीं। वनस्पतियाँ, जीव–जन्तु और उनके नैसर्गिक आवास ततथा वनवासियों व निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के रोजगार वनों की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाते हैं।

14. ljngryk; 'kks"k.k ¼ljngryk; lksl.k;k½& चंद लोगों के निहित स्वार्थों के लिए तालाब, झील आदि को सुखाना इस कर्मादान के अन्तर्गत आता है। जैसे वनों को नष्ट करने से बहुत सारी चीजें नष्ट हो जाती है वैसे ही जलाशयों को नष्ट करने से भी जलीय प्राणी, पर्यावरण, रोजगार आदि बहुत सारी चीजें नष्ट हो जाती हैं।

15. vlrhtu iks"k.k ¼vlbZ t.kiksl.k;k½& देह व्यापार के लिए स्त्री पुरूषों की व्यवस्था करना, उनको यौन कर्म के लिए खरीदना, बेचना या बिकवाना आदि निम्न स्तर के कार्य इस कर्मादान के अन्तर्गत आते हैं। वर्तमान में पर्यटन और होटल व्यवसाय की आड़ में देह व्यापार बढ़ गया है। यह नितांत अनुत्पादक कर्म है। हेमचन्द्राचार्य इस कर्मादान में अप्रशस्त प्रयोजनों से कुत्ते, बिल्ली आदि रखने तथा स्वतंत्र रहने वाले पक्षियों को कैद करने को भी सम्मिलित करते हैं।[98]

ये पन्द्रह कर्मादान सद्गृहस्थ के लिए वर्जित है। ये वर्जनाएं समाज, देश, अर्थतंत्र और पर्यावरण के लिए स्थायी रूप से हितकारी है। वर्तमान में जल, जंगल और जमीन के लिए आन्दोलन हो रहे हैं। कर्मादानों के निषेध में समष्टि का हित जुड़ा है। बौद्ध परम्परा में भी सभी प्रकार के हिंसक व्यवसायों को निषिद्ध माना गया है। अंगुत्तर निकाय में भगवान बुद्ध ने पांच प्रकार के काम धंधों का निषेध किया है–

1. सत्थवणिज्जा – शस्त्रों का व्यापार।
2. सत्तवणिज्जा– प्राणियों का व्यापार।
3. मसववणिज्जा– मांस का व्यापार।
4. मजववणिज्जा– मद्य का व्यापार।
5. विसवणिज्जा– विष का व्यापार।[99]

स्पष्ट है कि श्रमण परम्परा की दोनों धाराएँ हिंसा से हर मोर्चे पर लड़ रही थीं। सिर्फ व्यवसाय में हिंसा की खिलाफत से पूरे समाज और जन–जीवन में हिंसा के विरूद्ध प्रभावशाली माहौल बनाया जा सकता है। श्रेष्ठ पर्यावरण, सामाहिक समता और आर्थिक समृद्धि के लिए यह प्रयोग ढाई हजार वर्ष पूर्व सफल रहा है। आज इसे पुनः दोहराने की व्यवस्था है।

8- vuFkn.M foej.k or& यह धर्मशास्त्र का आठवां व्रत है। इसे अर्थशास्त्र का प्रथम व्रत कह सकते हैं। जीवन व्यवहार और व्यापार में जितनी भी उद्देश्यविहीन अपत्ययकारी और अनुत्पादक गतिविधियाँ और प्रवृत्तियाँ हैं, वे सब अनर्थदण्ड के अन्तर्गत आती हैं। सावधानीपूर्वक ऐसी वृत्तियों से विरत होना अनर्थदण्डविरमण व्रत है। आधुनिक भौतिकवादी जीवन शैली में अप्रत्यय अत्यधिक बढ़ गया है। उसे न जनतता रोक पा रही है ना सरकार। पच्चीस–छब्बीस शताब्दियों पूर्व तीर्थंकर महावीर जन–जीवन में ऐसी चेतना जागृत कर रहे थे कि समय, श्रम, संसाधनों का अपव्यय बिल्कुल नहीं हो। केवल संसाधनों का ही नहीं व्यक्ति अपनी भाव–भक्ति और वैचारिक सम्पदा का भी अनावश्यक उपयोग ही नहीं करे। ऐसी निरर्थक, पापकारी प्रवृत्तियों की पाँच कोटियाँ[100] बताई गयी हैं–

1. vi/;ku– निष्प्रयोजन की कुछ का कुछ सोचते रहना, अशुभ चिन्तन करना अपध्यान है। ग्रंथों में वर्णित अति ध्यान और रोद्र ध्यान को अपध्यान कहा है। जिसमें चिन्ता, क्रूरता, हिंसा और प्रतिशोध के विचार आते हैं। ऐसे विचार व्यक्ति और समुदाय की सुख शांति छीन लेते हैं। जिन प्रशस्त विचारों और भावों की अकल्पनीय शक्ति से व्यक्ति कहीं से कहीं पहुँच सकता है, अपध्यान उस अपार शक्ति को क्षीण कर देता है और व्यक्ति

जहाँ का तहाँ रह जाता है या जीवन में कोई विशेष प्रगति नहीं कर पाता है। सफलता, उन्नति और लक्ष्य प्राप्ति के लिए व्यर्थ के विचारों से बचना अत्यावश्यक है।

2. ikidekin'k– किसी को दुर्भावनापूर्वक गलत सलाह देना पापकर्मोदेश है। कितने ही लोंगों को दूसरों को भिड़ाने में मजा आता है। वे अपने कुटिल बयानों और झूठी सलाहों से उपद्रव मचा देते हैं। राजनीति में कई साम्प्रदायिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े कुछ लोगों द्वारा भिड़ाने के कारण होते हैं। व्यवसाय जगत में किसी को निषिद्ध या अवैध व्यापार करने या गलत तरीकों से धनार्जन की सलाह देना भी अनर्थदण्ड है। वकील और न्याय प्रणाली की विश्वसनीयता सही सलाह पर निर्भर करती है।

3. iekn kpj.k– जीवन व्यवहार और कार्यों को सजगतापूर्वक नहीं करना प्रमादआचरण है। मद्य या मूद, विषय–विकार, क्रोधादि कषाय, निद्रा और विकथा ये प्रमाद के भेद हैं। इनसे सन्तुलित और सुखी जीवन में गम्भीर व्यवधान पैदा होता है। ये चीजें जीवन के सौभाग्य को क्षत–विक्षत कर देती हैं। न सिर्फ आध्यात्मिक हानि, अपितु भौतिक हानियाँ और अभाव प्रमादाचरण से उत्पन्न होते हैं।

4. fgL=inku– जो हिंसाकारी उपकरण, हथियार, अस्त्र–शस्त्र आदि हैं, उनका वितरण व आपूर्ति करना हिंस्त्रप्रदान है। संसार युद्ध और आतंकवाद की विभीषिका झेल रहा है, उसमें हिस्त्रप्रदान की मुख्य भूमिका है। विश्व राजनीति में हथियारों की होड़ मची हुई है। राष्ट्रों के बीच मुक्त और चोरी छिपे हथियारों का आदान प्रदान, आतंककारी संगठनों को महाविनाशक हथियारों को आपूर्ति जैसी गतिविधियों से विश्व की शांति और समृद्धि का कोई सम्बन्ध नहीं है। व्यक्ति और विश्व के समग्र व स्थायी विकास के लिए हथियारों की इस होड़ा होड़ी से सबको बचना पड़ेगा।

5. nJfr– जैसे फालतू बाते करना, निन्दा चुगली करना अनर्थदण्ड हैं, वैसे ही फालतू बातें और निन्दा सुनना भी अनर्थदण्ड है। गप्पे हांकना–सुनना, टीवी पर बेमतलब के कार्यक्रम देखना, सुनना, भड़काऊ साहित्य पढ़ना

आदि इसमें सम्मिलित हैं। अनर्थदण्ड के ऐसे स्थलों और निमितों से व्रतधारी को विवेकवान को सदैव बचना चाहिए।[101]

संसार में अपव्यय और निष्प्रयोजनकारी गतिविधियों में अत्यधिक इजाफा हुआ है। यह अपव्यय दो स्तरों पर अधिक है– सरकारी स्ततर और धनाढ्य लोगों में। राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए एक सरकारी मशीनरी पर होने वाले धन के दुरूपयोग को रोकने की कवायद की जाती है पर स्थिति देखते हुए ऐसे प्रयास ऊँट के मुँह में जीरा नजर आते हैं। जो जनता के सेवक हैं तथा राजकीय कर्मचारी हैं उनमें गहरा बोध या दृढ़ संकल्प होना चाहिए कि जनता की गाढ़ी कमाई का राजकीय संपत्ति का वे कभी किसी भी रूप में दुरूपयोग एवं अपव्यय नहीं करेंगे। उनका यह आचरण उनके व्यक्तित्व को ऊपर उठाने के साथ–साथ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने में भी मददगार साबित होगा।

धनाढ्य व्यक्ति इस मानसिकता से ऊपर उठें कि उसके कमाये धन को वे जिस रूप में चाहें खर्च कर सकते हैं। जन सामान्य को भी चाहिए कि वह पानी, बिजली, पेट्रोल, डीजल, गैस आदि का सीमित उपयोग करे। आतिशबाजी तो बहुत बड़ा अनर्थदण्ड है। वह निष्प्रयोजन होती है, अनुत्पादक होती है और पर्यावरण को भी नुकसान पहुँचाती है।

एक किसान कई बीघा भूमि पर सिंचाई के लिए बहुत सारे पानी का उपयोग करता है, जबकि एक व्यक्ति अपने नहाने–धोने और कूलर में डालने के लिए जरूरत से ज्यादा किन्तु सिंचाई से काफी कम जल का उपयोग करता है। व्रत की दृष्टि से किसान निर्दोष और आवश्यकता से अधिक उपयोग करने वाला दोषी है। पाँच लाख की आबादी वाले शहर का प्रत्येक बाशिन्दा यदि एक दिन के लिए केवल एक लीटर पानी कम उपयोग का संकल्प करे तो सिर्फ एक दिन में पाँच लाख लीटर पानी की बचत हो सकती है। अर्थव्यवस्था, समाज, पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर ऐसे व्रतों और संकल्पों का जबर्दस्त सुप्रभाव होता है।

अब जिन चार व्रतों का वर्णन किया जा रहा है वे शिक्षाव्रत के नाम से जाने जाते हैं। पूर्व में जिन अणुव्रतों और गुणव्रतों की चर्चा की गई, वे स्थायी रूप से ग्रहण

किये जाते हैं। जबकि शिक्षाव्रत जैसा कि नाम से विदित है, प्रशिक्षण और अभ्यास के व्रत है। इन्हें अल्प समय के लिए ग्रहण किया जाता है।

9- lkekf;d or– श्रावक अपने नौंवे व्रत के अन्तर्गत दो करण तीन योग से निर्धारित समय के लिए समस्त प्रकार के पापकारी कार्यों व गतिविधियों से निवृत होकर समता की साधना करता है।[102] जैन परम्परा में सामायिक का बहुत मूल्य है और प्रचार है।

सामायिक करते समय साधक बत्तीस दोषों को टालता है।[103] उनमें दस मन के, दस वचन के और बारह काया के हैं। मन के दस दोष हैं– अविवेक, कीर्ती की लालसा, लाभेच्छा, अहंकार, भय, निदान (फलाकांक्षा), फल प्राप्ति में संदेह, रोष, अविनय तथा अबहुमान। दस वचन के दोष हैं– कुवचन, अविचारित वचन, स्वछन्द वचन, संक्षेप या अययार्थ वचन, कलहकारी वचन, विकथा, हास्य, अशुद्ध उच्चारण, निरपेक्ष वचन और अस्पष्ट वचन। बारह काया के दोष हैं– कुआसन, अस्थिर आसन, दृष्टि की चंचलता, सावध क्रिया, आलम्बन, अंगों का आकुंचन–प्रसारण, आलस्य, अंगों को मोड़ना, मैल उतारना, शोक मुद्रा में बैठना, निद्रा और सामायिक में दूसरों की सेवा करवाना।

इनके अलावा जिन पांच अतिचारों से बचते हुए सामायिक की आराधना करनी चाहिये वे निम्न हैं[104]–

1. मनोदुष्प्रणिधान– कमजोर या आधे अधूरे मन से सामायिक करना तथा सामयिक में मन की कमजोरियों का पालन–पोषण करना। मन के दोषों के प्रति असजग रहना।

2. वचनदुष्प्रणिधान– वचन का सम्यक प्रयोग नहीं करना, अशुद्ध पाठ उच्चारण करना तथा वचन के दोषों को टालने के प्रति असावधान रहना।

3. कार्यदुष्प्रणिधान– बारह काया के दोषों को नहीं टालना।

4. काल–विस्मरण– सामायिक के प्रति प्रतिबद्धता और समयबद्धता नहीं रखना। सामायिक की समयावधि का ध्यान नहीं रखना।

5. अनवस्थिततकरण— सामायिक को विधि और नियमपूर्वक नहीं करना, अव्यवस्थित ढंग से करना।

इन पाँच अतिचारों को टालने के साथ सामायिक करने वाले को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिये।[105] आचार्यों ने एक सामायिक की काल—मर्यादा एक मुहूर्त यानि 48 मिनट निर्धारित की है।[106] व्यक्ति यदि संकल्प करे तो आसानी से कम से कम एक सामायिक नित्य कर सकता है। श्रावक के लिए सामायिक प्रथम आवश्यक है। सामायिक के पाठों में छोटे—छोटे दोषों के लिए आलोचना की जाती है। वह आलोचना गमनागमन और ध्यान साधना से संबंधित है। समग्र दृष्टि से देखा जाए तो सामायिक एक उत्कृष्ट साधना है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समत्व के अधिकाधिक निकट होता जाता है।

सामायिक के स्वरूप पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि सामयिक करने वाला व्यक्ति अपने जीवन में अनुशासित, सहिष्णु, परिश्रमी, स्वावलम्बी और समयज्ञ होता है। जीवन को कुशलतापूर्वक चलाने, श्रेष्ठ प्रबन्धन और धनोपार्जन करने के लिए जिन योग्यताओं की आवश्यकता होती है, सामायिक से वह सहज निष्पन्न होती है। तीर्थंकर महावीर के अनुयायियों की सम्पन्नता के पीछे सामायिक साधना का बहुत बड़ा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान है।

10- n'kkodkf'kd or& पांचवें, छटवें और सातवें व्रतों—परिग्रह, परिमाण, दिशा परिमाण ओर उपभोग परिमाण का इस शिक्षाव्रत में प्रशिक्षण और अभ्यास किया जाता है। निर्धारित समय के लिए श्रावक यह प्रतिज्ञा करता है कि वह अमुक सीमा के बाहर न तो स्वयं जायेगा, न दूसरों को भेजेगा तथा मर्यादा के बाहर की वस्तु की उपभोग परिभोग का भी विवेकपूर्वक त्याग रखेगा।[107] उपासकदशांग सूत्र टीका में इस व्रत की काल मर्यादा दिन—रात या इससे कम—ज्यादा समय की बतायी गयी है।[108] जबकि श्रावकाचार के अन्य ग्रंथों में क्षेत्र मर्यादा के अन्तर्गत घर—मौहल्ला, ग्राम, खेत, वन, नदी आदि एवं काल मर्यादा के अन्तर्गत सप्ताह, पक्ष, माह, चातुर्मास, ऋतु, वर्ष आदि को परिगणित किया गया है।[109] श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा में दया, व्रत के नाम से जो साधना की जाती है, वह इसी व्रत का रूप है। इसके अलावा देशावकाशिक व्रत के

तहत श्रावक–श्राविकाओं का कर्तव्य बनता है कि वे निम्न चौदह नियम नित्य विचारें और यथा शक्ति ग्रहण करें–

1- lfpÙk& श्रावक प्रतिदिन कच्चा जल, अन्न, फल, फूल, बीज आदि जिन वस्तुओं का उपयोग करता है उनकी मर्यादा निश्चित करे। यह मर्यादा संख्या, माप, तौल आदि रूप में हो सकती है। कच्चे फल, फूल, पत्तियाँ आदि नहीं तोड़ना।

2- n0;& रोटी, दाल, भात, सब्जी, अचार, चटनी आदि खाने–पीने संबंधी वस्तुओं की संख्या निश्चित करना। जैसे भोजन में इतने द्रव्य से ज्यादा सेवन नहीं करूँगा। सामूहिक भोजों में यह मर्यादा इस रूप में तय होनी चाहिए कि मेजबान इतने द्रव्य (आईटम) से अधिक नहीं बनायेगा। इससे अपव्यय रूकता है और आमंत्रित व्यक्ति बेमेल चीज खाने से बच जाते हैं।

3- fox;& विगय प्राकृत शब्द है जिसका अर्थ है विकृत/विकृति। जिनके अमर्यादित सेवन से विकार उत्पन्न हो ऐसे मक्खन, घी, तेल, दूध, दही आदि की मर्यादा करना। यह स्वास्थ्य रक्षण का सूत्र भी है।

4- i..kh& पैरों में पहनी जाने वाली वस्तुओं (जूते, चप्पल, मोजे आदि) की मर्यादा करना। जीवित पशु से प्राप्त चमड़े के जूतों का त्याग करना।

5- rkEcy& मुखवास, पान, सुपारी आदि की मर्यादा करना। तम्बाकू युक्त नशीले मुखवास द्रव्यों का त्याग करना।

6- oL=& प्रतिदिन पहनने व ओढ़े जाने वाले वस्त्रो की मर्यादा करना। वस्त्रों को भड़काऊ तरीके से नहीं पहनना। शालीन परिधान धारण करना।

7- dle& फूल, इत्र सुगंधित द्रव्यों, श्रृंगार सामग्री आदि की मर्यादा करना।

8- okgu& प्रतिदिन उपयोग में लिए जाने वाले वाहनों के प्रयोग एवं उनकी संख्या निर्धारित करना।

9- 'k;u& शयन, शयन स्थान, पलंग, खाट, बिस्तर आदि की मर्यादा करना।

10-foy:iu& लेप, क्रीम, उबटनन आदि विलेपनीय वस्तुओं की मर्यादा करना।

11-cãp;& मैथुन सेवन की मर्यादा या त्याग करना। कामोत्तेजक साहित्य, टी.वी. कार्यक्रम या प्रसंगों से बचना।

12-fn'kk& दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा करना।

13-Lukku& स्नान जल की मर्यादा करना।

14-Hkkstu& मिठाई, पकवान आदि विशेष भोजन का त्याग या मर्यादा करना। खाने–पीने की या बाजार की वस्तुओं, होटल के भोजन आदि का त्याग या मर्यादा करना।

इस व्रत का आर्थिक पक्ष ये है कि जो व्यक्ति स्वदेशी का प्रचार करते हैं वे कुछ समय के लिए ही लोगों को स्वदेशी अपनाने का संकल्प करवाये। इससे लोग सहज रूप से ऐसे नियम स्वीकार कर सकेंगे और बड़ी प्रतिज्ञा के लिए तैयार होने की पात्रता अर्जित कर लेंगे। विदेश यात्रा तथा आयात–निर्यात की नियमावली व्यक्तियों और वस्तुओं की मुक्त आवागमन को तरह–तरह से नियमित और नियंत्रित करती है। गाँव में रहने वाले यह ध्यान रखे कि वे वस्तुएँ जो गाँव में उत्पादित या उपलब्ध होती है उन्हें गाँव से ही खरीदेंगे इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ होगी। शहरीकरण पर अंकुश लगाने में मदद मिलेगी। देश के समग्र विकास में ऐसी छोटी प्रतीत होने वाली बातों का बड़ा योगदान होता है।

11- ik"k/kkiokl or& सांसारिक और व्यवसायिक कार्यों से दिवस भर की विश्रान्ति के लिए पौषधव्रत की आराधना उपवास[110] के साथ की जाती है। यह जैन आध्यात्मिक साधना का विशिष्ट प्रकार है। इस व्रत की अवधि में साधक निम्न चीजों का त्याग करता है–

1. चारों प्रकार के आहार का त्याग– चारों प्रकार के आहार में सभी प्रकार की खाने–पीने की चीजें आ जाती है। तीन प्रकार के आहार में पानी को छोड़कर सभी खाने–पीने की चीजें आती है।
2. काम भोग का त्याग।
3. स्वर्ण रजत, मणि मुक्ता, आभूषण और बहूमूल्य वस्तुओं का त्याग।
4. श्रृंगार वस्तुओं – माला, गंध, इत्र आदि का त्याग।

5. हिंसक उपकरणों तथा दोषपूर्ण चीजों का त्याग।

जो व्यक्ति एक दिन के लिए भी इन चीजों का त्याग करता है, वह त्याग की दिशा में आगे बढ़ता है। ऐसी आराधनाओं से समाज में निर्लोभता, त्याग, शुचिता आदि प्रशस्ताओं को बढ़ावा मिलता है। पौषधोपवास व्रत के नियम 5 अतिचार हैं[111]–

1. व्रत के दौरान शय्या– संस्तारक आदि बिना देखे–भाले उपयोग करना।
2. शय्या– संस्तारक आदि का विधिपूर्वक प्रमार्जन नहीं करना या अच्छी तरह से नहीं करना।
3. बिना देखी–भाली या अनुपयुक्त भूमि पर लघु शंका व दीर्घशंका का निवारण करना।
4. अप्रमार्जित या दुष्प्रमाजित भूमि पर लघुशंका व दीर्घ शंका का निवारण करना।
5. पौषणव्रत का सम्यक प्रकार से पालन नहीं करना।

12- vfrfFk lfoHkkx or& जिसके आने की कोई तिथि नहीं हो, या अल्पतिथि यानि थोड़े समय के लिए आता है, वह अतिथि कहलाता है। गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह अपने लिए बनाई गई तथा अपने अधिकार की वस्तुओं का अतिथि के लिए संविभाग करे। ग्रंथों में अगनार (जिसका कोई घर नहीं हो तथा एक ही जगह पर स्थायी आगार यानि ठहराव नहीं हो) को उत्कृष्ट अतिथि बताया गया है।[112] यह उत्कृष्टता इसलिए है कि अनगार समाज और संसार में प्रेम, शांति और अहिंसा के दूत होते हैं। वे चलते फिरते तीर्थ होते है। उनके सहयोग का अर्थ है अहिंसा और संयम का पोषण। इन चारों के अलावा आधुनिक विद्वानों ने सभी प्रकार के अतिथियों, दीन–दुखी, वृद्ध, रोगी आदि के लिए भी संविभाग का समर्थन किया है।[113] इन अतिथियों का श्रावक भावपूर्वक सत्कार करे। उन्हें आहार, औषध, आवास और अन्य आवश्यक निर्दोष वस्तुएँ प्रदान करें।[114] अतिथि संविभाग में श्रावक को दान–विधि, द्रव्य, दाता और पात्र का विवेक रखना चाहिए।[115]

सिंविभाग का अर्थ है सम+विभाग। सद्गृहस्थ को अतिथि और योग्य पात्र के लिए अपने आहार, धन, साधन और संसाधन आदि का उचित भाग करना चाहिए।

गृहस्थ के यथा संविभाग व्रत का अन्य व्रतों की अपेक्षा विशेष महत्व देखते हुऐ उसे सबसे बड़ा व्रत तथा व्रत शिरोमणि कहा है।[116] भगवान महावीर कहते हैं– ^^vlfoHkkxh u gq rLl ekD[kk** जो अपने धन व साधनों का संविभाग नहीं करता है, वह मुक्त नहीं हो सकता।[117]

बारह व्रतों की प्रेरणाओं का सार रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं–

1. अहिंसा अणुव्रत से निर्दोष प्राणियों को बचाया जाता है।
2. सत्याणुव्रत से समभाव और निष्पक्षता की प्राप्ति होती है।
3. अस्तेय से उपार्जित वस्तुओं के उपयोग का नियम बनता है।
4. ब्रह्मचर्य से सबके प्रति आत्मवत् की भावना जागृत होती है।
5. अपरिग्रह से संचित वस्तुओं का संयम होता है।
6. दिशा परिमाण दिन रात की दौड़–धूप से बचाता है और गमनागमन को मर्यादित करता है।
7. उपभोग–परिभोग परिमाण व्रत सादगी और सरलता का पोषण करता है।
8. अनर्थदण्ड विरमण व्रत व्यक्ति को वस्तुओं के उपयोग का विवेक प्रदान करता है और उसे उपयोगिता के मापदण्ड प्रदान करता है।
9. सामायिक व्रत अनुकूल–प्रतिकूल वातावरण में समभाव स्थापित करता है।
10. देश मर्यादा में सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणियों का संरक्षण किया जाता है।
11. पौषध के नियम से आत्मशक्ति में अभिवृद्धि होती है।
12. अतिथि संविभाग विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाता है।[118]

इस प्रकार गृहस्थाचार (अणुव्रतों) के माध्यम से आगम–ग्रंथों में उत्तम नागरिक संहिता बताई गई है जो व्यक्ति व समाज तथा राष्ट्र व विश्व को सुखी व समृद्ध बनाती है। व्यवसायिक नीतिशास्त्र के लिए अणुव्रत प्रेरक दस्तावेज है।

ifjPNsn r`rh;

la;e dk vFkZ'kkL= dk vk;ke

vkfFkZd la;e

अहिंसा और संयम सहवर्ती गुण हैं। इन्हें अर्थशास्त्र के नियामक तत्व कहा जा सकता है। भगवान महावीर कहते हैं व्यक्ति वध और बन्धन द्वारा दूसरों का दमन करता है। इससे तो अच्छा है, वह संयम और तप के द्वारा स्वयं का ही दमन करे।[119] संयम का अर्थशास्त्र मूलतः दृष्टिगत नियमों और हितों की व्याख्या करता है, जिनके विवेकसम्मत अनुपालन से समष्टिगत अर्थशास्त्र के उद्देश्यों को आधारभूत तरीकों से पूरा किया जा सकता है। संयम अपव्यय के सारे द्वारों को रोक देता है। वह जीवन के समस्त व्यवहारों में विवेक और अनुशासन पैदा करता है।

la;e% [kyq thoue~

एक व्यक्ति की मामूली आय है, परन्तु उसकी जीवनशैली संयमित है। वह पैसे का अपव्यय नहीं करता है। मौज–शौक और व्यसनों से दूर रहता है। धीरे–धीरे वह सम्पन्नता की ओर बढ़ता चला जाता है। वह आर्थिक दृष्टि से तो सम्पन्न बनता ही है, वैचारिक व नैतिक दृष्टि से भी वह सम्पन्न बनता है। जबकि एक अन्य व्यक्ति जिसकी

आय काफी ठीक है, परन्तु वह व्यसनी और विलासी है। वह अर्जन करते हुए भी विपन्न बना रहता है। उसकी निर्धनता उसे अन्य कई सुख और सम्मान से वंचित कर देती है। जैन धर्मानुयायियों की सम्पन्नता की एक वजह उनकी संयमित, अनुशासित और व्यसन मुक्त जीवन शैली का होना है।

ढाई हजार साल पहले भगवान महावीर ने संयम का एक प्रायोगिक अभियान शुरू किया था। जिस समय आबादी आज जितनी नहीं थी, उस समय पाँच लाख व्यक्तियों का समाज बनाया था। पाँच लाख लोग उस समय की दृष्टि से कम नहीं होते हैं। वे लोग संयम, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करते थे। जन सामान्य से लेकर लिच्छवी गणतन्त्र के अध्यक्ष महाराजा चेटक और प्रख्यात गाथापति आनन्द जैसे वर्चस्वी व्यक्ति भी उस व्रती समाज से जुड़े हुए थे।[120]

सूत्रकृतांग[121] में कहा गया– जो अपने पर अनुशासन नहीं रख सकता, वह औरों पर अनुशासन कैसे कर सकता है? शासन और प्रशासन के संचालन में अहिंसा और संयम पर आधारित नियमों से एक विश्वस्त व्यवस्था की स्थापना संभव है। संयम जीवन में मर्यादाओं की रेखा खींचता है।

l;e d iadkj

आगम ग्रन्थों में संयम के अनेक प्रकार बताये गये हैं। स्थानांग सूत्र में उसके चार प्रकार बताये गये हैं– मन, वचन, शरीर और उपकरणों का संयम।[122] आवश्यक सूत्र में संयम के सत्रह भेद बताये गये हैं।[123] इन भेदों में उपरोक्त चार के अतिरिक्त पाँच प्रकार के स्थावर कायिक जीवों का संयम, चार प्रकार के त्रस (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय) जीवों का संयम, प्रेक्षा संयम, उपेक्षा संयम, प्रमार्जन संयम और परिठावणिया संयम हैं। सत्रह प्रकार का संयम दूसरी तरह से भी गिना जाता है, जिसमें पाँच आश्रवों का त्याग, पाँच इन्द्रियों का दमन, चार कषायों का त्याग और त्रियोगों को वश मे करना सम्मिलित है। संयम के अधिकांश भेदों का अन्यत्र विमर्श हुआ है। कुछ बिन्दु यहां विमर्शनीय हैं–

vtho dk; l;e & जीव संयम से अहिंसा की प्रत्यक्ष आराधना जुड़ी है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भगवान महावीर की अहिंसा अनन्त आयामी है। उन्होंने

निर्जीव वस्तुओं के संयम की बात कह कर सचमुच अहिंसा को गहराइयाँ प्रदान कीं। जो वस्तुएँ उपकरण आदि हमारे आस–पास, इर्द–गिर्द हैं, उनकी उपस्थिति और अवस्थिति किसी व्यवस्था के क्रम में है। उनकी स्वाभविक अवस्थिति भंग करना अथवा इन चीजों का किसी तरह दुरूपयोग करना हिंसा है।

हमारे काम आने वाली वस्तुओं के निर्माण में स्थावर–कायिक जीवों की अनिवार्य हिंसा प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है और अप्रत्यक्ष रूप से त्रय जीवों की हिंसा भी जुड़ी होती है। वस्तुओं के दुरूपयोग का अर्थ है सकल राष्ट्रीय उत्पाद की इकाई का दुरूपयोग तथा दुरूपयोग के फलस्वरूप ऐसी वस्तु के पुनर्निर्माण पर प्रकृति का अधिक दोहन।

उपभोक्ता के व्यवहार का आर्थिक गतिविधियों के अनेक घटकों पर तथा पर्यावरण पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। असंयम प्रदूषण का कारण बनता है। प्रदूषण पदार्थ के प्राकृतिक संघटक को क्षतिग्रस्त या नष्ट करता है। यह खाद्य श्रृंखला कार्बन, नाईट्रोजन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन (सी.एन.ओ.एच.)के परिपथ में हस्तक्षेप करता है और इस प्रकार पौधों तथा पशु जीवन को क्षतिकारित करता है। यह जीवित रहने वालों का जीवित रहना कठिन और दुष्कर बना देता है। प्रदूषण न सिर्फ जीवित रहने वालों को अपितु सम्पत्ति और भवन को भी दुष्प्रभावित करता है। जीव–मण्डल और पारिस्थितिकी में असन्तुलन तथा ग्रीन हाउस गैस प्रभाव को बढ़ाने में हिंसा और असंयम मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं।

मौजूदा दौर में उपभोक्ता का व्यवहार काफी असंयमित, खर्चीला और अपव्ययकारी हो गया है। 'प्रयोग करो और फैंकों' (Use and Throw) की बाजार की नीति (Policy) वह बिना सोचे समझे जहाँ–तहाँ अपना रहा है। उपभोक्ता का असंयमित व्यवहार प्रकृति और समाज दोनों के असन्तुलन का जिम्मेदार है। अजीवकाय संयम व्यक्तिगत और सार्वजनिक सम्पत्ति के दुरूपयोग पर स्वैच्छिक अंकुश का सूत्र है। वह हर प्रकार की वस्तु के विवेकसम्मत उपयोग की प्रेरणा देता है।

i{kk l;e – हर प्रकार की वस्तु को भली प्रकार से देख–भाल कर उपयोग में लेना चाहिये। व्यापार में वस्तुओं के क्रय और विपणन पर भी यह बात लागू होती है।

mi{kk l;e – जो बातें, घटनाएँ जीवन के प्रपंच को बढ़ती हैं और गुणवत्ता घटाती हैं, उन्हें नजरअन्दाज करना उपेक्षा संयम है।

iektu l;e – जीवन का हर काम यतन से करने का बोध कराता है।

ifjBkof.k;k l;e – देह की अशुचिताओं को इस प्रकार और ऐसे स्थान पर विसर्जित करना, जिससे अहिंसा और स्वच्छता को नुकसान नहीं हो। आर्थिक जगत में औद्योगिक कचरा फैंकने की बड़ी समस्या है। उसे हर कहीं फैंक देने से स्थल, जल और वायु का पर्यावरण प्रदूषित होता है। नगरीय व्यवस्था में भी अपशिष्ट को उचित स्थान पर विसर्जित करना चाहिये।

tul[;k fl)kUr vkj cãp;l

संयम का एक अर्थ होता है– आत्म संयम यानि ब्रह्मचर्य। भगवान महावीर ने ढाई हजार वर्ष पूर्व ब्रह्मचर्य को मानव समाज की बुनियाद के रूप में कई उपयोगी आयामों के साथ स्थापित किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य को सभी व्रतों में श्रेष्ठ, उत्तम और बहुफल देने वाला बताया।[124] अर्थशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो जिस जनसंख्या के सिद्धान्त को अर्थशास्त्री माल्थस ने अठाहरवीं शताब्दी के अन्त (1798) में प्रतिपादित किया था, आगम ग्रन्थों में उसका निरूपण उससे तेईस शताब्दियों पूर्व ही हो चुका था। जैन सूत्रों में ब्रह्मचर्य को नीरस और संन्यासियों का व्रत ही नहीं, अपितु उसे जीवन्त और प्रत्येक सदाचारी मानव के लिए आवश्यक व्रत बताया है। कथानुयोग की अनेक कथाओं और गृहस्थाचार के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जैन गृहस्थों ने गृहस्थ जीवन में भी नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का अनुपालन करके परिवार और समाज में अनुकूल वातावरण का निर्माण किया। इस व्रत ने जनसंख्या नियन्त्रण के अलावा समाज में सदाचार की स्थापना तथा योग्य, स्वस्थ व समर्थ नागरिकों के निर्माण मे महान योगदान किया है। नारी–स्वतन्त्रता और स्त्री–पुरूष समानता जैसे मुद्दों के सम्बन्ध में ब्रह्मचर्य एक केन्द्रिय भूमिका निर्वहन करने वाला निरापद नियम है। जैन धर्मावलम्बी आत्म संयम अपनाने में अव्वल हैं। भारत की जनसंख्या 1991, 2001 तथा 2011 के आँकड़ों के अनुसार जैन समाज की जनसंख्या व जनसंख्या वृद्धि दर अन्य धर्मावलम्बियों की तुलना में कम है, जबकि साक्षरता का प्रतिशत सर्वाधिक है। यही

नहीं, स्त्री पुरूष का अनुपात भी अनुकूलता के दूसरे क्रम पर है।[125] गरीबी–अमीरी और शिक्षा–अशिक्षा से जनसंख्या का सीधा सम्बन्ध है।

अर्थशास्त्री माल्थस ने अपने जनसंख्या के सिद्धान्त मे बताया कि जनसंख्या ज्यामितीय गति (1, 2, 4, 8, 16, 32) से बढ़ती है, जबकि खाद्यान्न वृद्धि अंकगणितीय गति (1, 2, 3, 4, 5, 6) से होती है। फलस्वरूप जनसंख्या और खाद्य पूर्ति में असन्तुलन पैदा हो जाता है। इस असन्तुलन के निवारण का उपाय है– लोग आत्म संयम और ब्रह्मचर्य को जीवन का अंग बनायें। यदि जनता आत्म संयम की राह नहीं चुनती है तो प्राकृतिक आपदाओं से आबादी नियन्त्रण होता है। माल्थस ने चेतावनी देते हुए कहा था– लोग अपने कामोन्माद को यथासम्भव नियन्त्रण में रखें। यदि वे कामोन्माद को इस ढंग से तुष्ट करते हैं कि जिससे अन्त में अनिवार्य रूप से वेदना होती है तो उपर्युक्त नियम की सुस्पष्ट अवज्ञा ही होगी।[126]

ekYFk l

माल्थस के बाद नव–मात्थसवादियों ने आबादी नियंत्रण के लिए कृत्रिम उपायों की वकालात कर डाली। अर्थशास्त्र में जनसंख्या के और सिद्धान्त आये, जिनमें इष्टतम जनसंख्या का सिद्धान्त, जीव विज्ञानीय सिद्धान्त और जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धान्त मुख्य है। इन सभी सिद्धान्तों में जनसंख्या और अर्थव्यवस्था को लेकर विस्तृत विवेचन हुआ। यह आश्चर्यजनक है कि माल्सथ के बाद सबने आत्म संयम को उपेक्षित कर दिया। परिणामस्वरूप जनसंख्या में कमी के साथ–साथ जीवन की जीवन की गुणवत्ता में भी कमी होने लगी।

असंयम और जनसंख्या के अन्तर्सम्बन्ध को अलग अर्थ देते हुए 'वाइल्ड अर्थ' पत्रिका में एल्बर्ट बार्टलेट बताते हैं कि जनसंख्या की समस्या अमेरीका में है। वहां एक नागरिक बढ़ता है तो वह विकासशील देशों की तुलना में तीस गुना अधिक प्रकृति का दोहन करता है। विश्व के सभी देशों में अमरीका में जन्म दर न्यूनतम होने के बावजूद पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अमरीका में आबादी नियंत्रण पहले होना चाहिये।[127] पर्यावरण और आर्थिक विकास का सम्बन्ध जनसंख्या में ही नहीं, संयम की संस्कृति में भी है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य भोगवादी संस्कृति में उलझे रहता है तो जनसंख्या नियन्त्रण के सुपरिणाम प्राप्त नहीं होंगे।

vl;e dk ifj.kke

आज दुनिया में सेक्स ने बहुत ही घिनौने व्यापार का रूप ले लिया है। 26 दिसम्बर 2004 को दक्षिणी भारत सहित एशिया के अनेक देशों में समुद्री भूकम्प 'सुनामी' ने मानव जाति पर अभूतपूर्व कहर ढ़ाया। सरकारी आँकड़ो के मुताबिक करीब डेढ़ लाख लोगों की इस त्रासदी मे जान गई। लाखों लोग बेघर हो गये। सम्पत्ति के नुकसान का तो कोई हिसाब ही नहीं। जयपुर से प्रकाशित होने वाले एक आर्थिक अखबार 'नफा–नुकसान' ने इस त्रासदी के लिए देह –व्यापार के निमित्त हो रहे मर्यादाओं के उल्लंघन को सीधे तौर पर जिम्मेदार ठहराया है। इस भूकम्प का केन्द्र थाइलैण्ड रहा, जिसे दुनिया की 'सेक्स राजधानी' माना जाता है। देह–व्यापार के आँखे उघाड़ने वाले वीभत्स आंकड़े प्रस्तुत करते हुए अखबार लिखते है कि प्रकृति की विनाश लीला से बचने के लिए मर्यादा का पालन सबसे अहम है। हम ग्लोबलाइजेशन के जिस युग में जी रहे हैं, उस युग में मर्यादा बहुत पीछे छूट चुकी है और हम मर्यादा से दूर भागते हुए हर पल विनाश लीला को आमंत्रित कर रहे हैं।[128]

आत्म संयम की उपेक्षा के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र–नीतिशास्त्र की खुल्लमखुल्ला अवहेलना करने लगा। पर्यटन व्यवसाय में स्वच्छन्द यौनाचार, फिल्म उद्योग में भद्दे तरीकों से देह प्रदर्शन और कोर्पोरेट जगत में विज्ञापनों में नारी देह को वस्तु की तरह प्रदर्शित करने से मानवीयता और सामाजिकता के अनेक गौरवशाली

प्रतिमान ताश–पत्तों के महल की भांति गिर रहे हैं। इससे परिवार टूट रहे है, समाज बिखर रहा है और अर्थशास्त्र अपने पुनीत लक्ष्यों से भटकता जा रहा है।

अर्थशास्त्री डॉ. मार्शल ने उत्पादक श्रम की अपनी अवधारणा से वैश्वावृत्ति या देह–व्यापार को बाहर निकाल दिया था। प्रो. सैलिगमैन ने भी कहा था कि सच्ची आर्थिक क्रिया परिणामतः सदाचारिक होनी चाहिये।[129]

ब्रह्मचर्य व्रत के खण्डन से अर्थात वैवाहिक सीमा के उल्लंघन से सारा संसार एड्स नामक जानलेवा महामारी से जूझ रहा है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार संसार में प्रतिदिन करीब 6000 लोग एड्स से जान गँवा देते हैं और करीब 8200 लोग इस जानलेवा रोग से संक्रमित हो जाते हैं।[130] इसके अलावा कृत्रिम उपायों से आबादी नियन्त्रण के अन्तर्गत मानव स्वास्थ्य (विशेषतः स्त्री स्वास्थ्य) के साथ खिलवाड़ हो रहा है। कमजोर स्वास्थ्य की वजह से विश्व में प्रति एक मिनट महिला प्रसव के दौरान मर जाती है।[131] इन बीमारियों से बचने और बचाने के लिए अपार धन खर्च किया जा रहा है। एड्स और अन्य रोगों से बचने का सर्वाधिक निरापद उपाय आत्म संयम है। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के महानायक महात्मा गांधी भी जनसंख्या नियन्त्रण के लिए आत्म संयम के अभ्यास और विकास की सलाह देते हैं। वस्तुतः आत्म संयम से जनसंख्या पर ही नियन्त्रण नहीं होता, अपितु अनेक प्रकार की समस्याओं पर भी नियन्त्रण होता है। सच है – v.kxk x|.kk vgh.kk Hkofr ,ôfe cHkpj; – एक ब्रह्मचर्य की साधना से अनेक गुणों का संचार होता है।[132]

संयम के संकल्प, अभ्यास और विकास के लिए जैन आगम ग्रन्थ प्रत्याख्यान का विधान करते हैं।[133] प्रत्याख्यान का अर्थ है– प्रतिज्ञा। व्यक्ति एकाएक त्याग व संयम के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता है तथा सबकी क्षमता व रूचि भी समान नहीं होती है। वस्तुओं की मात्रा तथा उनका उपयोग करने की अवधि की मर्यादा कराना एक विवेकशील और दृढ़ मनोबल वाले व्यक्ति का काम है। आर्थिक जगत में व्यक्ति यदि प्रामाणिकता का संकल्प करता है, विलासिता रहित और सादगी का संकल्प करता है, तो वैसा संकल्प व्यक्ति और देश दोनों के लिए लाभदायक है। इस प्रकार संयम, आत्म संयम और मर्यादा से आर्थिक व्यवस्थाएँ मजबूत होती हैं।

I UnHk

1. नगराज, मुनि 'अहिंसा पर्यवेक्षण प्रथम अध्याय। – 'एंशेंट इण्डिया' मजूमदार, राय चौधरी और के.के. दत्ता तथा 'दि रिलिजन ऑफ अहिंसा'– प्रो. ए. चक्रवर्ती।
2. आचारांग सूत्र 1.4.1
3. अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्व भूएसु संजमो – दशवैकालिक सूत्र 6/9
4. प्रश्नवकरण सूत्र 2/1/21–22
5. भगवती अराधना 790
6. प्रश्नव्याकरण सूत्र 1/21
7. नगराज, मुनि 'अहिंसा पर्यवेक्षण' पृ.– 11 एवं 'दि रिलिजन ऑफ अहिंसा – प्रो. ए. चक्रवर्ती पृ.– 14
8. उत्तराध्ययन 22वाँ अध्ययन
9. स्थानांग सूत्र 4
10. जैन, नेमीचन्द (डॉ.) अहिंसा का अर्थशास्त्र पृ.–5
11. 'शाकाहार क्रान्ति' (मासिक) जनवरी 2011 के अंक में प्र.–5 पर डॉ. नेमी चन्द का लेख।
12. अ.भा. मॉस निर्यात निरोध परिषद् द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'महाप्रलय निश्चित' के पृ.–7 पर उद्धृत।
13. 'शाकाहार क्रान्ति', इन्दौर जनवरी 2011 के अंक में पृ.–1 पर डॉ. नेमी चन्द का लेख।
14. जैन, नेमीचन्द (डॉ.) 'शाकाहारः 100 तथ्य' 99वाँ तथ्य।
15. 'शाकाहार क्रान्ति' जनवरी 2011 के अंक के आवरण पृ.–3 प्रकाशित।
16. जैन, नेमीचन्द (डॉ.) 'शाकाहार मानव सभ्यता की सुबह' पृ. 80–81 प्रो. सागरमल ने 'अहिंसा की प्रासंगिकता' पुस्तक के अन्तिम अध्याय में शाकाहार के अर्थशास्त्र पर विमर्श किया है। अर्थशास्त्री डॉ. भरत झुनझुनवाला ने राजस्थान पत्रिका (अगस्त, 08) में प्रकाशित अपने आलेख 'पर्यावरण की समस्या का मूल कारण' में यह विचार प्रकट किया एवं राजस्थान पत्रिका 3 मई 2006 के अंक में मेनका गांधी का लेख 'शाकाहार बचाता है पर्यावरण को'।
17. हक, मोहम्मद जियाउल (वरिष्ठ पत्रकार) का लेख –हरित क्रान्ति से जीन क्रान्ति तक' प्रकाशित 'राजस्थान पत्रिका' 28–1–2005 पृष्ठ–8
18. जैन, नेमीचन्द (डॉ.) अहिंसा का अर्थशास्त्र पृ.–14
19. आचारांग सूत्र 1/2/3
20. समणसुत्तं 151
21. जैन, नेमीचन्द (डॉ.) 'कत्लखाने :100 तथ्य' तथ्य 28–29
22. जैन, नेमीचन्द (डॉ.) 'कत्लखाने : 100 तथ्य' तथ्य 97
23. अणुव्रत (पाक्षिक), नई दिल्ली, अप्रेल 2008, अहिंसा विशेषांक, पृ.–113
24. पाणवहो चण्डो, रूद्दो, खुद्दो, अणारियो, निग्घिणो, निसंसो, महब्भयो – प्रश्नव्याकरण 1/1
25. आचारांग सूत्र 1/5/5
26. शिवा वन्दना (डॉ.) का लेख 'पशुओं का अन्धाधुन्ध कत्ल क्यों?' मेरठ से प्रकाशित 'पर्यावरण मित्र' पुस्तक में पृ.– 8 पर प्रकाशित
27. गांधी मेनका का लेख 'शाकाहार बचाता है पर्यावरण हो', राजस्थान पत्रिका 5–5–06
28. समवायांग व कल्पसूत्र में तीर्थंकर चरित्र एवं आचारांग 1/4/1/127 एवं प्रश्नव्याकरण सूत्र संवर द्वार।
29. कल्पसूत्र में तीर्थंकर चरित्र।

30. शाकाहार क्रान्ति नवम्बर 2004 पृ.– 7

31. गांधी, मोहनदास करमचन्द (महात्मा), आत्मकथा, चौथे भाग का 8वाँ अध्याय, पृ.–235

32. विशेष जानकारी के लिये देखें ठाणे (महाराष्ट्र) से प्रकाशित 'शाश्वत धर्म' (मासिक) का मॉस, निर्यात निरोध विशेषांक अगस्त 2013

33. धींग, दिलीप (डॉ.) की कृति मुक्तक–मुक्ता से।

34. उपासकदशांग सूत्र – प्रथम अध्ययन।

35. सूत्रकृतांग 1/2/26

36. उवासगदसाओ 1/13, दशवैकालिक सूत्र 6/10

37. उपासकदशांग सूत्र – प्रथम अध्ययन

38. स्थानांग सूत्र– मधुकर मुनि 3/4/175

39. योगशास्त्र – आ. हेमचन्द्र 2/19

40. भगवती सूत्र, शतक 7, उ.–1

41. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग 2, पृ.–276

42. उवासकदसाओ 1/45

43. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 12/135

44. अभयदेव, आचार्य, उपासकदशांग टीका, पृ.–27

45. अभयदेव, आचार्य, उपासकदशांग टीका, पृ.–27

46. लाटी संहिता 4/263

47. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–2, पृ.–277

48. श्रावकप्रज्ञप्ति टीका 258

49. चरित्रसार–श्रावकाचार संग्रह 1/239, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 12/138

50. उवासगदसाओ 1/14

51. हेमचन्द्र, आचार्य, योगशास्त्र – 254–55

52. लाटी संहिता 5/22

53. उवासगदसाओ 1/46

54. उपासकदशांग टीका पृ. 29–30

55. उवासगदसाओ 1/15

56. आवश्यक सूत्र, तीसरा अणुव्रत

57. उवासकगसाओ 1/15

58. कोठारी, सुभाष (डॉ.) उपासकदशांग : एक परिशीलन, पृ.–101

59. उवासगदसाओ 1/47, तत्वार्थसूत्र, पुरूषार्थसिद्धयुपाय, सागारधर्मामृत आदि में भी शब्दों के फेर के साथ इन अतिचारों का उल्लेख है।

60. उपासकदशांग टीका पृ.–31

61. उपासकदशांग टीका –32, श्रावकप्रज्ञप्ति टीका 159, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 14/34

62. उवासगदसाओ 1/16

63. उवासगदसाओ 1/48

64. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग 2, पृ.–282

65. उपासकदशांग टीका पृ. –32, सर्वार्थसिद्ध 7/28, श्रावकप्रज्ञप्ति टीका 2/73
66. उपासगदसाओ 1/49
67. उत्तराध्ययन सूत्र 9/48
68. ठाणांग सूत्र 3/1/113
69. उवासगदसाओ 1/21–27
70. हिरण्य–सुवर्ण में रत्न मणियों को भी गिना जाता है। लाटी संहिता 5/105–106
71. सूत्रकृतांग सूत्र छठा अध्ययन
72. दशवैकालिक–सूत्र 4/16, उत्तराध्ययन–सूत्र अध्ययन 19, मूलाचार 112–113, भगवाती आराधना 6–1186 गाथा एवं 6–1207 गाथा।
73. उत्तराध्ययन–सूत्र 17,16
74. चरित्रपाहुड – 22
75. आचार–सार 5–70
76. अमृतचन्द्र, आचार्य पुरूषार्थसिद्ध्युपाय–136
77. घासीलालजी, आचार्य उपासकदशंग सूत्र टीका।
78. उवासगदसाओ 1/50
79. महाप्रज्ञ, आचार्य, महावीर का अर्थशास्त्र, पृ.–47
80. भगवती सूत्र शतक 7, उद्देशक 2
81. उवासकदसाओ 1/22–38
82. उत्तराध्ययन सूत्र 1/16
83. उवासगदसाओ 1/51
84. 'सचित्तहारं खलु सचेतनं मूल कन्दाकिम्'– श्रावकप्रज्ञप्ति टीका– 286
85. उवासगदसाओ 1/51
86. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग 2, पृ.–287
87. उपासकदशांग टीका, पृ.–39
88. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–2, पृ.–288
89. उपासकदशांग टीका, पृ. 39, योग शास्त्र 3/104, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र 9/3/340 – अन्तिम अध्याय में स्फोट–कर्म और खनन पर विचार
90. उपासकदशांग टीका पृ.–39–40, योगशास्त्र 3/106, त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र 9/3/341
91. योगशास्त्र 3/107, त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र 9/3/342
92. जैन सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–2, पृ.–288
93. योगशास्त्र 3/109, त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र 9/3/344
94. उपासकदशांग टीका पृ.–40, योग शास्त्र 3/108, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र 9/3/344
95. योगशास्त्र 3/110, त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र 9/3/345
96. उपासकदशांग टीका पृ.–40, योग शास्त्र 3/111, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र 9/3/346
97. योगशास्त्र 3/111, त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र 9/3/346
98. योगशास्त्र 3/112, त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र 9/3/347

99. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–2, पृ.289। प्रो. प्रेमसुमन जैन के आलेख 'भ. बुद्ध की शिक्षाओं का सामाजिक सरोकार' के अनुसार दीघनिकास (द्वितीय भाग) में भी इन व्यापारों का निषेध है।

100. उपासकदशांग (1/43) और आवश्यक सूत्र में चार प्रकार– अवज्झाणायरियं, पामायायरियं, हिंसप्पयाणं, पाव–कम्मोवएसे; और रत्नाकरण्डश्रावकाचार (75), कार्तिकेयानुप्रेक्षा (43 से 47), सर्वार्थसिद्धि (7/21) आदि में इन चार के अतिरिक्त दुःश्रुति का उल्लेख भी है।

101. उवासगदसाओ 1/48

102. आवश्यक सूत्र– नौवाँ व्रत। रत्नकरण्डश्रावकाचार (97) में कहा गया कि सामायिक तीन करण तीन योग से की जानी चाहिये

103. अमर मुनि, उपाध्याय, सामायिकसूत्र एवं अन्य सामायिकसूत्र की पुस्तकें।

104. उपासगदसाओ 1/53, तत्वार्थ सूत्र 7/28

105. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–2, पृ.–294

106. योगशास्त्र 5/115–116, आवश्यक मलयगिरी टीका 4/43

107. आवश्यकसूत्र– दसवाँ व्रत।

108. आत्मारामजी, आचार्य, उपासकदशांग टीका, पृ.–80

109. रत्नकरण्डश्रावकाचार 5/3–4, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 18/5–6, सागारधर्मामृत 5/26

110. आवश्यकसूत्र ग्यारहवाँ व्रत।

111. उत्नकरण्डश्रावकाचार 109

112. आवश्यक सूत्र 12वाँ व्रत, आचार्य अभयदेव और आचार्य घासीलाल जी कृत उपासकदशांग टीका

113. जैन, सागरमल (डॉ.) जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भााग–2, पृ.–301 एवं जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप– आचार्य देवेन्द्र मुनि पृष्ठ–345

114. तत्वार्थ सूत्र 7/39

115. उवासगदसाओ 1/56, तत्वार्थ सूत्र 7/36

116. देवेन्द्र मुनि, आचार्य, जैन धर्म में दान एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.–119

117. दशवैकालिक 9/2/23, प्रश्नव्याकरण 2/3, उत्तराध्ययन 17/22

118. मुनि भुवनेश (डॉ.) जैन आगमों के आचार दर्शन और पर्यावरण संरक्षण का मूल्यांकन, पृष्ठ–40

119. उत्तराध्ययन सूत्र 1/16

120. महाप्रज्ञ, आचार्य, महावीर का अर्थशास्त्र पृ. – 24–25

121. अप्पणो य परं नालं कुतो अन्नाणुसासिउं – सूत्रकृतांग सूत्र 1/1/2/17

122. स्थानांग सूत्र 4/2

123. अमोलक ऋषि, आचार्य, 'जैन तत्व प्रकाश' पृ.–253 तथा आवश्यक सूत्र की पाँचवीं वन्दना।

124. सूत्रकृतांग 6/23

125. जनगणना आयोग द्वारा प्रकाशित आँकड़े तथा दैनिक भास्कर 20 सितम्बर, 2004

126. माल्थस, टी.आर. 'एन एसे ऑन दि प्रिंसिपल ऑफ पोपुलेशन' प्रस्तावना।

127. झुनझुनवाला, भरत (अर्थशास्त्री), राजस्थान पत्रिका (अगस्त, 2008) में प्रकाशित लेख 'पर्यावरण की समस्या का मूल कारण' सम्पादकीय पृष्ठ

128. नफा–नुकसान (जयपुर) 31 दिसम्बर–08 से 2 जनवरी–2009 तक का अंक पृ.–2

129. महाप्रज्ञ, आचार्य 'महावीर का अर्थशास्त्र' पृ.–110

130. नफा–नुकसान, जयपुर (आर्थिक अखबार) 9–10 फरवरी, 2009, पृष्ठ–8

131. नफा–नुकसान, जयपुर (आर्थिक अखबार) 9–10 फरवरी, 2009, पृष्ठ–8

132. प्रश्नव्याकरण 2/4

133. आवश्यक सूत्र में छठवाँ आवश्यक।

iape v/;k;

vkxfed vk/kqfud vFkZ'kkL=h; fopkjksa esa lg&lac/k

ifjPNsn izFke

Hkxoku egkohj dk vFkZ'kkL=h; O;fDrRo

- वर्धमान व्यक्तित्व
- स्वावलम्बन की सीख व नारी उद्धार
- कौटुम्बिक प्रेम व संयमित जीवन

ifjPNsn f}rh;

vifjxzg dk vFkZ'kkL=

- प्रबंधशास्त्र का मूलव्रत
- जैन परम्परा की विश्व को देन
- व्यक्तित्व रूपान्तरण से व्यवस्था में परिवर्तन

ifjPNsn r`rh;

tSu xzUFk o ledkyhu vkfFkZd fpUru

- आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता
- इच्छा परिमाण के प्रमुख सूत्र
- जैन अहिंसात्मक अर्थशास्त्र तथा समकालीन आर्थिक विचार

v/;k; i¡pe

vkxfed vk/kqfud vFkZ'kkL=h; fopkjksa esa lglac/k

मानव जीवन गतिशील है। उसके मस्तिष्क में नये–नये विचारों का उदय होता है। ये विचार प्रकाशित होकर अन्य विचारों को आंदोलित करते हैं। फलस्वरूप समाज में विचारों के आदान–प्रदान एवं संघर्ष, समन्वय का क्रम चलता रहता है। इसी विचार मंथन में से विचार नवनीत निकालने का कार्य युग पुरूष किया करते हैं।

कहा जाता है कि समय बलवान होता है। यह सही है कि समय का बल अधिकांशतः लोगों को अपने प्रवाह में बहाता है, किन्तु समय को अपने पीछे करने वाले ही युग पुरूष होते हैं, जो समय के चक्र को दिशा प्रदान करते हैं। अर्थशास्त्र के विकास पर महापुरूषों के चिन्तन की छाप है तो समय का प्रवाह भी और आज जब हम इस संदर्भ में विचार करें तो सबसे पहले यह जानना जरूरी हो जाता है कि अतीत में महापुरूषों एवं विद्वानों ने इस संबंध में अपना क्या विचार सार दिया है। यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि वर्तमान युग के संदर्भ में और विचारों के नवीन परिपेक्ष्य में आज हम आर्थिक चिन्तन का कौनसा स्वरूप निर्धारण करें एवं विश्लेषित करें।

आगमों में वर्णित जीवन दर्शन ढ़ाई हजार वर्ष प्राचीन है। उसमें व्यक्ति एवं समाज का अर्थशास्त्र है। आगम युग का अर्थतंत्र और आगमिक जीवन मूल्यों की स्थापना और प्रतिष्ठा है, वे तत्कालीन समय से संदर्भित होने के बावजूद त्रैकालिक है। इसीलिए आगम साहित्य आज भी संसार को उसी तरह प्रकाशित करता है जैसे सूर्य।[1]

ifjPNsn iFke

Hkxoku egkohj dk uSfrd'khy O;fDrRo

वर्धमान भगवान महावीर क्रांतिकारी व्यक्तित्व लेकर प्रकट हुए। उनमें स्वस्थ समाज निर्माण और आदर्श व्यक्ति निर्माण की तड़प थी। यद्यपि स्वयं उनके लिए समस्त ऐश्वर्य और वैलासिक उपादान प्रस्तुत थे तथापि उनका मन उनमें नहीं लगा। वे जिस बिन्दु पर व्यक्ति और समाज को ले जाना चाहते थे, उसके अनुकूल परिस्थितियाँ

उस समय नहीं थी। धार्मिक जड़ता और अंध श्रद्धा ने सबको पुरूषार्थ रहित बना रखा था, आर्थिक विषमता अपने पूरे उभार पर थी। जाति भेद और सामाजिक वैमनस्य समाज देह में घाव बना चुके थे। गतानुगतिकता का छोर पकड़े सब चले ही जा रहे थे। इस दिशाविहीन समाज को दिशा दिखाने का दायित्व महावीर ने निभाया। राजघराने में जन्म लेने के उपरान्त भी उन्होंने अपने दायित्व को समझा, एक नेता के रूप में वे सामने आए, जिसने सबको जागृत कर दिया, अपने–अपने कर्तव्यों का भान करा दिया और व्यक्ति तथा समाज को भूलभुलैया से बाहर निकाल कर सही दिशा निर्देश ही नहीं दिए वरन् उस रास्ते का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया।[2]

Hkxoku egkohj

उपर्युक्त दृष्टिकोण के परिपेक्ष्य में यह विचारणीय प्रश्न है कि वर्तमान नेतृत्व भगवान महावीर से क्या सीखे? आज के अधिकतम नेता श्रद्धा या आदर के पात्र नहीं रह गये। स्वतन्त्रता के पूर्व नेता को अधिकतर अपने व्यक्तिगत गुणों के आधार पर नेतृत्व प्राप्त होता था और आज नेता चुनाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। चुनाव सब व्यक्ति अच्छे व गुणवान हो, यह प्राथमिकता तो है ही नहीं। कोई भी दल बहुमत प्राप्त कर किसी को भी अपना नेता बना सकता है। आज के नेतृत्व के सम्बन्ध में अधिकतर का जनमानस यही है कि वह कुर्सी प्रेमी है। आज के नेताओं की कथनी और करनी में कोई समानता नहीं। भगवान महावीर ने साधना प्रारम्भ करने से पूर्व ही यह निर्णय ले लिया था कि जब तक साधना पूर्ण न हो तब तक किसी को उपदेश नहीं

दिया जाएगा और उन्होंने जिस सत्य का साक्षात्कार किया उसी का उपदेश साधना पूर्ण होने के पश्चात् दिया। यदि यह कहा जाए कि उन्होंने जो किया उसी का उपदेश दिया तो अनुचित नहीं होगा। उनकी वाणी और कर्म में साम्य रहा है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने देश में सात्विक जीवन का वातावरण निर्मित किया। भगवान महावीर का जीवन इतना सर्वांगपूर्ण है कि आज का नेतृत्व यदि उससे शिक्षा ग्रहण करे तो इस धरा को स्वर्ग बनाया जा सकता है।

vkfFkd Økfr

महावीर स्वयं राजकुमार थे। धन संपदा और भौतिक वैभव की रंगीनियों से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध था इसीलिए वे अर्थ की उपयोगिता को और उसकी महत्ता को ठीक–ठीक समझ सके थे। उनका निश्चित मत था कि सच्चे जीवनानंद के लिए आवश्यकता से अधिक संग्रह उचित नहीं। आवश्यकता से अधिक धन संग्रह करने से दो समस्याएँ उठ खड़ी होती है। पहली समस्या का सम्बन्ध व्यक्ति से है, दूसरी का समाज से। अनावश्यक संग्रह करने पर व्यक्ति लोभवृत्ति की ओर अग्रसर होता है और समाज का शेष अंग उस वस्तु विशेष से वंचित रह जाता है। फलस्वरूप समाज में दो वर्ग हो जाते हैं– एक सम्पन्न और दूसरा विपन्न और दोनों में संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। कार्ल मार्क्स ने इसे वर्ग संघर्ष की संज्ञा दी है और इसका हल हिंसक क्रांति में ढूंढ़ा है।

परन्तु महावीर ने इस आर्थिक वैमनस्य को मिटाने के लिए अपरिग्रह की विचारधारा रखी। इसका सीधा अर्थ है– ममत्व को कम करना, अनावश्यक संग्रह न करना। अपनी जितनी आवश्यकता हो उसे पूरा करने की दृष्टि से प्रवृत्ति को मर्यादित और आत्मा को परिष्कृत करना जरूरी है। मार्क्स की आर्थिक क्रांति का मूल आधार भौतिक है, उसमें चेतना को नकारा गया है जबकि महावीर की यह आर्थिक क्रांति चेतना मूलक है। इसका केन्द्र बिन्दु कोई जड़ पदार्थ नहीं अपितु व्यक्ति स्वयं है।

o)eku

सब जानते हैं कि सत्य एक सतत वर्द्धमान सापेक्ष दृष्टि है। वर्द्धमान अर्थात् नामान्तर से प्रगतिशीलता, वर्द्धमान रह कर ही सत्य को पाया जा सकता है। सत्य एक

अत्यन्त संवेदनशील अनुभूति है। इसे पाने के लिए सतत वर्द्धमान अर्थात् प्रगतिशील होना आवश्यक है। जड़मति सत्य को न ही प्राप्त कर सकता। .kek yk, l0olkg.k& लोक में सारे प्रयोगधर्मी साधकों को नमस्कार अर्थात उन सभी साधुओं को नमन जो सत्य की खोज में निकल पड़े हैं, यानि लोक के समस्त सत्यार्थियों को वंदन, उनमें उत्पन्न वर्द्धमानता को वंदन। भगवान महावीर अहिंसा के सूर्य और सर्व समृद्धि के आलोक पुंज थे, जैसे सूर्योदय से पूर्व ही उजाला होने लगता है वैसे ही उनके गर्भ में आते ही नव परिवर्तन और पुर्नजागरण के संकेत मिलने लग गए, फलस्वरूप उनका नाम रखा गया वर्द्धमान। वर्द्धमानता को संदर्भ उनकी सिद्धार्थता के आरम्भ से है।[3]

dkVfEcd ie

महावीर व बुद्ध में यहाँ असमानता है। महावीर अपने वैराग्य को पत्नी, माँ, बहन व पुत्री पर थोप कर चुपचाप गृहत्याग कर नहीं गए। गौतम बुद्ध तो अपनी पत्नी यशोधरा व पुत्र राहुल को आधी रात के समय सोया हुआ ही छोड़कर चले गये थे। सम्भवतः वे पत्नी और पुत्र के आँसुओं का सामना करने में असमर्थ रहे हों। पर बुद्ध ने मन में यह नहीं विचार किया कि प्रातः नींद खुलते ही पत्नी व माता की क्या दशा होगी? वर्धमान ने यह पहले ही संकल्प कर लिया कि वे माता–पिता के जीवित रहते वे प्रवज्या अंगीकार नहीं करेंगे।[4] महावीर का यह संकल्प आज भी उन सबको प्रेरणाएँ देता है जो अपने माता–पिता व बड़े बुजुर्गों की अवहेलना करते हैं। तीर्थंकर महावीर ने न केवल अपने संकल्प को निष्ठा से निभाया बल्कि उसे और आगे बढ़ाया। माता–पिता के स्वर्गवास के बाद जब उन्होंने अपने अग्रज नन्दीवर्धन से दीक्षा की अनुमति चाही तो नन्दीवर्धन ने उन्हें कुछ समय और रूक जाने को कहा। वर्धमान ने बड़े भाई की भावना का सम्मान करके भ्रातृत्व का परिचय भी दिया।[5]

माता–पिता और बड़े–बुजुर्गों की उपेक्षा तथा भाईयों के आपसी मन–मुटाव से अनेक कुटुम्ब टूट कर बिखर जाते हैं और ऐसे कुटुम्ब के सदस्य जीवन के सच्चे सुख से वंचित रह जाते हैं। वे जाने–अनजाने समृद्धि की सुखमय राह छोड़ देते हैं। बड़े बुजुर्गों के अनादर से पारिवारिक सामाजिक कष्ट बढ़ते हैं और अन्ततः उसका विपरीत

प्रभाव आर्थिक उन्नति पर भी होता है। भगवान महावीर का जीवन कौटुम्बिक प्रेम का अमर संदेश देता है।

l;fer thou

जैन धर्म में संयम और तप को बहुत प्रधानता दी गई है। इन्द्रियों और मन पर विजय प्राप्त करना ही संयम है और इच्छाओं का निरोध करना ही तप है। इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त है। तृष्णा का कोई पार नहीं है अतः इच्छाओं पर निरोध बहुत आवश्यक है। मन, वचन, कर्म तीनों पर संयम बहुत आवश्यक है। महावीर ने कहा केवल वाणी द्वारा उपदेश या कथनी कभी उचित लक्ष्य तक नहीं ले जाती, उसके लिये आवश्यक है कि वाणी द्वारा कुछ भी कहने के पहले वक्ता का चरित्र शुद्ध हो, उसका आचरण पवित्र हो। जिसने मन, वचन और कर्म को संयत नहीं रहा वो जो कुछ कहेगा अप्रभावशाली होगा। महावीर का जीवन भी व्रत, नियम, संयम और सादगी से अनुप्रणित था। वे अचित्त जल और अचित्त आहार ग्रहण करते थे। रात्रि भोजन नहीं करते थे। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रतों का सहज और सूक्ष्म रूप से पालन करते थे।[6] आचारांग में कहा गया कि गृहस्थ जीवन के अन्तिम दो वर्षों में भगवान महावीर सचित्त जल नहीं पीते थे।[7] उनका सारा व्यवहार क्रोधादि कषायों से रहित था। उनकी जीवन शैली में भोगवाद का अभाव था। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से संयमित जीवन का बहुत मूल्य है।

LokoyEcu dh f'k{kk

वर्धमान के वर्षीदान और वस्त्रदान की चर्चा पहले की जा चुकी है। साधना काल में उनकी क्रान्तधर्मिता नये–नये रूपों में प्रकट होने लगी। प्रथम उपसर्ग के बाद देवराज इन्द्र भगवान से कहता है कि साधना काल में आने वाले कष्टों के निवारणार्थ वह उनकी सेवा में रहना चाहता है। भगवान समाधान करते हुए कहते हैं कि परावलम्बी होकर लक्ष्य प्राप्ति सम्भव नहीं है।[8] आचारांग सूत्र में भगवान महावीर के लिए कहा गया है कि वे कष्टों से बचने के लिए किसी की शरण में नही जाते थे–

xPNb tk;i= vlj.kk,A[9]

उनका मत था कि दूसरों की शरण में रहकर अपने आप को नहीं पाया जा सकता। जीवन के समरांगण में आगे बढ़ने वालों के लिए स्वावलम्बन मुख्य शर्त है। बेरोजगारी घटाने और उद्यमिता बढ़ाने के लिए स्वावलम्बन और आत्म निर्भरता स्वर्ण–सूत्र है।

vkthfodk dk pkV ugh igqpkuk

विहार करते हुए भगवान मोराक सन्निवेश पहुँचे। उनकी उत्कृष्ट साधना और अपूर्व तेजस्विता के समक्ष जनता श्रद्धाभिभूत थी। लोग आते और भगवान को वन्दना कर लौट जाते। इस सन्निवेश में अच्छनदक जाति के ज्योतिषी रहते थे। ज्योतिष के आधार पर उनकी जीविका चलती थी। भगवान के सहज रूप से बढ़ते प्रभाव से अच्छन्दकों का प्रभाव क्षीण होने के साथ ही उनकी जीविकार पर भी इसका विपरीत असर हुआ। इस पर अच्छन्दक ज्योतिषियों ने भगवान से निवेदन किया – 'भगवन्! आपका व्यक्तित्व अपूर्व है, आप अन्यत्र पधारें, क्योंकि आपके यहाँ बिराजने से हमारी जीविका नहीं चलती है। भगवान महावीर बिना विलम्ब किये वहां से विहार करके आगे बढ़ जाते हैं।[10] भगवान की अहिंसा और करूणा इतनी गहरी थी कि किसी की आजीविका में तनिक व्यवधान भी उनके लिए असंभव था। यह घटना व्यक्ति को कई प्रेरणाएँ देती है। आर्थिक जगत में गला काट अस्वस्थ स्पर्धा से बचना, किसी की आजीविका में बाधक नहीं बनना और किसी की आजीविका व रोजगार में सहयोग करना। बढ़ते आर्थिक उपनिवेशवाद को रोकने के लिए भी यह घटना अत्यन्त प्रेरक है।

egkohj dh nf"V e f'k{kk vkj f'k{kkFkh

भगवान महावीर युग दृष्टा थे। उनके उपदेशों का गंभीर अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जो उनकी केवल ज्ञानी दृष्टि से बच गया हो और जिन पर चलकर आधुनिक काल की अनेकानेक समस्याओं का सीधा व्यवहारिक और आदर्श समाधान प्राप्त न किया जा सकता हो।

f'k{kk& भगवान महावीर के अनुसार शिक्षा मानव को आत्म बोध के माध्यम से मुक्ति की ओर अग्रसर करने वाली प्रक्रिया है, जिसे सूक्ति रूप में ^lk fo|k ;k foePp,* भी कहा जा सकता है। भगवान महावीर ने कहा 'शिक्षा व्यक्ति को अर्हंत तुल्य बनाने

की प्रक्रिया है।' अर्हन्त वे महान आत्मा होती है जिनमें राग, द्वेष, अज्ञान, मिथ्यात्व, दान, अन्तराय, वीर्य अन्तराय, भोग अन्तराय, उपभोग अन्तराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, काम, निद्रा आदि दूषणों का नितान्त अभाव होता है।

यदि शिक्षा को इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए ढ़ाला जाए तो यह संसार जिसमें आज पाप, व्याभिचार, अनाचार, लम्पटता, दुष्टता इत्यादि का ही बोलबाला है, स्वर्ग बन सकता है। यहाँ पर यह संशय किया जा सकता है कि यह तो एक काल्पनिक और अव्यवहारिक उद्देश्य है तो इसका जवाब है कि चलने वाली चींटी भी मीलों की दूरी तय कर लेती है और न चलने वाला गरूड़ भी जहाँ बैठा है वहीं बैठा रह जाता है। यद्यपि हर व्यक्ति अर्हन्त नहीं बन सकता, किन्तु उद्देश्य तो हमें महान रखना ही पड़ेगा। भगवान महावीर ने कहा विकार मुक्त शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है। भगवान महावीर ही शिक्षा एकांगी ना होकर सर्वांगी है, वे केवल आत्मा के विकास पर ही बल नहीं देते प्रत्युत शरीर और मस्तिष्क का विकास भी परमावश्यक मानते हैं।

आज हमारा दुर्भाग्य है कि विद्या और शिक्षा के नाम पर हमें ज्ञान के स्थान पर अज्ञान प्रदान किया जाता है क्योंकि ज्ञान तो वह होता है जो हर विषय पर वस्तु का निरप्रेक्ष रूप विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत करें। किन्तु आज कहाँ ऐसा होता है? आज तो एक रंग विशेष में रंगा हुआ एक पक्षीय विकृत रूप ही निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए छात्रों के मस्तिष्क में भरा जाता है, परिणामतः सम्यक ज्ञान के अभाव में हमारा दर्शन भी सम्यक् नहीं होता और तद्‌नुसार हमारा व्यवहार भी सम्यक् नहीं रह पाता।

f'k{kd& भगवान महावीर के शिक्षा विचारों और उपदेशों का विश्लेषण करने के पश्चात् अब देखें कि उन्होंने शिक्षक की भी कितनी आदर्श परिभाषा दी है–

महावृत धरा धीरा भैक्ष मात्रोप जीविनः
सामयिकस्था धर्मोपदेशका गुखो मताः

जो भिक्षा मात्र से वृत्ति करने वाले सामायिक व्रत में सदैव रहकर धर्म का उपदेश देते है, वही पुरूष गुरू कहे जाते हैं।

निव्वाण साहए जोए जह्मा साहून्ति साहुणो
समा य सव्व भुएसु तह्मा ते भाव साहुणो।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य त्याग आदि महाव्रतों का मन, वचन, कर्म से स्वयं पालन करने वाला, दूसरों से कराने वाला तथा अन्य करने वालों की स्तुति करने वाला ही गुरू कहा जाता है।

इन दो परिभाषाओं में जिस बात पर विशेष बल दिया है वह यह है कि शिक्षक को भौतिकतावादी न होकर सादा, त्यागी ओर व्रती होना चाहिए तथा उन सभी बातों और आदर्शों का स्वयं पालन करना चाहिये जिनकी वह अपने छात्रों से अपेक्षा करता हैं आज हमारा दुर्भाग्य हे कि हमारे शिक्षक पूरी तरह से भौतिकवादी हो गए है तथा उनकी कथनी व करनी में वांछित तालमेल नहीं है।

f’k{kkFkh& भगवान महावीर ने जहाँ एक ओर आदर्श शिक्षक का स्वरूप निर्धारित किया है, वहीं आदर्श शिक्षार्थी का स्वरूप भी वर्णित किया है, क्योंकि शिक्षक और शिक्षार्थी शिक्षा रूपी गाड़ी के दो पहिये है और दोनों के आदर्श व्यवहार से ही आदर्श शिक्षा संभव है।

शिक्षार्थी का सर्वप्रथम गुण विनय है। विनय के अभाव में कोई भी आदर्श शिष्य नहीं बन सकता और ज्ञानोपार्जन नहीं कर सकता। शिक्षार्थी को श्रद्धावान भी होना चाहिये तथा पढ़ने का संपूर्ण दायित्व शिक्षक पर न सौंप कर स्वयं भी पढ़ने का, सीखने का सच्चा उद्यम करना चाहिये। उसका यह सतत प्रयास होना चाहिये कि वह जो कुछ भी सीख रहा है उस पर चलते हुए शनैः शनैः अर्हन्त तुल्य बनने में सफलता प्राप्त करें।

यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि भगवान महावीर द्वारा उपदेशित शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी के सम्बन्ध में जिस विचारधारा का वर्णन किया गया है। वह अत्यन्त आदर्शवादी होते हुए भी इतनी व्यवहारिक है कि यदि उस पर चला जाए तो आज शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त समस्याओं का निश्चित समाधान ढूँढ़ा जा सकता है।

Hkxoku egkohj dh nf"V e: ukjh

महावीर का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जहाँ नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। ऐसे समय में महावीर द्वारा नारी का खोया सम्मान दिलाना एक क्रांतिकारी कदम

था। दीक्षा लेने के उपरान्त महावीर ने नारी जाति को मातृ–जाति के नाम से संबोधित किया। उस समय की प्रचलित लोकभाषा अर्थमागधी प्राकृत में उन्होंने कहा कि पुरूष के समान नारी को धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए। उन्होंने बताया कि नारी अपने असीम मातृ–प्रेम से पुरूष को प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर समाज का सर्वाधिक हित साधन कर सकती है।

उन्होंने समझाया कि पुरूष व नारी की आत्मा, एक है अतः पुरूषों की तरह स्त्रियों का भी विकास के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। पुरूष व नारी की आत्मा में भिन्नता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः नारी को पुरूष से हेय समझना अज्ञान, अधर्म व आतर्किक है।

उन्होंने दासी प्रथा, स्त्रियों का व्यापार एवं क्रय विक्रय रोका। महावीर ने अपने बाल्यकाल में कई प्रकार की दासियों जैसे धाय, क्रीत दासी, कुल दासी, ज्ञाति दासी आदि की सेवा प्राप्त की थी व उनके जीवन से भी परिचित थे। इस प्रथा का प्रचलन न केवल सुविधा की खातिर था, बल्कि दासियाँ रखना वैभव व प्रतिष्ठा की निशानी समझा जाता था। जब मेघकुमार की सेवा सुश्रुषा के लिए नाना देशों से दासियों का क्रय–विक्रय हुआ तो महावीर ने खुलकर विरोध किया और धर्म सभाओं में इसके विरूद्ध आवाज बुलन्द की।

जब महावीर ने भिक्षुणी संघ की स्थापना की तो उसमें राजघराने की महिलाओं के साथ दासियों, गणिकाओं–वेश्याओं को भी पूरे सम्मान के साथ दीक्षा देने का विधान रखा। पुरूष हेय दृष्टि से देखी जाने वाली वही स्त्री, भिक्षुणी संघ में दीक्षित हो जाने के पश्चात् वंदनीय हो जाती थी। नारी के पति पुरूष का यह विचार परिवर्तन युग–पुरूष महावीर की देन है। चन्दनबाला का उद्धार भगवान महावीर के साधनाकाल की सुप्रसिद्ध घटना है। साम्राज्यवादी लिप्सा के परिणामस्वरूप राजकुमारी चन्दनबाला का दासी तरह विक्रय हुआ था।[11] यह घटना 1. साम्राज्यवाद 2. दास–दासी प्रथा 3. स्त्री पुरूष असमानता 4. सामाजिक असमानता पर करारी चोट करती है। ये चारों बिन्दु अर्थशास्त्र में सदैव विमर्शनीय रहे हैं। आज जहाँ स्त्रियों के सशक्तिकरण व समानता

की बात हो रही है भगवान महावीर ने ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व ही नारी जाति को पुरूष के समक्ष खड़ा करने के प्रयास प्रारंभ कर दिये थे।

lerk dk lkekT;&

कैवल्य प्राप्ति के साथ ही भगवान महावीर का तीर्थंकरत्व प्रकट हो गया। समवसरण में उनकी देशनाएँ सुननके लिए मानव ही नहीं, देवगण और पशु–पक्षी भी उपस्थित होते थे। समवसरण समता और समानता प्रकृति और पर्यावरण, अभय और मैत्री के जीवन्त रूप होते थे। कैवल्य प्राप्ति के दूसरे ही दिन उन्होंने द्रव्य यज्ञ और कर्मकाण्ड की विषमतामूलक व्यवस्था को अपने समता के विराट साम्राज्य में बुलाकर उसे भी समवसरण के परम समतामय वातावरण में समाहित कर लिया था।[12] उन्होंने समाज में उपेक्षित वर्गों के व्यक्तियों को भी अपने धर्म संघ में दीक्षित किया और परमेष्ठी पद पर आरूढ किया। गृहस्थ धर्म में भी सभी वर्णों, वर्गो, गौत्रों और जातियों के व्यक्तियों का समान स्थान मिला। उनके संघ में अभिवादन का आधार चरित्र (दीक्षा–पर्याय) है, उम्र जाति या सांसारिक पद नहीं। तत्कालीन समाज में ये घटनाएँ क्रान्तिकारी थीं।

tuHkk"kk dk i;kx

उस सयम कुछ लोगों द्वारा किसी भाषा विशेष को महत्व देकर कुछ लोगों का अनावश्यक शोषण किया जा रहा था। इस कारण से समाज का एक भाग शास्त्र ज्ञान और अध्ययन से वंचित था, महिलाओं को भी आगे बढ़ने की स्वतन्त्रता नहीं थी। तत्कालीन जन बोली/ जन भाषा प्राकृत में भगवान महावीर ने उपदेश देकर जन–जन में ज्ञान विज्ञान और सदाचार की नव चेतना जगाई। उन्होंने जनता के सांस्कृतिक उत्थान के लिए प्राकृत भाषा का उपयोग अपने उपदेशों में किया।[13] पिछली सदी से देश में भाषा एक बहुत बड़ा मुद्दा रहा है। भाषा के साथ धर्म, संस्कृति, परम्परा, व्यवसाय, रोजगार जैसी अनेक बातें जुड़ी हैं। जन भाषा के प्रयोग के माध्यम से भगवान महावीर लोक संस्कृति व संस्कारों की सरिता भी प्रवाहित करते हैं। जनभाषा के माध्यम से उन्होंने ऐसी जनता को शिक्षित, समझदार, योग्य व समर्थ बनाया जिसे आम तौर पर नासमझ, अशिक्षित और मूढ़ समझा जाता था। आमजन का आत्म सम्मान भी प्राकृत की

प्रतिष्ठा से बढ़ गया था। मानवीय एकता, सामाजिक समता और सर्वांगीण उन्नति की दिशा में उनकी भाषा क्रान्ति का ऐतिहासिक योगदान है।

वर्तमान परिस्थितियों ने आध्यात्मिकता के विकास के लिए अच्छा वातावरण तैयार कर दिया है। आज आवश्यकता इस बात है कि भगवान महावीर के विचारों का उपयोग सम सामायिक जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावकारी तरीके से किये जाए। वर्तमान परिस्थितियाँ इतनी भयावह एवं जटिल बन गई है कि मनुष्य दिग्भ्रमित हो गया है ऐसे में महावीर की वाणी उसका प्रथ प्रदर्शित कर सकती है। उसके मानसिक तनाव को कम करने के साथ–साथ उसमें आत्मविश्वास स्थिरता, धैर्य, एकाग्रता जैसे सद्भावों काा विकास करने में योगदान दे सकती है।

ifjPNn f}rh;

vifjxg dk vFk'kkL=

भगवान महावीर ने किसी नवीन धर्म का प्रवर्तन नहीं किया, बल्कि पूर्ववर्ती 23 तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित धर्म को पुनर्जीवित करके उसे सशक्त एवं युगानुकूल बनाया। महावीर के विचार और सिद्धान्त में अहिंसा, अपरिग्रह प्रमुख है। अपरिग्रह का सिद्धान्त भी पूर्ववत् मानसिक आसक्ति और विरक्ति पर ही आधारित है।[14] एक नंगा भिखारी भी महापरिग्रही हो सकता है वहीं एक सम्राट भी अल्पपरिग्रही हो सकता है। यहाँ अपरिग्रह पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया जाएगा।

vFk'kkL= dk ey or

अपरिग्रह आगमिक अर्थशास्त्र का केन्द्रिय सिद्धान्त है। अहिंसा की साधना के बगैर अपरिग्रह की साधना नहीं हो सकती और अपरिग्रह के बगैर अहिंसा के पथ पर चलना भी अत्यन्त दुष्कर है। अपरिग्रह अहिंसा का सामाजिक और आर्थिक पक्ष है। परिग्रह के कारण से ही व्यक्ति हिंसा करता हैं, चोरी, असत्य, आचरण और अनाचारण का सेवन करता है।[15] इसलिए भगवान महावीर कहते हैं – cgfi y) u fug] ifjXxgkvk vlik.k volfôTtk। अधिक मिलने पर भी संग्रह वृत्ति का भाव नहीं रखना चाहिये तथा परिग्रह वृत्ति से अपने को दूर रखना चाहिए।[16] जो संग्रह वृत्ति में ही दिन–रात व्यस्त रहते हैं, वे संसार में अपने प्रति वैर बढ़ाते हैं।[17] सचमुच! संसार में परिग्रह के समान प्राणियों के लिए दूसरा कोई जाल या बन्धन नहीं है।[18] अर्थ, अनेक अनर्थों व समस्याओं को पैदा करता है।[19]

प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच परिग्रह इतना खतरनाक है? आगमकार इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुच्छा परिग्गहों वुत्रो– वस्त्रुओं के प्रति ममत्व, मूर्च्छा और आसक्ति ही परिग्रह है।[20] मूर्च्छा का अर्थ है– जागरूकता का अभाव। मूर्च्छा में व्यक्ति हित–अहित और अच्छे बुरे का भेद नहीं कर पाता है। इसलिए भगवान महावीर ममत्व विसर्जन और निरासक्ति पर बहुत जोर देते हैं। जैन परम्परा ऐसे साधकों और महर्षियों की परम्परा है, जिन्होंने ममत्व और राग का विसर्जन कर दिया और वे

वीतराग कहलाये। राग परिग्रह का मूल है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि स्वयं की पकड़ होने पर 'पर' की पकड़ स्वतः छूट जाती है, यह स्थिति अपरिग्रह की है।[21]

संसार में अधिकांश झगड़ों अपराधों के मूल में परिग्रह की चेतना काम करती है। परिग्रह होता है तो समस्याएँ पैदा होती है। वस्तुतः समस्याओं का मूल मूर्च्छा का भाव है। एक गरीब व्यक्ति अपनी छोटी सी कुटिया में सुख की नींद सो सकता है और एक अमीर व्यक्ति उसकी अट्टालिका में भी चैन से नहीं जी पाता है। वस्तुओं के बढ़ जाने से गुणात्मक रूप से सुख नहीं बढता है। उत्तराध्ययन में भगवान महावीर कहते हैं– foÙk.k rk.k u yHk ieÙkA befEe yk, vknok ijRFkA धन व्यक्ति की रक्षा नहीं कर सकता, न ही उसे वह स्थायी सुख व तृप्ति देता है। इसलिए परिग्रह कितना ही क्यों न बढ़ जाये, उससे व्यक्ति दुख से मुक्त नहीं हो सकता।[22]

आधुनिक अर्थशास्त्र के सारे मापदण्ड धन–सम्पत्ति और बाहरी सुख–सुविधाओं पर आधारित हैं। इन मापदण्डों के आधार पर वह व्यक्ति में अनावश्यक व्यग्रता और विद्रोह पैदा करता है। इससे समाज में आवांछित होड़ा–होड़ी और संघर्ष का जन्म होता है।

vifjxg % tu ijEijk dh nu

भगवान महावीर ने जितना जोर अहिंसा पर दिया, सम्भवतः उससे अधिक ही अपरिग्रह पर दिया। भगवान पार्श्वनाथ के समय जैन परम्परा में चातुर्याम की व्यवस्था

थी। डॉ. दयानन्द भार्गव कहते है कि जैन परम्परा में पाँचवे व्रत के रूप में अपरिग्रह भगवान महावीर की देन है और भारतीय परम्परा में अपरिग्रह की अवधारणा जैन परम्परा की देन है।[23] अपरग्रिह के विकास के लिए जैन परम्परा में बहुविध विधान किये गये हैं। परिग्रह के परिसीमन के लिए अस्तेय, इच्छा परिमाण व्रत, लोभ विसर्जन, त्याग, सन्तोष, दान, अनासक्ति, आदि अनेक उपाय बताये गये हैं। दिगम्बर मुनि जीवन में तो वस्त्र को भी परिग्रह की कोटि में लिया गया। जैन परम्परा में परिग्रह–अपरिग्रह पर बहूत सूक्ष्मता से विचार किया गया। इसका भारतीय जन–जीवन, समाज और अर्थव्यवस्था पर हर युग में व्यापक असर हुआ। महात्मा गाँधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अपरिग्रह व्रत का ही रूप है।

vLr; vkj vifjxg

जैसा कि बताया गया परिग्रह असाक्ति का रूप है। आसक्ति तीन रूपों में प्रकट होती है– अपहरण (शोषण), संग्रह और भोग।[24] अपहरण और शोषण का उपचार अस्तेय व्रत में बताया गया है। परधन की इच्छा, परधन हरण, मूर्च्छा, तृष्णा, असंयम, कांक्षा, हस्त लघुता, स्तेनक, कूटतोल माप और बिना दी हुई वस्तु लेना– ये सब चोरी के ही रूप हैं।[25] अस्तेय व्रत की सूक्ष्मता का बोध कराते हुए भगवान महावीर कहते हैं– कोई वस्तु सचेतन हो या अचेतन, कम कीमत की हो या अधिक कीमत की, उसे उसके मालिक या धारक की आज्ञा के बगैर नहीं लेना चाहिये। श्रमण को तो दाँत कुरेदने का तिनका तक बिना आज्ञा के ग्रहण नहीं करना चाहिये।[26] महात्मा गांधी कहते है कि अपरिग्रह को अस्तेय व्रत से सम्बन्धित समझना चाहिये। वास्तव में चुराया हुआ न होने के बावजूद अनावश्यक संगह चोरी जैसा माल हो जाता है। किसी चीज का बिना आवश्यकता के संग्रह करना, चोरी–तुल्य माना जाएगा। सत्यशोधक अहिंसक परिग्रह नहीं कर सकता।[27]

deBrk vkj vLr;

खान–पान में सम्बन्ध में भी व्यक्ति अस्तेय व्रत का उल्लंघन करता है। जिस चीज की उसे जरूरत नही हैं, फिर भी उसे वह खाता है। वह अपनी आवश्यकताओं को बढ़ा–चढ़ा कर बताता है और अनजाने में चोर बन जाता है। अस्तेय व्रती को अपनी

आवश्यकताएँ निरन्तर घटाते रहना चाहिये। संसार की अधिकतर दरिद्रता अस्तेय व्रत के भंग से हुई है।[28] बिना परिश्रम किये अर्थ प्राप्ति की आशा और किसी तरह अर्थप्राप्ति करना अस्तेय व्रत के अनुरूप नहीं है। दुनिया की कई विषमताएँ और समस्याएँ शरीर–श्रम नहीं करने से पैदा हुई हैं। इसलिए अस्तेय व्रत शरीर परिश्रम द्वारा सम्पत्ति निर्माण पर जोर देता है।[29] यह व्रत सम्पन्न घरानों के व्यक्तियों को भी अच्छे कार्यों में निष्काम भाव से सक्रिय रहने की प्रेरणा देता है। जहाँ श्रम है, वहाँ सम्मान भी है और आत्मसम्मान भी है।

viekn vkj vLr;

कितने ही आजीविका के साधन ऐसे हैं जिनमें शारीरिक श्रम अपेक्षाकृत कम होता है। उसमें बौद्धिक और मानसिक श्रम करना पड़ता है। बुद्धि पर अपनी जीविका चलाने वाले बुद्धिजीवियों को भी शारीरिक श्रम का महत्व समझना चाहिये। अस्तेय व्रत निष्ठापूर्वक कर्तव्यपालन पर जोर देता है। कामचोरी की वजह से अनेक कामकाज लम्बित पड़े रहते हैं। सरकारी क्षेत्र से अकर्मण्यता की शिकायतें ज्यादा मिलती हैं। अस्तेय व्रत की भावनाएँ भर कर सरकारी कार्य प्रणाली को चुस्त–दुरूस्त किया जा सकता है। अकर्मण्यता पाप है, अपराध है। भगवान महावीर अपने शिष्य गौतम को बार–बार कहते हैं कि क्षणमात्र का प्रमाद भी नहीं करना चाहिये।[30] जो व्यक्ति प्रमाद और आराम पसन्द करता है, वह स्वयं को और दूसरों को कष्ट देने वाला होता है।[31] उसे चहुँ ओर से भय रहता है।[32] इसलिए जीवन पथ पर आगे बढ़ने वाले धैर्यवान व्यक्तियों को आलस्य और गफलत में अपना समय नहीं गँवाना चाहिये।[33] आचारांग सूत्र उद्घोषणा करता है– उठो, जागे, प्रमाद मत करो।[34] आगम की इन प्रेरक उद्घोषणाओं को समझने वाला सहज ही अस्तेय और अपरिग्रह की आराधना करता है।

vLr; vkj iekf.kdrk

किसी भी रूप में चौर्य कर्म अनार्य कर्म है। वह अपकीर्ति को बढ़ाता है। चोरी करने से गुण छिप जाते हैं, विद्या निकम्मी हो जाती है और व्यक्ति का विश्वास व यश क्षीण हो जाता है।[35] अचौर्य व्रत की तीन प्रेरणाएँ हैं– आर्थिक पारदर्शिता, सच्चरित्रता और जीवन के हर व्यवहार में प्रमाणिकता। अचौर्य व्रत का बाहरी जीवन व्यवहार से

घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह व्यक्ति को परिश्रमी प्रमाणिक और ईमानदार बनाता है। देश की अर्थव्यवस्था के कुशल संचालन और विकास के लिए अस्तेय व्रत अत्यन्त उपयोगी है। वह भ्रष्टाचार को मिटाने का कारगर माध्यम है। 'काले धन' की समस्या का निराकरण अस्तेय करता है। बड़े–बड़े आर्थिक घोटाले, कर चोरी, रिश्वतखोरी, तस्करी आदि स्तेय के ही रूप हैं। इसलिए जो व्यक्ति सावधानी पूर्वक अस्तेय व्रत की आराधना करता है, अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह का पालन भी उसके लिए आसान हो जाता है।

iekf.kdrk d lifj.kke

प्रमाणिकता का अर्थ है अपने प्रति ईमानदार और दूसरों के प्रति भी ईमानदार। प्रामाणिक होने के लिए अपनी मर्यादा करना आवश्यक है। सत्य पालन का अर्थ यह नहीं कि गोपनीयता को उजागर किया जाये। इसका आशय है कि व्यक्ति अपने व्यापार में लाभ–प्रतिशत की मर्यादा करे। मिलावटखोरी नहीं करे। व्यापारिक सीमा के बाहर की वस्तुओं का अनावश्यक संग्रह नहीं करे। इन बातों का ध्यान रखकर व्यापार करने वाले देश के व्यापार को प्रमाणिक बनाते हैं और आवश्यकता व सामर्थ्य के अनुरूप समृद्ध भी। अस्तेय व्रत का पालन करने से दुकान/दफ्तर और मन्दिर में अन्तर नहीं रहता है। व्यापार और धर्म एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं।[36] प्रमाणिक व्यक्ति अपने व्यापार को चिर स्थायी बनाता है और उसके व्यापारिक उत्पादों की हर जगह मांग होती है। उसका व्यापार धर्म साधना और देश सेवा का ही एक रूप होता है।

ifjxg d Hkn&iHkn

आगम साहित्य में संग्रह को प्राणी मात्र की संज्ञा बताई गई है। इस वृत्ति को एकाएक तोड़ना कठिन होता है। भगवान महावीर सद्गृहस्थ के लिए नित्य अपरिग्रह की भावना के स्मरण का विधान करते हैं। श्रावक नित्य यह मनोरथ (सदिच्छा) करें कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन वह परिग्रह से निवृत्त होकर अपरग्रिह के जीवन की ओर बढ़ेगा।[37] उन्होंने दो प्रकार के परिग्रह बताये– अन्तरंग और बाहरी।[38] अन्तरंग या आभ्यन्तर परिग्रह चौदह प्रकार के होते हैं–मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, पुरूषवेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ। बाहरी परिग्रह दस

प्रकार का बताया गया है। उन्हें गृहस्थाचार के चौथे व्रत में बताये भेदों के अनुार ही समझना चाहिये।

ifjxg d: rhl uke

परिग्रह के इन भेदों से स्पष्ट होता है कि जो व्यक्ति भीतर से रिक्त होता है, वह बाहर से उस रिक्तता को भरने का प्रयास करता है। किन्तु उसका वह प्रयास मात्र आत्म–वंचना ही सिद्ध होता है। यहाँ तक भीतरी तौर पर परिग्रही का बाहरी त्याग भी व्यर्थ ही होता है।[39] स्पष्ट है कि अपरिग्रह का व्रत व्यक्ति के आत्म वैभव, भाव–सम्पदा और वैचारिक सम्पदा को बढ़ाता है। वह व्यक्ति को आत्म विश्वास से भर देता है। वह धन के पीछे नहीं दौड़ता अपितु उसके पुरूषार्थी व्यक्तित्व के कारण धन उसका अनुसरण करता है। दूसरी ओर परिग्रह व्यक्ति को अन्तरंग रूप से दरिद्र बना देता है। 'हाय धन, हाय–धन' की वृत्ति मन की रूग्णता की सूचक है। परिग्रह अनेक रूपी होता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में उसके तीस नाम बताये गये हैं– परिग्रह, संचय, चय, उपचय, विधान, संभार, संकर, आदर, पिण्ड, द्रव्यसार, महेच्छा, प्रतिबन्ध, लोभात्मा, महर्द्धि, उपकरण, संरक्षण, भार, सम्पादोत्पादक, कलिकरण्ड, प्रविस्तर, अनर्थ, अनर्थक, संस्तव, अगुप्ति, आयास, अविवेक, अमुक्ति, तृष्णा, आसक्ति और असन्तोष।[40] इन नामों से पता चलता है कि परिग्रह कितना बहुरूपिया है। वह मानव की सुख से जीने नहीं देता है। परिग्रह भोगवृत्ति की दृष्टि का प्रधान आधार है। होना यह चाहिये कि जो अधिक सद्गुणी हो, वह समाज में अधिक शक्तिशाली हो। किन्तु जहाँ धन–लिप्सा अनियन्त्रित छोड़ दी जाती है, वहाँ धन/परिग्रह, शक्ति व सम्मान का मापदण्ड बन जाता है। इसी मापदण्ड से विषमता का विष वृक्ष फूटता है।[41]

vifjxg vkj bPNk ifjek.k

गृहस्थाचार में हमने पाँचवें व्रत अपरिग्रह के बाद छठवें दिशा–परिमाण और सातवें व्रत का सम्बन्ध इच्छा परिमाण से है, जिससे पाँचवें व्रत की आराधना अधिक गहरे अर्थों में होती है। भगवान महावीर कहते है कि इच्छा आकाश के समान असीम है, इसलिए इच्छा परिमाण करने वाला धर्म से, नीति से, धनोपार्जन करता है।[42]

इच्छा परिमाण के अन्तर्गत क्षेत्र की मर्यादा भी की जाती है। जिसका व्यापारिक, राजनैतिक और सामरिक दृष्टि से बहुत महत्व है। इच्छाएँ वस्तु और क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होती; अपितु पद, प्रतिष्ठा, सत्ता आदि के रूप में भी होती है। वस्तु सम्बन्धी इच्छाएँ फिर भी व्यक्ति पूरी कर लेता है। परन्तु पद और प्रतिष्ठा की इच्छाओं का कोई पार नहीं है। धर्म क्षेत्र भी उससे अछूता नहीं है। जो समाधान के केन्द्र थे, वे ही समस्या के कारण बन गये। समाज और देश का बेहिसाब धन पद और प्रतिष्ठा के लिए खर्च कर दिया जाता है। इच्छाओं का परिसीमन सभी सन्दर्भों में होना चाहिये।

vifjxg vkj fodkl

अपरिग्रह और सन्तोष का अर्थ यह कतई नहीं है कि व्यक्ति अपने जीवन में आलस्य को प्रोत्साहित करे। अपरिग्रह निरन्तर उद्यमशील रहने की प्रेरणा देता है। वह उत्पादन और अर्जन को बाधित नहीं करता है। वह सम वितरण और अनासक्ति पर जोर देता है। अपरिग्रह अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी जीता है। अपरिग्रह व्रत की चार शर्तें हैं[43]— स्वावलम्बन, श्रमशीलता, अहिंसा और निपुणता (कार्य कुशलता)। राष्ट्र के विकास में चारों शर्तें सहयोग बनती हैं। एक तरफ अनाज के भण्डार भरे हैं और दूसरी ओर बड़ी संख्या में लोग और कुपोषण से मर जाये। ऐसा एक तरफा विकास के कारण होता है। ऐसे विकास में मानव श्रम और प्राकृतिक संसाधनों का भारी दुरूपयोग होता है। एक तरफ गगन चुम्बी अट्टालिकाएँ, दूसरी तरफ खुले आकाश तले सोते लोग। अपरिग्रह, सामाजिक समता, आर्थिक समता और राष्ट्रीय विकास का मूल हेतु है। वह मानव के भीतर और बाहर की दरिद्रता मिटाता है और समाज की दरिद्रता का निवारण भी करता है। इस प्रकार भगवान महावीर के अपरिग्रहवादी चिन्तन की पाँच फलश्रुतियाँ हैं।[44] इच्छाओं का नियमन, समाजोपयोगी साधनों के स्वामित्व का विसर्जन, शोषण मुक्त समाज की स्थापना, निष्काम बुद्धि से अपने साधनों का जनहित में संविभाग और अध्यात्मिक–शुद्धि।

vfglk l: vifjxg rd

जैसे अहिंसा की साधना के लिए अन्य व्रतों का अनुपालन आवश्यक है, वैसे ही अपरिग्रह के अनुपालन के लिए अन्य व्रतों का अनुपालन आवश्यक है। उनके प्रथम व्रत

अहिंसा की पूर्णता उनके पंचम व्रत अपरिग्रह में होती है। इन पाँच व्रतों के समुचित पालन के लिए आगम साहित्य में और भी विधि–विधान त्याग–तप और व्रत नियम बताये हैं। तीर्थंकर महावीर का आचार दर्शन बहुजन हिताय और बहुजनसुखाय तक ही सीमित नहीं है, वह सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय से भी आगे बढ़ता है– सर्वजीवहिताय और सर्वजीवसुखाय तक। उनके आचार दर्शन पर आधारित अर्थव्यवस्था और समाज व्यवस्था संसार की सारी अर्थव्यवस्थाओं को समाप्त करने में पूर्ण सक्षम है।

0;fDr :ikUrj.k ls 0;oLFkk ifjorZu

प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों के बीच भी आर्थिक दृष्टि से जिस समय समाज दिशाहीन हो पड़ा था; उस सयम भगवान महावीर ने व्रतों की व्यवस्था देकर मानव को परिश्रम, स्वाभिमान, ईमानदारी, त्याग और प्रमाणिकता से जीने की कला सिखाई। जो व्यवस्थाएँ भारी–भरकम शासकीय और प्रशासकीय खर्च और ढ़ेर सारे राजकीय कर्मचारियों द्वारा ठीक नहीं हो पा रही थी, भगवान महावीर की व्रत व्यवस्था से उनमें आमूल–चूल परिवर्तन होने लगे थे। वस्तुतः जिन व्यक्तियों और राजसत्ताओं ने व्यवस्थाओं का जिम्मा ले रखा था, उनका व्यक्तित्व भी निष्पक्ष, निभ्रान्त, निष्कपट और प्रमाणिक नहीं था। भगवान महावीर ने व्यक्तित्व रूपान्तरण के माध्यम से व्यवस्था परिवर्तन का ऐतिहासिक कार्य किया। जिसका प्रभाव उनके अपने समय में हुआ, बाद में हुआ, आज भी है और युग–युगान्तर तक देश देशान्तर में होता रहेगा।

ifjPNsn r`rh;

tSu vfgalkRed vFkZ'kkL= vkSj ledkyhu vkfFkZd fopkj

नीतिशास्त्र का उद्‌गम सभ्यता के प्रारम्भकाल से ही माना गया है। यह मानव आचरण के मूल्यों से संबंधित है। सभ्यता के प्रारंभ से ही मानव ने अपने आचरण को संयत करने के लिए कुछ नैतिक नियमों का सहारा लिया। हम नीतिशास्त्र को एक ऐसी आचार संहिता कह सकते हें जो व्यक्ति को दूसरों के साथ व्यवहार करने के लिए मार्गदर्शन करती है। वस्तुतः नीतिशास्त्र मानवीय व्यवहार एवं निर्णयों के लिए एक ऐसा दस्तावेज है जो व्यक्ति को पवित्र लक्ष्यों एवं साधनों की ओर निर्देशित करता है कि जिससे उसका आचरण मानव जाति के लिए कल्याणकारी बन सके। नीतिशास्त्र अच्छे–बुरे, शुभ–अशुभ, निर्णयों तथा साधनों में भी अन्तर स्पष्ट करता है।

यद्यपि नीतिशास्त्र का आर्थिक क्रियाओं के साथ विवादपूर्ण सम्बन्ध रहा है, तथापि भारतीय धर्मग्रन्थों एवं चिन्तकों ने नीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के बीच निकटता का सम्बन्ध माना है। उनका मानना हे कि कोई व्यवसायी नीतिशास्त्र को ही अपना कर ही सही रूप में सफलता प्राप्त कर सकता है। इस मत के विचारकों का कहना है कि जिन्हें इस बात की पर्याप्त जानकारी हे कि व्यक्ति होने का क्या अर्थ है, वे तुरन्त जान जाते है कि नीतिशास्त्र को अपनाना एंव उनके अनुकूल होना क्यों जरूरी है।

नीतिशास्त्र एवं व्यवसाय व्यक्ति और समाज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। नीतिशास्त्र के माध्यम से व्यक्ति एवं समाज के सम्पूर्ण ढाँचे को व्यवसायिक दृष्टि से व्यवस्थित किया जा सकता है। वर्तमान में आधुनिक जटिल एवं कुटिल विश्व में सहज प्रवृत्ति और उत्तम भावनाएँ ही पर्याप्त नहीं है, अपितु साधन और साध्य का अध्ययन भी आवश्यक है।

vkfFkZd fØ;kvksa esa uSfrdrk

आधुनिक व्यवहारिक अर्थशास्त्रियों ने नीतिशास्त्र को अर्थव्यवस्था का हिस्सा नहीं माना है। वे मानते हैं कि आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता या मूल्यों की कोई आवश्कता नहीं होती है। लियानेल रोबिन्स जैसे विचारकों ने तो यहाँ तक कह डाला, नीतिशास्त्र

एवं अर्थशास्त्र के बीच केवल विरोधकों का ही सम्बन्ध हो सकता है। इस प्रकार का विचार रखने वाले अधिकांश अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि मानव के आर्थिक जीवन और विकास में उसकी स्वार्थवृत्ति सक्रिय है तथा इस वृत्ति के पोषण के लिए जो कुछ उपयोगी है, वही उचित है। यहाँ उचित–अनुचित में स्वार्थपूर्ति का महत्व है, मूल्यों का नहीं।

प्रश्न उठता है कि क्या मानव का आचरण केवल स्वार्थवृत्ति से ही प्रेरित है या अन्य प्रेरणाएं भी उसे प्रेरित करती हैं।

,Me fLeFk भी इसी विचारधारा के समर्थक माने जाते हैं। उनका मत भी यही है कि अर्थशास्त्र का आधार मानव की स्वार्थ बुद्धि है, जबकि नीतिशास्त्र का आधार मानव में पायी जाने वाली दया और परोपकारी वृत्ति से है। इन दोनों वृत्तियों में कभी मेल नहीं हो ही नहीं सकता। वे मानते हे कि अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र परस्पर विरोधी हैं। उन्होंने केवल यह भी मान लिया होगा कि मानव केवल अर्थपरायण है और यह भी कहा कि मानव को अर्थपरायण मानकर जिस अर्थशास्त्र का विचार किया जावे, वही शुद्ध अर्थशास्त्र है, उन्होंने दया, परोपकार, कल्याण आदि वृत्तियों को अर्थशास्त्र का विरोधी बताया।

भारतीय चिन्तक आर्थिक क्रियाओं एवं नैतिकता के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध सूत्र स्थापित करने का प्रयास करते हैं। भगवान महावीर उनमें प्रमुख है। जैन दर्शन में अर्थशास्त्र का सम्बन्ध नीतिशास्त्र से है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन के विभिन्न ग्रन्थों एवं महावीर के चिन्तन को आधार मानकर ''महावीर का अर्थशास्त्र'' नामक पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक हमें जैन दर्शन के आर्थिक चिन्तन का तो बोध कराती है साथ ही वर्तमान आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न समस्याओं के समाधान से भी अवगत कराती है।

महावीर के आर्थिक चिन्तन पर देश के प्रमुख अर्थशास्त्री श्री माणिकचन्द सिन्धी ने भी महावीर का अर्थशास्त्र उत्पादन की प्राथमिकताएँ, उपभोग का संयम, विकास की अवधारणा तथा मानवीय संप्रेरणाएँ नामक लेखों के माध्यम से विश्लेषणात्मक विचार रखते हैं। श्री सिन्धी के अनुसार अर्थशास्त्र की जैन अवधारणा महावीर से भी पूर्ववृत्ति

है। यह मान्यता है कि सर्वप्रथम भगवान ऋषभदेव ने मनुष्य को व्यवसाय का ज्ञान दिया। उनका मत है कि निवृत्ति मूलक जैन धर्म और अर्थ के विवेचन में कोई असंगति नहीं है।

भगवान महावीर ने किसी स्वतन्त्र अर्थशास्त्र की रचना नहीं की अपने प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने अपने विचार रखे और इन्हीं विचारों को आचार्य महाप्रज्ञ ने विवेचित किया जो महावीर का अर्थशास्त्र के रूप में समग्र भाषा एवं सरल भाषा में आम जन तक पहुँचे। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार महावीर के आर्थिक दर्शन में मानव केन्द्र में है। अर्थ गौण है उनका मत है कि अर्थ प्रमुख होगा। तो अनैतिकता में वृद्धि होगी, क्योंकि मानव येन–केन–प्रकरेण धन अर्जित करने का प्रयास करेगा। उन्होंने कहा कि यह देखना जरूरी है कि अर्थजन में मनुष्यों का ह्यस न हो, साधन शुद्धि बनी रहे। अधिकांश अर्थशास्त्री मूल्यों की बात नहीं करते जबकि महावीर आर्थिक विकास में मूल्यों का ह्यास न हो इसे अनिवार्य मानते हैं, उनका मत है कि साधन एवं साध्य की पवित्रता के बिना की गई क्रियाँऐं की हिंसा ही पैदा करेगी।

आधुनिक अर्थशास्त्र एकाकी भौतिकवाद पर आधारित है जबकि महावीर के अर्थशास्त्र में भौतिकवाद एवं आध्यात्मवाद दोनों को स्वीकारा गया है। आधुनिक अर्थशास्त्र में एक लक्ष्य बना लिया है, मानव को धनी बनाना। महावीर के अर्थ का लक्ष्य है, शांति के साथ मानव अपना जीवन व्यतीत करे, क्योंकि शांति के बिना सुख नहीं है। एक ओर तो धन से मिलने वाला सुख है तथा दूसरी ओर शांति से मिलने वाला सुख है। महावीर के अर्थशास्त्र का समीकरण होगा = धन की सीमा = शांति+ सुख। व्रत, संयम और समीकरण के संदर्भ मे महावीर के अर्थशास्त्र का विश्लेषण करेंगे तो हम पायेंगे कि जहाँ व्रत है, संयम है और सीमाकरण है, उस अर्थशास्त्र के केन्द्र में मानव रहता है तथा आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता।[45]

भगवान महावीर कहते है कि आर्थिक क्रियाओं की बात करते समय इन बिन्दुओं पर विचार अवश्य करें–

1- vfgalk vkSj lk/ku 'kqf)A

2- eqY;ksa dk ákl u gksA

3- LokFkZ dh lhek gksA

महावीर के अनुसार आर्थिक क्रियाओं में अहिंसा व साधन शुद्धि का पूरा ध्यान रखना चाहिए और व्यवसायिक क्रियाओं में मूल्यों का ह्यास न हो। जब मूल्यों पर आधारित आर्थिक क्रियाएं होंगी तो नैतिकता तो स्वतः ही होगी। भगवान महावीर स्वार्थ की सीमा की बात आर्थिक क्रियाओं में करते हैं। स्वार्थ की सीमा इस बात की ओर ध्यान दिलाती है कि ऐसा स्वार्थ नहीं होना चाहिए जो दूसरों के हितों को आघात पहुंचाए, महावीर ने मानव अल्पेच्छ बनने की सलाह दी। महावीर का मत है कि अल्पेच्छ मानव अनैतिक नहीं होगा किन्तु वह धर्म के साथ अपनी आजीविका चलायेगा।

भगवान महावीर ने उत्पादन के संदर्भ में भी नैतिकता की बात कही तथा तीन निर्देश दिये–

1- fgald 'kL=kksa dk fuekZ.k u djukA
2- 'kL=kksa dk l;kstu djukA
3. ikidehZ dks fgalk izf'k{k.k u nsukA

हम देख रहे हे कि शस्त्रों के निर्माता शक्तिशाली राष्ट्र विश्व के किसी न किसी कोने में युद्ध की चिनगारी सुलगा देते हैं, उनका उद्देश्य अपने हथियारों की खपत है। शस्त्र उद्योग को तो आधार ही युद्ध है। अरबों–खरबों डॉलरों से चल रहे ये उद्योग हिंसा की बुनियाद पर खड़े हैं। यदि हम आर्थिक क्रियाओं के केन्द्र में मानव को नहीं रखेंगे, नैतिकता को आर्थिक क्रियाओं का आधार नहीं मानेंगे तो हमें विनाश के लिए तैयार रहना चाहिए। नैतिकता के अभाव में व्यवसायी मात्र व्यवसायी न रहकर मौत के सौदागर बनते जा रहे हैं।

आधुनिक अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण है निजी लाभार्जन। मानव की प्रकृति के अपेक्षा और केवल लाभ की अपेक्षा। इसका परिणाम है– आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता का अभाव, जिसने कई विषमताएँ पैदा कर दी हैं। ''एड्स'' की दवाओं को जानबूझ कर विकसित देशों ने मंहगा कर रखा है। गरीब मरते हैं तो मरे मुनाफे में कमी नहीं की जायेगी। गरीब देशों के रोगों जैसे– मलेरिया, डेंगू, हैजा आदि रोगों की दवा एवं टीके बनाने पर विकसित देशों की कम्पनियाँ कोई विशेष अनुसंधान नहीं कर रही हैं, क्योंकि

दवाओं को ये लोग ऊँचे दामों पर खरीद नहीं पायेगे और अनुसंधान पर किया गया खर्च भी नहीं हो पायेगा। वर्तमान में जितनी दवाओं का आविष्कार हुआ है उनमें से 99 प्रतिशत धनिक वर्ग के लिए हैं। यह सोच तो यही दर्शाती है कि गरीबों को मरने देना ही ठीक है।

अमेरिका ने नीति निर्धारण संस्थान ''रेड कॉरपोरेशन'' ने सरकार को एक रिपोर्ट दी थी, अमेरिका को चाहिए कि वह एशियाई और अफ्रीकी लोगों को भूख से मर जाने दे। बाकी बचे लोगों को भी बीमारियों और अकाल मौत मरने दो, क्योंकि वे लोग किसी काम के नहीं–वे धरती पर बोझ मात्र हैं। यह संस्था एक व्यवसायिक संस्था है, जो विभिन्न विषयों पर अध्ययन करता है। अमेरिका सरकार इसके ग्राहकों में से है। जब मानव के स्थान पर अर्थ केन्द्र में होगा तो नैतिकता की बात करना बेईमानी है।

भगवान महावीर ने इस प्रकार की अनैतिक आर्थिक क्रियाओं का समर्थन नहीं किया। महावीर ने कहा– उत्पादन की सीमा करो। हर चीज का उत्पादन नहीं, मादक वस्तुओं एवं शस्त्रों का उत्पादन न हो, न उपयोग हो। महावीर ने आर्थिक क्रियाओं में अहिंसा और शांति को महत्व दिया है। उन्होंने व्रती समाज की बात कही जिसमें स्वामित्व के समीकरण को प्रमुखता दी गई है। जब व्यक्तिगत स्वामित्व सीमित होगा तो लालसा बढ़ेगी ही नहीं। उन्होंने व्यक्तिगत उपभोग के सीमाकरण की बात भी कही। सीमाकरण ही नैतिकता का आधार होगा तथा समाज को सुखी, स्वस्थ एवं शांति जीवन प्रदान करेगा।

भारतीय चिन्तन में सबसे अधिक बल साधन शुद्धि पर दिया गया है। महावीर ने कहा है– साधन शुद्धि नहीं है तो कुछ भी नहीं है। मनसा, वाचा, कर्मणा, हमारा साधन शुद्ध होना चाहिए। भगवान महावीर ने ''इच्छा का परिणाम'' सिद्धान्त के द्वारा आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता लागू करने की बात कही। महावीर का मत है कि 'इच्छा का परिणाम' नहीं करने वाला मानव धर्म से आजीविका कमाता है। धर्म या अधर्म से आजीविका कमाने से आर्थिक परिस्थितियाँ निमित्त बनती है, किन्तु उनका उत्पादन कारण अनाशक्ति तथा धर्म श्रद्धा का तारतम्य है।

2- bPNk ifj.kke d i e[k l=&

1. न गरीबी, न विलासिता का जीवन।
2. धन आवश्यकता पूर्ति का साधन है, साध्य नहीं।
   धन मानव के लिए है मानव धन के लिए नहीं।
3. आवश्यकता की संतुष्टि के लिए धन का अर्जन हो, किन्तु दूसरों को हानि पहुंचाकर अपनी आवश्यकता की सन्तुष्टि न हो।
4. आवश्यकताओं, सुख–सुविधाओं और उनकी सन्तुष्टि के लिए साधन एवं धन संग्रह की सीमा का निर्धारण।
5. धन के प्रति उपयोगिता के दृष्टिकोण का निर्माण, संग्रहित धन में अनासक्ति का विकास।
6. धन के सन्तुष्टि गुण को स्वीकार करते हुए अध्यात्मिक विकास की दृष्टि से उसकी असारता का अनुचिन्तन।
7. विजर्सन की क्षमता का विकास।

वस्तुतः इच्छा का परिणाम आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता लागू करने में एक महत्वपूर्ण घटक है।

भगवान महावीर के चिन्तन से प्रभावित विचार ही महात्मा गाँधी के रहे हैं। आर्थिक क्रियाओं में मूल्यों की आवश्यकता को महात्मा गाँधी भी स्वीकारते हैं। महात्मा गाँधी का कहना है– सच्चा अर्थशास्त्री कभी उच्चतम नैतिक मानकों का विरोधी नहीं होता है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि सच्चा नीतिशास्त्र वही माना जा सकता है जो नीतिशास्त्र होने के साथ–साथ अच्छा अर्थशास्त्र भी हो। वह अर्थशास्त्र झूठा व निराशाजनक है, जो कुबेर को पूजा प्रश्रय देता है और शक्तिशाली लोगों को दुर्लभ लोगों की कीमत पर धन संचय करने मे मदद करता है। वह तो मौत का पैगाम है। इसके विपरीत सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय सुनिश्चित करता है। दुर्लभतम व्यक्तियों सहित सबकी भलाई को बढ़ावा देता है। महात्मा गाँधी का मत है कि आर्थिक विचार करते समय धर्म एवं नीति को भी ध्यान में रखना चाहिए, अर्थात् मानव जाति के श्रेष्ठ कल्याण का विचार अर्थशास्त्रीयों को हमेशा ध्यान रखना चाहिए। उनका मत है

कि किसी भी उद्योग की उपयोगिता का माप उसके आर्थिक लाभ से नहीं किया जाना चाहिए, अपितु इस उद्योग के कारण समाज को मिलने वाले लाभों से किया जाना चाहिए।

गाँधीजी के ''ट्रस्टीशिप'' सिद्धान्त का मूल सार यह है कि समस्त सम्पत्ति समाज की है, पूंजी पतियों को चाहिए कि वे इस सम्पत्ति के प्रति अपने आपको समाज की ''ट्रस्टी'' माने। ''ट्रस्टी'' के रूप में वह इन साधनों का उपयोग समाज व राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर करें। यह सिद्धान्त तो आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता का समावेश स्वतः ही कर देता है।

आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता का समर्थन करने वाले भारतीय अर्थशास्त्री veR;l lsu का मत है कि अर्थशास्त्रीय विश्लेषण में नीतिशास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। सेन के विचारों का मुख्य आधार यह रहा है कि अर्थशास्त्र के उस स्वरूप को, जो धीरे–धीरे उभर कर सामने आया है, किस प्रकार नीतिशास्त्रीय विचारणीय बातों पर अलग से तथा विशेष ध्यान देकर अधिक उत्पादक एवं उपयोगी बनाया जा सकता है। नीतिशास्त्र की कुछ प्रमुख विचारणीय बातें मानवीय व्यवहार एंव निर्णय को प्रभवित करती हैं और सेन इस बात पर विशेष बल देते हैं कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र के मूल्यांकन में नीतिशास्त्र की विचारणीय बातों का समावेश व्यक्ति व्यवहार को सही रूप देने में महत्वपूर्ण एवं प्रत्यक्ष प्रभावशाली होगा।

veR;l lsu

अमर्त्य ने अपने चिन्तन में मूल्य बोध को केन्द्र में रखा है। यह मूल्य बोध ही मानव कल्याण की ओर ध्यान आकर्षित करता है। यह तर्क दिया जाता है कि अर्थशास्त्र के दो मूल स्त्रोत हैं। ये दोनों ही राजनीति से जुड़े हैं तथा दूसरे अभियान्त्रिक पहलू से है। सेन का यह कथन vjLr। के विचारों से मेल खाता है, जो कहते है कि अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र का ही अभिन्न अंग है। भारतीय चिन्तक इस बात का समर्थन करते हैं कि अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र दोनों का उद्देश्य मानव जाति की प्रगति और कल्याण करना ही है। इसलिए दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः भारतीय चिन्तक आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता को आवश्यक मानते हैं तथा आर्थिक समस्याओं के समाधान में नैतिक आधारों के उपयोग की बात करते हैं। महात्मा गाँधी ने तो यहाँ तक कहते है– जो अर्थशास्त्र किसी भी व्यक्ति या राष्ट्र के विकास अथवा कल्याण में रूकावट डालता है और जो एक देश को दूसरे देश में लूट चलाने की छूट देता है वह अर्थशास्त्र अनीतिमय है, पाप रूप है।

भगवान महावीर आर्थिक क्रियाओं में साधन शुद्धि मूल्यों की रक्षा, स्वार्थ की सीमा के साथ–साथ अहिंसा की अनिवार्यता पर बल देते हैं तथा येन–केन प्रकारेण की प्रवृत्ति से दूर रहने की सलाह भी देते हैं। उनका मत है कि अर्थशास्त्र को सिर्फ अर्थोत्पादन का शास्त्र मानकर ही विचार नहीं करना चाहिए। अर्थशास्त्र को मानव की प्रगति और कल्याण का विचार करने वाला शास्त्र मानना चाहिए। यदि हम ऐसा मानने लगेंगे तो सच्ची अर्थ प्रवृत्ति और सच्चा अर्थ लाभ होगा, जो नीतिशास्त्र का कभी विरोधी नहीं होगा।

आधुनिक व्यवहारवादी अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक क्रियाओं को नैतिकता से अलग रखकर ही विचार किया। उनके चिन्तन में मानव कल्याण की कोई बात नहीं है। उनका लक्ष्य तो लाभ है। वह लाभ चाहे शराब बेचकर हो या शस्त्र बेचकर हो। वस्तुतः आधुनिक अर्थशास्त्र का जन्म ही हिंसा से माना जाता है।

भगवान महावीर के आर्थिक चिन्तन का आधार अहिंसा है जो मानव कल्याण की बात करता है। साधन एवं साध्य की पवित्रता की बात करता है, स्वार्थ की सीमा की

बात करता है तथा इन सबके लिए नैतिक आचरण को अपनाने की अनिवार्यता पर बल देता है।

महावीर का आर्थिक दर्शन वस्तुतः अहिंसा का अर्थशास्त्र है जो हमें वर्तमान आर्थिक समस्याओं के सच्चे समाधान का रास्ता दिखाता है।

सिद्धराज ढ़ड्ढा के शब्दों में मनुष्य कैसे गोरख धन्धे में फंस जाता है? जिस बात के लिए सारे काम करता है, वही बात गौण हो जाती है और उसके लिए जो कुछ किया जाता है–वह मुख्य बन जाता है। अगर मनुष्य रोजमर्रा की बातों पर ध्यान दे, जीवन जीना सीख जाये, जीवन की कला में प्रवीण हो जाये जो जिन्हें वह 'बड़े' काम समझता है और जो उसे मुश्किल मालूम होते हैं, वे काम उसके लिए आसान हो जाए पर वह समझता है कि छोटी–छोटी बातों में क्या वक्त बर्बाद करना।

काश, हम इन छोटी बातों के महत्व को समझते।

3- tlu vfglkRed vFk'kkL= rFkk ledkyhu vkfFkd fopkj

भारत में महावीर का युग एक धार्मिक दार्शनिक विचार क्रांति व संघर्ष का युग था। सभी अपने–अपने धर्म दर्शन व परम्परा को श्रेष्ठ व पूर्ण सत्य का प्रतिपादक कहते थे और अन्य सब को मिथ्या, अनर्गल व अमान्य। महावीर ने वेद के ^^,d l r foi kk cg/kk onfUr** को एक सर्वथा भिन्न दृष्टि से देखा, समझा और कहा।

महावीर ने अहिंसा को धर्म के केन्द्र में रखकर धार्मिक जीवन के अन्य खम्भे उसके चारों ओर खड़े किये। अपने अतीन्द्रिय चक्षुओं से महावीर ने मिट्टी, जल, सम्पूर्ण वनस्पति जगत, यहाँ तक की अग्नि के भी सूक्ष्म से सूक्ष्म कणों में जीवन तत्व की व्यापकता एक से दूसरे कण में परस्पर सार्वभौम–वैयक्तिक–स्वाधीनता तथा परस्पर आश्रितता के महासत्य का साक्षात्कार कर लिया था। सबसे अधिक विकसित मनुष्य जाति से लेकर सर्वथा अविकसित व अदृश्य जल, वायु, मिट्टी और वनस्पति और अग्नि कणों में विद्यमान जीवों की सुख व दुःख की अनुभूतियाँ एक समान होती हैं तथा इनमें से प्रत्येक जीव कलान्तर में विकास करके मनुष्य व देव तक बनने की संभावनाएँ लिए होता है। अतः मनुष्य जो जीव–जगत का श्रेष्ठतम प्राणी है, इसका यह कर्तव्य है कि

वह किसी भी जाति के जीव का किसी भी प्रकार धात न करे, हिंसा न करे, बध–बन्धन न करे, पीड़ा न पहुँचाए। उसे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है। इनमें से किसी भी जीवन की किसी भी प्रकार से हिंसा आत्म हिंसा के समान है।

महावीर के अहिंसा सिद्धान्त की इस व्यापकता में सम्पूर्ण जीव जगत के प्रति अनन्य आदर, सुरक्षा, परस्पर कल्याण, अभिवृद्धि एवं अहानि के भाव कूट–कूट कर भरे हैं। शाकाहार का यही सहस्त्राब्दियों में प्राचीन सृदृढ़ एवं परिपुष्ट आधार है और यही सर्वदेशों, सर्वकालों, सर्वपरिस्थितियों में जैन धर्मानुयायी समाज की शान्तिमय जीवन शैली का मंत्र भी है।

जीवनत्व के प्रति ऐसा गहन आदर स्वाभाविक रूप से पंच महातत्वों से निर्मित सम्पूर्ण प्रकृति और उसमें विद्यमान स्थूल सूक्ष्म सभी जीव जातियों की रक्षा अर्थात् समग्र पर्यावरण की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि का प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में पूर्यवसित अन्यतम हेतु है। यही ऋषभदेव से लेकर महावीर अर्थात चौबीस तीर्थकरों द्वारा अपने अन्तज्ञान से अनुभूत व उपदिष्ट और वैज्ञानिकों एवं विचारकों द्वारा प्रयोग सिद्ध, श्रेष्ठ जीवन पद्धति भी है।

विश्व की नई व्यवस्था अपेक्षित है, नया समाज, नई अर्थव्यवस्था, नई राजनीति की प्रणाली, सब कुछ नया अपेक्षित है। इसलिए कि जो नया–नया चल रहा है उससे सन्तोष नहीं है। जो नया करना चाहते हैं वह पुराना भी है। हमारी इस परिवर्तनशील दुनिया में ध्रोण्य, उत्पाद और व्यय एक साथ चलते हैं। ध्रुव है, शाश्वत है और साथ में परिवर्तन भी है। यह अनेकान्त का नियम है। परिर्वतन और शाश्वत दोनों रूप से चलते हैं, इसलिये नया कुछ भी नहीं होता है, जो नया होता है, वह भी पुराना बन जाता है। जो पुराना है उसमें भी खोज करें तो बहुत कुछ नया मिलेगा।

भगवान महावीर ने मनुष्य के बारे में बताया है कि मनुष्य बाहर से तो एक विशिष्ट आकृति प्रधान और पशु से भिन्न लगता है किन्तु मनुष्य की प्रकृति बहुत से प्राणियों से भिन्न नहीं हैं। किन्तु मनुष्य की प्रकृति बहुत से प्राणियों से भिन्न नहीं है। प्रत्येक प्राणी के अन्तस्थल में एक प्रकृति है काम। मनुष्य की प्रकृति में भी काम है।

महावीर का वचन है– ^^dkedke [ky; v; ifjl**– यह पुरूष काम कामी है। काम उसकी प्रकृति का एक तत्व है।

उसकी प्रकृति का दूसरा तत्व है – ^^/kEel)**– मनुष्य की धर्म में श्रद्धा है, चरित्र की श्रद्धा है, आस्था है।[46]

मनुष्य की प्रकृति का चौथा तत्व है – संवेग, वह मुक्त होना चाहता है।

ये मनुष्य की प्रकृति के चार तत्व है– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। भारतीय चिन्तन में चार पुरूषार्थ का समन्वय माना गया है। चार पुरूषार्थों को छोड़कर हम मनुष्य की व्याख्या करे तो उसे समग्रता से नहीं समझा जा सकता। उसको समग्रता से समझने के लिए इस पुरूषार्थ चतुष्टयी को समझना जरूरी है।

vk/;kfRed O;fDrRo

महावीर शुद्ध आध्यात्मिक व्यक्तित्व है बाहर और भीतर, व्यवहार और निश्चय दोनों में आध्यात्मिक व्यक्तित्व है। गाँधी के भीतर में आध्यात्मिक व्यक्तित्व है, बाहर में राजनीतिक व्यक्तित्व। गाँधी ने इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए बहुत बार कहा– शुद्ध अर्थ में मैं आध्यात्मिक और धार्मिक व्यक्ति हूँ। मैने राजनीति को माध्यम बनाया है जनता के साथ आत्मीयता स्थापित करने के लिए। उसके लिए यह सबसे बड़ा माध्यम है, इसलिये इसे मैंने चुना है। किन्तु मेरी कोई भी राजनीतिक, समाननीति, अर्थनीति, आध्यात्म से पृथक नहीं हो सकती। अगर आध्यात्म से पृथक है तो वह मेरे लिए कचरा है, किसी भी तरह से वह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है, मुझे मान्य नहीं है।[47]

Hkkfrd O;fDrRo

मार्क्स और कीन्स, एड्म स्मिथ आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं है। ये शुद्ध रूप से आर्थिक व्यक्तित्व है, भौतिक व्यक्तित्व है। न आत्मा, न धर्म, न मोक्ष आध्यात्मिक लक्ष्य नहीं। केवल पदार्थवादी व्यक्तित्व है, उन्होने केवल उसी की चर्चा की है, उसी की चिन्ता की है।

tSu vfgalkRed vFkZ'kkL= rFkk ,Me fLeFk rqyukRed v/;;u

एड्म स्मिथ के अनुसार अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है तथा धन का अध्ययन राज्य के संदर्भ में किया जाता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र को ''राजनैतिक अर्थव्यवस्था' के रूप में प्रस्तुत किया गया और धन पर विशेष जोर दिया गया।[48]

अतः अर्थशास्त्र का धन की व्यवस्था के लिये किये गये प्रयत्नों का अध्ययन कहकर परिभाषित किया गया। इनके अनुयायियों ने भी इनकी धन सम्बन्धी विचारधारा की पुष्टि की।

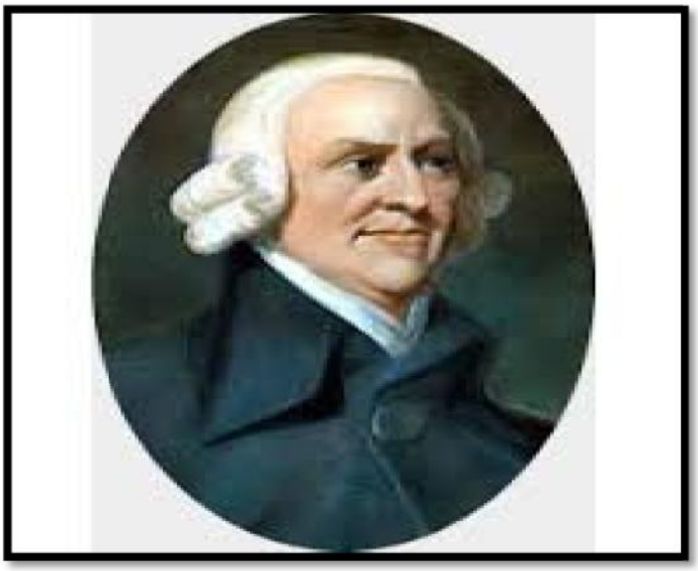

,Me fLeFk

एड्म स्मिथ ने अर्थशास्त्र को एक ऐसा शास्त्र बताया जो कि निजी व्यक्तियों व राष्ट्रों को धन कमाने अथवा धनवृद्धि करने की विधियों से अवगत कराता है। स्मिथ व उनके अनुयायियों ने अर्थशास्त्र को धन या सम्पत्ति का विज्ञान कहकर लोगों के मन में यह धारणा उत्पन्न कर दी कि अर्थशास्त्र केवल धनोपार्जन अथवा रूपया पैसा कमाने के उपायों का एक मात्र शास्त्र है और मानव की आर्थिक क्रियाओं का अन्तिम उद्देश्य धनोपर्जन ही समझा गया। धन को ही सुख का आधार मानकर इसे जरूरत से ज्यादा महत्व दे दिया गया।

एड्म स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक (An inquiry into the nature and causes of wealth of Nations) के अनुसार अर्थशास्त्र धन का अध्ययन करता है तथा इसमें धन की प्रकृति एवं इसकी वृद्धि के कारणों का अध्ययन किया जाता है। जिस आर्थिक चिन्तन को एड्म स्मिथ ने अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया, उन सिद्धान्तों व विचारों का अस्तित्व हालांकि प्राचीन काल से भी बना हुआ था फिर भी स्मिथ ने उन विचारों व सिद्धान्तों को संग्रहित कर क्रमिक एवं वैज्ञानिक रूप प्रदान किया।

प्राचीन काल में भले ही आज के समान व्यवस्थित नहीं था। परन्तु तत्कालीन समाज की अपनी कुछ समस्यायें थी। उन समस्याओं में आर्थिक समस्याएँ भी थी। विकास के इतिहास को देखने पर मालूम पड़ा है कि जैसे–जैसे समाज की मान्यताएँ बदलती गयी वैसे–वैसे आर्थिक मान्यताओं तथा आर्थिक विचारों में भी परिवर्तन आने लगे। इस प्रकार प्राचीन अर्थशास्त्र को एडम अर्थशास्त्र के युग तक पहुँचने में एक लम्बा रास्ता तय करना पड़ा लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि एड्म स्मिथ ही एक ऐसा महान अर्थशास्त्री था जिसने अर्थशास्त्र को व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप से प्रदान किया।

स्मिथ द्वारा मानव के महत्व की उपेक्षा करने एवं धन को ही सुख व समृद्धि का साधन माना जाने के कारण अनेक आर्थिक बुराईयों का प्रादुर्भाव हुआ। प्रत्येक मनुष्य में अर्थ की लालसा ने शोषण, छल कपट तथा सामाजिक उत्पीड़न को जन्म दिया। इन सभी कारणों से अनेक इतिहासवादी अर्थशास्त्रियों, समाज सुधारकों एवं साहित्यकारों ने स्मिथ द्वारा प्रस्तुत विचारधारा की कटु आलोचना की। इन आलोचकों ने स्मिथ द्वारा प्रस्तुत अर्थशास्त्र को कुबेर की विद्या, घृणित विज्ञान, रोटी–मक्खन का विज्ञान, अधम विज्ञान आदि घृणित नामों से सम्बोधित किया।[49]

महावीर और अर्थशास्त्र यह संगति कैसे बैठेगी? महावीर वीतराग है, तीर्थंकर है, राग से विमुक्त है, वे अर्थशास्त्र की बात कैसे करेंगे? हम सिद्ध महावीर की बात नहीं कर रहे हैं, साधक महावीर की बात कर रहे हैं। सिद्ध महावीर अर्थ की बात नहीं करेंगे। महावीर तीर्थंकर है तो भी वे साधन में हैं, उस समय महावीर एक बात करने के अधिकारी हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा हे–

एतच्च सर्व सावद्यमपि लोकनुकम्पया।

स्वामी प्रवर्तयामास, जानन् कर्तव्यमात्मनः।।[50]

तीर्थंकर ऋषभदेव ने युगानुकूल मार्गदर्शन दिया– कृषि कैसी करनी चाहिए; तलवार हाथ में कैसे लेनी चाहिए, उपार्जन कैसे करना चाहिए, ये सारी बातें बतलाई। वे जानते थे कि ये बात सावध है, किन्तु उन्होंने इन सबको सावध मानते हुए भी अपना कर्तव्य मानकर लोकानुकम्पा से इसका प्रतिपादन किया। महावीर ने भी ऐसा ही किया। सभी मनुष्य साधु नहीं है, साधक नहीं है, संसारी हैं। उनका पथ दर्शन अगर महापुरूष हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा?

महावीर ने गृहस्थ के लिए महाव्रत की नहीं बल्कि अणुव्रत की बात कही। यह उनकी अनुकम्पा है। इस दृष्टि से महावीर का अर्थशास्त्र– इस कथन में संगति है।

महावीर ने हजारों वर्ष पहले जो बात कही वह आज भी हमारे बड़े काम की है, आगे भी रहेगी। उन्होंने यंत्रों के आधार पर अन्वेषण नहीं किया, आत्मा के आधार पर किया। यंत्र भौतिक है, अनुभूमि आत्मिक है। आत्मिक अनुभूति त्रैकालिक होगी, तत्कालिक नहीं होगी। इच्छाओं पर नियन्त्रण करे इस बात को लोग बकवास मानते हैं। कल्पना करना छोड़ दो, यह कितनी मूखर्ता की बात है। इससे तो देश का विकास ही अवरूद्ध हो जायेगा। आज चारों ओर से आवाज उठ रही है कि सीमा होनी चाहिए।

vk/;kRed o HkkSfrdokn dk lEcU/k

महावीर ने अध्यात्म और भौतिकवाद का समन्वय किया। प्राचीनकाल से यह प्रश्न है– ''ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है। क्या उस जगत् को मिथ्या माने, जो सामने दिखायी दे रहा है? जो चीजें सामने दिखायी देती है वह मिथ्या कैसे हुई? महावीर ने कहा भौतिकवाद सत्य है और आत्मा भी सत्य है।

महावीर ने जो कुछ भी कहा, अनुभूति के आधार पर कहा। उन्होंने कहा– एक साधु यदि किसी को अध्यात्मिक बनाना चाहेंगे, असफल हो जाएँगे। उसे इस दिशा में धीरे–धीरे आगे बढ़ाओ ज्ञान पिपासा को तेज करो अपने आप काम हो जायेगा। वस्तुतः आज के भटके हुए मानव को रास्ता दिखाने की बड़ी अपेक्षा है। आज सारा संसार

आर्थिक बन रहा है। अर्थ ही प्रधान है। इस मनोवृत्ति को बदलना है, इस दिशा में निरन्तर प्रयास होना चाहिए।

आवश्यकता पूर्ति सबकी होनी चाहिए, किन्तु जहाँ ओरों के स्वार्थ की बलि हो, ऐसी आर्थिक सम्पन्नता कभी भी काम्य नहीं होगी और न ही होनी चाहिए। समय–समय की अवधारणाएं भिन्न–भिन्न होती हैं, और भिन्न–भिन्न अवधारणाएँ सामयिक होती हैं। तत्कालिक बात का आकर्षण ज्यादा होता है।

tSu vfgalkRed vFkZ'kkL= rFkk ekDlZ rqyukRed v/;;u

कार्ल मार्क्स का जन्म जर्मनी की धरती पर हुआ। भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण से उनका परिचय नहीं हुआ होगा पर उनके खून में भी करूणा थी। उन्होंने सोचा देश में करोड़ों लोग भूखे हैं जिन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता है, पहनने को पूरे कपड़े नहीं, रहने के लिए मकान नहीं। थोड़े से लोग सम्पदा का भरपूर भोग कर रहे हैं, शेष लोग अभावों के रेगिस्तान में तड़फ रहे हैं। यह व्यवस्था किसी भी देश के लिए सुखद नही है। मार्क्स का ध्यान गरीबों, श्रमिकों और दलितों पर टिका है, उन्होने उन्हें उठाने का प्रयत्न किया है। उनका चिन्तन रहा है कि ये लोग ठीक होंगे तो सब कुछ ठीक हो जायेगी। इनकी स्थिति में सुधार हो जायेगा जो विषमता की खाईयाँ अपने आप पट जायेंगी। उन्होंने साम्यवाद की अवधारणा प्रस्तुत की। उनके लिए अहिंसा अस्वीकार्य नही थी, पर वे गाँधीजी की तरह अहिंसा पर ही रूके नहीं। जहाँ अहिंसा से काम सिद्ध नही हो वहाँ पर वे हिंसा का भी सहारा लेते हैं। उन्होंने कहा कि प्रयोजन सिद्ध करने के लिए जो भी साधन सुलभ हो, उनका उपयोग किया जा सकता है। मार्क्स ने कर्म के सिद्धान्त पर पुरूषार्थ को प्रतिष्ठित किया। पुरूषार्थ द्वारा कर्म को बदला जा सकता है। इस सिद्धान्त के आधार पर सोवियत संघ में एक क्रांति का सूत्रपात हो गया।

dkyZ ekDlZ

मार्क्स ने समाज के विषय में बहुत बड़ा काम किया, प्रखर चिन्तन प्रस्तुत किया। उनका सारा चिन्तन धन को केन्द्र मानकर हुआ। यह सही है कि समाज का बनना, बिगड़ना अर्थ पर निर्भर करता है। अर्थ को गौण नहीं किया जा सकता। चार पुरूषार्थ– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। चारों में धर्म का स्थान पहला है, पर अनेक समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों ने अर्थ को पहला स्थान दिया। अर्थ का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, पर अर्थ का इतना प्रभुत्व बढ़ा कि उसको सबके साथ जोड़ दिया गया। आज अर्थ की समस्या है और सारा समाज इसे भुगत रहा है। इस समस्या का समाधान नहीं मिल रहा है। साम्यवाद आया, समाधान नहीं हुआ। समाजवाद आया, फिर भी समाधान नहीं हुआ। तो हमें समझना है कि समस्या को मूल में पकड़ा नहीं गया।

महावीर ने अपने अर्थशास्त्र की सीमा में कहा कि दो प्रकार के समाज हमारे सामने है– अनियन्त्रित समाज, नियन्त्रित समाज। निर्णय हमें करना हे कि हमें कौनसा समाज चाहिए। अगर दुःखी समाज चाहते है तो अनियंत्रित समाज तैयार है। सुखी और शान्त समाज चाहते हैं तो नियंत्रित समाज की अपेक्षा है। प्राचीनकाल में मनुष्य के लिए समाज शब्द का प्रयोग हुआ है और पशुओं के लिए समज शब्द का व्यवहार हुआ है। मनुष्य चिन्तनशील है, पर मनुष्य जितना अनियंत्रित है शायद कोई नहीं है। प्राचीन ऋषियों ने कहा– 'अग्नि में कितना ही ईंधन डालो, वह तृप्त नहीं होगी। समुद्र में कितनी ही नदियाँ आकर गिरे वह भरेगा नहीं। तब पदार्थों से हमारी आकांक्षा कैसे भर जायेगी? समस्या यह है कि हम दूसरों को सीमा में देखना चाहते हैं, किन्तु अपनी सीमा तय नहीं करते हैं। यह समय और विवेक का तकाजा है कि व्यक्ति स्वयं अपनी सीमा तय करे।

आज के अर्थशास्त्रियों ने भी संग्रह के दो परिणाम बतलाए हैं– भूख और युद्ध। गरीबी की समस्या सहज रूप से सुलझाई जा सकती है, बेरोजगारी की समस्या को भी सुलझाया जा सकता है। शेष रहती है जनसंख्या की समस्या जो गरीबी से सम्बन्धित है तो गरीबी का प्रतिफल है जनसंख्या की वृद्धि, विकसित राष्ट्रें की स्थिति देखें, वहां जनसंख्या बढ़ाने का प्रयत्न हो रहा है।

महावीर का दर्शन आत्मा तक सीमित रहा है। अपने भीतर तक सीमित रहा है और समाजवाद का दर्शन केवल बाहर तक सीमित रहा, सामाजिक परिवेश तक सीमित रहा। महावीर ने संवेदनशीलता और करूणा को महत्व दिया। सामाजिक प्राणी वह होता है जो संवेदनशील होता है, जिसमें अपनी अनुभूति और दूसरों की अनुभूति का जोड़ होता है। वह दूसरों को भी अपने समान समझता है। महावीर का दर्शन आत्मा तक सीमित रहा, अपने भीतर तक सीमित रहा और समाजवाद का दर्शन केवल बाहर तक सीमित रहा, सामाजिक परिवेश तक सीमित रहा।

dhUl rFkk tSu vFkZ'kkL= rqyukRed v/;;u

आधुनिक अर्थशास्त्र भौतिकवाद के आधार पर विकसित हुआ है। उनकी कठिनाई एकांगी दृष्टिकोण है। यह एकांगी दृष्टिकोण नहीं होता तो वर्तमान में इतनी अपराध की स्थितियां नहीं बनती, आर्थिक स्पर्धा नहीं होती, उत्पादन और वितरण में इतनी विषमता पैदा नहीं होती। आधुनिक अर्थशास्त्र के प्रमुख जॉन मेनार्ड कीन्स कहते हैं– ''हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है, सबको धनी बनाना है, इस रास्ते में नैतिक विचारों का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है। उनका बहुत स्पष्ट कथन है– यह नैतिकता का विचार न केवल अप्रासंगिक है बल्कि हमारे मार्ग में बाधक भी है।[51]

tkWu esukMZ dhUl

आज भ्रष्टाचार एक ज्वलन्त प्रश्न है। बहुत सारे लोग भ्रष्टाचार की बात करते हैं, कहते है कि आज के समय में भ्रष्टाचार बढ़ा है। जब अर्थशास्त्र की मूल धारणा यह है कि नैतिकता का विचार हमारे मार्ग में बाधक है तो फिर भ्रष्टाचार का रोना क्यों? वर्तमान की अर्थशास्त्रीय अवधारणा के बीच यदि भ्रष्टाचार बढ़ता है, आर्थिक अपराध बढ़ते हैं तो स्वाभाविक है कि भ्रष्टाचार न बढ़े तो आश्चर्य की बात है।

कीन्स ने कहा– ''अभी हमें सम्पन्नता का विकास करना है, इसलिए अभी हमारे लिए अहिंसा, नैतिक मूल्य आदि का विचार करने का अवकाश नहीं है।[52]

उन्होंने कहा कि अर्थशास्त्र विज्ञान है, इस विज्ञान के संदर्भ में नैतिकता, अनैतिकता का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं था। वे नैतिकता, अहिंसा, साधनशुद्धि, चरित्र आदि किसी भी विषय को महत्व देने को तैयार नहीं हें। कीन्स पूंजीवादी आर्थिक क्रांति के पुरोधा थे।

egkohj dk fopkj

महावीर ने साधन शुद्धि पर बल दिया है। भारतीय चिन्तन में महावीर ने सबसे अधिक बल साधन शुद्धि पर दिया है। साधन शुद्धि नहीं है तो उनके लिए कुछ भी काम्य नहीं है। मनसा, वाचा, कर्मणा हमारा साधन शुद्ध होना चाहिए। प्राचीन इतिहास में महावीर के पश्चात् आचार्य भिक्षु ने साधन शुद्धि के विषय में बताया– ''जहाँ साधन शुद्धि नहीं है हृदय परिवर्तन नहीं है, वहां अच्छे साध्य को कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता।[53]

कीन्स ने सुविधा और सुख को एक ही मान लिया। जिसको रोटी नहीं मिलती थी उसे रोटी मिली तो सुविधा हो गयी, किन्तु उसे सुख मिल गया, यह कहना कठिन है क्योंकि सुख संवेदना के साथ जुड़ा होता है और रोटी भूख के साथ जुड़ी होती है। भूख मिट गयी तो यह समझना चाहिए कि एक व्यथा मिट गयी, किन्तु सुख हुआ यह तो नहीं कहा जा सकता। महावीर ने सुख और सुविधा दोनों को अलग–अलग बताया है। सुख अलग है सुविधा अलग है। उन्होंने कहा जिसे सुख मानते हो, वह भी क्षणिक है क्षण मात्र सुख मिला, किन्तु परिणाम काल में वह लम्बा दुःख हो सकता है।

कीन्स अगर इस चिन्तन में स्पष्ट होते तो सचमुच आज स्थिति भिन्न होती।

rqyukRed v/;;u

महावीर शुद्ध आध्यात्मिक व्यक्तित्व है। बाहर और भीतर, व्यवहार एवं निश्चय दोनों में आध्यात्मिक व्यक्तित्व हैं। एड्म स्मिथ, मार्क्स और कीन्स आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं है। ये शुद्ध रूप में आर्थिक व्यक्तित्व हैं, भौतिक व्यक्तित्व हैं। न आत्मा, न धर्म, न मोक्ष, कोई अपेक्षा नहीं। केवल पदार्थवादी व्यक्तित्व हैं, उन्होंने केवल उसी की चर्चा की है, उसी की चिन्ता की है। महावीर अहिंसक क्रांति के पुरोधा हैं। एड्म स्मिथ एवं कीन्स पूंजीवादी आर्थिक क्रान्ति के पुरोधा हैं जबकि मार्क्स साम्यवादी आर्थिक क्रान्ति के पुरोधा हैं।

किसी व्यक्ति को जानने के लिए हमें पेरामीटर का उपयोग करना होता है। इन चार व्यक्तियों की तुलना हम निम्न मानदण्डों के आधार पर कर सकते हैं–

1. अभिमुखता
2. प्रेरणा
3. साध्य
4. साधन
5. प्रयोजन
6. स्वतन्त्रता[54]

1- vfHkeq[krk& कौन व्यक्ति किस दिशा में जा रहा है, उसका मुख किधर है, इसके आधार पर उसके विषय में बहुत कुछ जाना जा सकता है। महावीर आत्माभिमुख हैं। उनका मुख उनकी दिशा आध्यात्म की ओर है। एड्म स्मिथ, मार्क्स और कीन्स शुद्ध रूप से अर्थशास्त्री हैं, पदार्थभिमुख हैं। इनका मुख पदार्थ की ओर है, अर्थ एवं सम्पदा की ओर है।

2- iz.kk& दूसरा पेरामीटर है प्रेरणा। व्यक्ति किसी प्रेरणा से प्रेरित होकर ही काम करता है। जैसी प्रेरणा होती है वैसा ही वह काम करता है। महावीर की प्रेरणा थी परमार्थ। अर्थ के साथ तीन कोटियाँ बन जाती है– स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ। महावीर

की प्रेरणा है परमार्थ, परम अर्थ को प्राप्त करना। परम अर्थ का भारतीय चिंतन में अर्थ रहा है– मोक्ष, बंधनमुक्ति। बंधनमुक्त होना परम अर्थ को प्राप्त करना है। मार्क्स के पीछे प्रेरणा है करूणा की। मार्क्स एक अर्थशास्त्री होने के साथ–साथ बहुत करूणाशील और संवेदनशील व्यक्तित्व हैं। भारत में सर्वोदय के विचारकों ने उन्हें ऋषितुल्य माना है। वे गरीबी की पीड़ा और यातना भोग चुके थे। उनके मन में करूणा थी और इसी से प्रेरित होकर ही उन्होंने साम्यवादी अर्थशास्त्र का प्रतिपादन किया। गरीबी और अमीरी ये दोनों मनुष्य कृत हैं, इसलिए इन दोनों को समाप्त कर सकता है।

इस चिंतन में मार्क्स महावीर के निकट आ जाते हैं। महावीर का भी इस अर्थ में यह सिद्धान्त रहा– अमीरी और गरीबी मनुष्य कृत हैं या द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव कृत हैं। ये दोनों न कोई ईश्वरीय देन है न कोई कर्म कृत हैं। बहुत सारे दार्शनिक इन्हें कर्मकृत मान लेते थे किन्तु वास्तव में जैनों के कर्मशास्त्र का अभिमत है– गरीबी और अमीरी धन मिलना और उसका चले जाना, यह कोई कर्म का परिणाम नही है। यह कालकृत परिस्थितिकृत, क्षेत्रकृत या विशेष अवस्थाकृत एक पर्याय है जिससे व्यक्ति गरीब बन जाता है या अमीर बन जाता है। यह कोई शाश्वत तत्व नहीं है कि गरीब, गरीब रहेगा और अमीर अमीर रहेगा। एड्म स्मिथ एवं कीन्स का सारा सिद्धान्त ही स्वार्थ को उभारने का है। लोभ बढ़ाओं, स्पर्धा करो तो आर्थिक विकास होगा।

3- lk/; & तीसरा पेरामीटर है साध्य। साध्य क्या हो? व्यक्ति कोई भी कार्य करता है, उसमें साध्य का निर्धारण पहले करता है फिर साधन का चुनाव करता है।

महावीर का साध्य था– आध्यात्मिक विकास। गाँधी का साध्य रहा आध्यात्मिक विकास और साथ–साथ में सर्वोदयी या ग्राम्यव्यवस्था, विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विकास। किन्तु मूलतः उनका साध्य आध्यात्मिक विकास ही था।

मार्क्स का साध्य रहा– आर्थिक विकास। उनका सारा दर्शन इस पर केन्द्रित है कि अर्थ का विकास कैसे हो? उनके लिए शेष सब गौण हो गया पर सबको सब कुछ मिले यह उनका प्रयत्न रहा। कीन्स का भी लक्ष्य आर्थिक विकास रहा।

इस अर्थ में महावीर और गांधी दोनों एक कोटि में तथा मार्क्स और कीन्स दूसरी कोटि में आ जाते हैं।

4- lk/ku dk pquko & चौथा पेरामीटर है साधन का चुनाव। यह बहुत महत्वपूर्ण है। साध्य कभी–कभी एक हो जाते हैं, किन्तु साधन में बड़ी दूरी आ जाती है। महावीर ने अपने साध्य की संपूर्ति के लिए साधन चुना– अहिंसा, अपरिग्रह और संयम। महात्मा गांधी ने साधन का चुनाव सत्य और अहिंसा के रूप में किया। मार्क्स ने साधन के चुनाव के संदर्भ में अपनी नीति स्पष्ट करेते हुए कहा– हमारा साध्य है आर्थिक विकास, गरीबी को मिटा कर गरीबी की पीड़ा को दूर करना। अहिंसा से इसकी संपूर्ति होती है तो अच्छी बात है, किन्तु नहीं होती तो हिंसा का आलम्बन लेने में भी हिचकना नहीं हैं, संकोच नहीं करना है। उसका स्पष्ट मत था– बुजुर्ग वर्ग कभी भी अपने अधिकार को छोड़ना नहीं चाहेगा। वर्ग संघर्ष अनिवार्य है और उसमें हथियारों का उपयोग भी अवश्यंभावी हैं महावीर और गांधी दोनों साधन शुद्धि पर दिया है।

गुजरात के एक लेखक हैं– गोकुलभाई नानजी। उन्होंने अपनी एक पुस्तक में लिखा है 'आचार्य भिक्षु के चतुर्थ पट्टधर जयाचार्य के द्वारा साधन शुद्धि का जो सूत्र था, बीज था वह श्रीमद् राजचन्द्र के पास पहुँचा और श्रीमद् राजचन्द्र के द्वारा वह सूत्र महात्मा गांधी तक पहुँचा।

इस प्रकार साधन शुद्धि की एक पूरी श्रृंखला और तादात्म्य की कड़ी प्राप्त होती है। श्रीमद् राजचन्द्र और महात्मा गांधी साधन शुद्धि पर अटल विश्वास करते थे। किन्तु मार्क्स शुद्ध आर्थिक व्यक्ति थे। जहां शुद्ध आर्थिक चिन्तन होता है, वहाँ साधन शुद्धि का विचार गौण बन जाता है। ऐसा नहीं है कि वे हिंसा के समर्थक या युद्ध के समर्थक थे किन्तु उनके सामने यह प्रश्न नहीं था कि केवल साधन शुद्धि पर ही चलना है। गांधी ने कहा– शुद्ध साधन से स्वतन्त्रता मिलती है तो मुझे मान्य है। अगर युद्ध या हिंसा से मिलती है तो आज ही मैं अपने संघर्ष को त्यागने के लिए तैयार हूँ। ऐसी स्वतंत्रता मुझे नहीं चाहिए। मैं आजादी चाहता हूँ, अहिंसा के द्वारा, चाह वह सौ वर्ष बाद ही मिले। मार्क्स और कीन्स का साधन शुद्धि पर इतना अटल विश्वास नहीं था। क्योंकि ये दोनों आध्यात्मिक नहीं आर्थिक व्यक्ति थे।

मार्क्स ने साधन–शुद्धि के विचार को गौण कर दिया। कीन्स ने कहा– अभी हमें सम्पन्नता का विकास करना है, इसलिए अभी हमारे लिए अहिंसा नैतिक मूल्य आदि का

विचार करने का अवकाश नहीं हैं। उन्होंने कहा– अर्थशास्त्र ही विज्ञान है। इस विज्ञान के संदर्भ में नैतिकता, अनैतिकता का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं था। इन पर विचार करना अथिक्स का काम है, नीतिशास्त्र का काम है। नीतिशास्त्र के विषय को अर्थशास्त्र का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए। इसलिए वे नैतिकता, अहिंसा, साधन शुद्धि, चरित्र आदि किसी भी विषय को महत्व देने के लिए तैयार नहीं हुए।

5- i;kstu& पांचवा पेरामीटर है प्रयोजन। सामने कोई प्रयोजन होना चाहिए। महावीर ने एक प्रयोजन का प्रतिपादन किया – अव्याबाध सुख– हमें ऐसा काम करना है, जिसकी पीछे कोई बाधा न हो, कोई दुःख न हो। एक दुःखानुगत सुख है और एक केवल सुख। एक सुख होता है जिसके पीछे–पीछे दुःख चलता है जैसे दिन के पीछे रात चलती है। वह दुःखानुगत सुख होता है। वह अव्याबाध सुख नहीं होता, साबाध सुख होता है। महावीर ने कहा, ऐसा सुख पाया जा सकता है, जिसके पीछे कोई बाधा नहीं है, जो शाश्वत है। उस सुख को पाना हमारा प्रयोजन है।

गांधी का एक स्थूल लक्ष्य था– स्वराज या स्वतन्त्रता की प्राप्ति। यह राजनीतिक लक्ष्य था किन्तु मूल लक्ष्य नहीं था। उनका मूल लक्ष्य था– ईश्वरीय साक्षात्कार या सत्य को पाना, सत्य पर पहुँच जाना।

मार्क्स और कीन्स– इन दोनों का एक लक्ष्य रहा सुख–सन्तुष्टि। समाज को सुख या सेटिस्फेक्शन मिले। इतना अर्थ हो जाये कि गरीबी मिट जाये, सुख मिले। किन्तु सुख के पीछे जो आ रहा है, उस पर विचार नहीं किया। भूखे को रोटी मिली, सुख मिला, किसी नंगे को कपड़ा मिला, सुख मिला। खुले आसमान के नीचे सोने वाले को छत मिली तो सुख मिला, किसी बीमार को दवा मिली, सुख मिला। जहां आर्थिक प्रयोजन हो, वहां इससे आगे जाया नहीं जा सकता। अगर अध्यात्म का दर्शन उनके सामने होता तो सुख की कल्पना कुछ दूसरी होती । किन्तु आर्थिक जगत में यही चरम सीमा है। अर्थशास्त्र की सीमा को पार कर वे थोड़ा और गहरे चिंतन मे जाते तो शायद उनकी सुख की धारणा भी बदल जाती।

6- LorU=rk dk i'u& हम एक बात पर और विचार करें। स्वतन्त्रता ओर सुख– ये दोनों चिरकालीन अभिप्रेरित रहे हैं। मनुष्य चाहता रहा है– स्वतंत्र रहे और सुखी रहे।

जहां महावीर और गांधी का प्रश्न है, वहां नितान्त स्वतन्त्रता का प्रश्न है। व्यक्ति स्वतन्त्रता सर्वप्रथम मान्य है। जहां व्यक्ति की स्वतन्त्रता बाधित हो, वह स्थिति न महावीर को मान्य है, न गांधी को। मार्क्स ने भी इस अर्थ में कम दौड़ नहीं लगाई। उन्होंने भी एक सपना देखा और वह बहुत महत्वपूर्ण है। 'स्टेटलेस सोसायटी' राज्यविहीन समाज– यह कितना बड़ा स्वप्न है। ऐसी स्वतन्त्रता, जहां कोई शासन ही नहीं है।

कीन्स ऐसा सपना नहीं देख सके। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में स्वतन्त्रता तो मान्य है किन्तु वे स्टेटलेस सोसायटी की कल्पना और उसका प्रतिपादन नहीं कर सके। मार्क्स ने ऐसा किया किन्तु जहाँ केन्द्रित अर्थव्यवस्था होती है, वहाँ राज्यविहीन शासन का सपना कैसे लिया जा सकता है? वहाँ तो हिंसा और दण्ड का सहारा लेना ही होग। वहां तानाशाही पनप सकती है, स्वतन्त्रता की बात नहीं हो सकती।

लेनिन ने मार्क्स के सपने को साकार करने का प्रयत्न किया किन्तु स्टालिन के हाथ में जैसे ही सत्ता आयी, तानाशाही का रूप इतना विकराल हो गया, स्वतन्त्रता के लिए अवकाश ही नहीं रहा। सारी स्थिति बदल गयी, मार्क्स का वह सपना अधूरा ही रह गया।

स्वतन्त्रता पदार्थ के साथ नहीं जुड़ सकती, जहां–जहां पदार्थ का विकास होता है, वहां–वहां आदमी परतंत्र बन जाता है। पहले पदार्थ किसी व्यक्ति का गुलाम बनता है, फिर व्यक्ति पदार्थ का गुलाम बन जाता है। जैसे कहा जाता है– पहले आदमी शराब पीता है, फिर शराब आदमी को पीने लग जाती है। ठीक वैसे ही यह कहा जा सकता है– पहले आदमी पदार्थ को अपने अधीन बनाने का प्रयत्न करता है, फिर पदार्थ उसको अपने अधीन बना लेता है। इतना अधीन बना लेता है कि व्यक्ति मरते दम तक पदार्थ को छोड़ नहीं सकता।

इन सारे मापदंडों से हम महावीर, गांधी, मार्क्स और कीन्स की चिन्तनधारा को इनकी प्रकृति को समझने का थोड़ा सा प्रयत्न करें तो उनके द्वारा दी हुई व्यवस्था को हम समझ सकेंगे। महावीर प्रत्यक्षतः कोई अर्थशास्त्री नहीं थे। वे तो अपरिग्रही थे किन्तु उनके अपरिग्रह में से अर्थशास्त्र के तमाम सूत्र फलित होते हैं। गांधी भी प्रत्यक्षतः एक साधक थे। उन्होंने राजनीति का माध्यम लिया इसलिए अर्थव्यवस्था का भी कुछ प्रतिपान किया। मार्क्स और कीन्स ये दोनों विशुद्ध अर्थशास्त्रीय व्यक्तित्व थे, इसलिए

अर्थशास्त्र को समझने के लिए इन दोनों को समझना होगा, किन्तु केवल अर्थशास्त्र को समझ कर हम समाज को अच्छा नहीं बना सकते। कोरा अर्थ बढ़ाकर समाज को स्वस्थ और संतुलित नहीं रख सकते। महावीर और गांधी को समझे बिना मार्क्स और कीन्स को समझा गया तो समाज की व्यवस्था अच्छी नहीं रहेगी। इन चारों का तुलनात्मक अध्ययन अर्थशास्त्रीय दृष्टि से बहुत आवश्यक हैं यह तुलनात्मक अध्ययन हमारे सामने कुछ नए आयाम खोल सकते हैं।

I UnHk

1. उत्तराध्ययन सूत्र 23.75–76, सूत्रकृतांगग में (1/6/6) कहा गया कि भगवान महावीर सूर्य की तरह अंधकार को प्रकाश में बदल देते थे– वइरोयणिंदे व तमं पगासे।
2. गुणचन्द्र, महावीर चरियं, पत्र 114, कल्पसूत्र 85
3. कल्पसूत्र 87–88
4. कल्पसूत्र 91 एवं विशेषावश्यक भाष्य 1838
5. देवेन्द्र मुनि, आचार्य, भगवान महावीर एक अनुशीलन, पृ.– 266
6. देवेन्द्र मुनि, आचार्य, भगवान महावीर एक अनुशीलन, पृ. – 266
7. अविसाहिए दुवे वासे सीतोदं अभोच्चा णिक्खन्ते– आचारांग 9/1/11
8. नेमिचन्द्र, महावीर चरियं 882, हेमचन्द्र, त्रिषष्टिशलाकापुरूष चरित्र 10/3/29–31
9. आयारो, 9/1/10
10. भयवं तुम्बे अन्निथवि पूज्जा, अहं कहं जायि? – आवश्यक मलयगिरी वृत्ति। महावीर चरियं 5/158 त्रिषष्टिशलाका पुरूष 10/3/218
11. आवश्यक चूर्णि 317–319, महावीर चरियं 2/24/6
12. आचारांग 2, कल्पसूत्र 116
13. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) का लेख 'प्राकृत भाषा एवं साहित्य।' 'प्राकृत भारती' पुस्तक के पृष्ठ–1 पर प्रकाशित।
14. जैन, सागरमल (डॉ.) – जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग 2 (राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर से प्रकाशित) – पृष्ठ 114
15. भाव पाहुड 132, समणसुत्तं गाथा 140
16. आचारांग सूत्र 1/2/5
17. परिग्गहनिविद्वाणं, वेरं तेसिं पवड्ढई– सूत्रकृतांग 1/2/3
18. प्रश्नव्याकरण 1/5
19. अत्थो मूलं आणत्थाणं– मरणसमाधि 603
20. दशवैकालिक सूत्र 6/21, मूर्च्छा परिग्रहः – तत्वार्थ सूत्र 7/17, जे ममाइय मत्रि जहाति, से जहाति ममाइयं– समणसुत्तं 142
21. को णाम भणिजं बुहो पर दव्वं, मम इमं हवदि दव्वं अप्पाणमप्पणो परिग्रहं तु णियदो वियाणन्तो– समयसार 207
22. उत्तराध्ययन 5/4, सूयगहो 1 (सम्पा.– आचार्य महाप्रज्ञ) 1/1/2, समणसुत्तं 141
23. भार्गव, दयानन्द (डॉ.) 'अपरिग्रह की आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता' पृ.–2, सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि भगवान महावीर ने पार्श्वनाथ के चातुर्याम में ब्रह्मचर्य जोड़ा।
24. जैन, सागरमल (डॉ.) – जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन– पृष्ठ–235
25. प्रश्नव्याकरण सूत्र 1/3/10
26. दशवैकालिक सूत्र 6/14
27. गांधी, महात्मा, 'अपरिग्रह विचार' जिनवाणी अपरिग्रह विशेषांक पृ.–123
28. गांधी, महात्मा 'मंगल प्रभात' पुस्तक से।
29. संत विनोबा, 'सर्वोदय' दिसम्बर– 1952

30. उत्तराध्ययन सूत्र 10वाँ अध्ययन

31. आचारांग 1/1/4/35

32. आचारांग 1/3/4

33. धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए। –आचारांग 1/2/1/10

34. टाचारांग 1/5/2

35. प्रश्नव्याकरण 1/3 एवं ज्ञानार्णव 128

36. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) 'अपरिग्रहः व्यक्ति और समाज के सन्दर्भ में जिनवाणी अपरिग्रह' विशेषांक पृ.–255

37. कयाणं अहं अप्प वा बहुं वा परिग्गहं परिच्चिइस्सामि। स्थानांग सूत्र 3 व 4

38. भवगती आराधना 1118–1119

39. भगवती आराधना 1168

40. 'जिनवाणी' अपरिग्रह विशेषांक पृ.–113 पर उद्धत

41. नानेश, आचार्य 'समता दर्शन और व्यवहार' पृ.–14

42. महाप्रज्ञ, आचार्य – 'महावीर का अर्थशास्त्र' पृ.–110–111

43. अमर मुनि, उपाध्याय 'अपरिग्रह दर्शन' पृ.–175

44. भार्गव, दयानन्द (डॉ.) 'अपरिग्रह की आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता' पृ.–15

45. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू 1999 पृ. –77

46. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू 1999 पृ. –121

47. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू 1999 पृ. –76–77

48. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, डॉ. आर.एन. सिंह, 2008, रमेश बुक डिपो, जयपुर पृ. –4

49. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, एम,एल. सेठ, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 2009, आगरा, पृ. –2

50. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, पृ.–123

51. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, पृ.–17

52. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, पृ.–71

53. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, पृ.–72

54. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, पृ.–77

षष्ठम अध्याय

जैन साहित्य में आर्थिक विचार तथा वैश्वीकरण की आवश्यकता

परिच्छेद प्रथम

प्रमुख आर्थिक विचार

- मनुस्मृति व शुक्रनीति में आर्थिक विचार
- कौटिल्य व गांधी के अर्थ विचार
- पं. दीनदयाल व जे.के. मेहता का आर्थिक चिंतन

परिच्छेद द्वितीय

आधुनिक अर्थव्यवस्था

- पर्यावरण को क्षति
- बजारवाद को बढ़ावा
- भय और हिंसा का अर्थतन्त्र

परिच्छेद तृतीय

विश्व शांति और आर्थिक विकास में जैन दर्शन की भूमिका

- विश्व बिना सीमाओं के
- नई विश्वव्यवस्था तथा आर्थिक अवधारणा
- विश्व शांति और जैन दर्शन

v/;k; "k"Be

tu lkfgR; e vkfFkd fopkj rFkk o'ohdj.k dh vko';drk

प्राचीन काल से ही भारत में आर्थिक चिन्तन पर अनेक ग्रंथों द्वारा विचार किये गये हैं, जिसमें वेद, पुराण, उपनिषद, जैन आगम, विदुर नीति, रामायण, महाभारत, याज्ञवल्क्य नीति, मनुस्मृति ग्रंथ शामिल हैं। इन ग्रंथों में वाणित्य, आयात–निर्यात, व्यापार, कर प्रणाली, मुद्रा, ब्याज, लाभ, श्रम, वितरण, समृद्धि तथा गरीबी आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है। ईषोपनिषद में वर्णित इस श्लोक में भी कहा गया है–

''ईषा वास्यं इदं सर्वे यात्किण्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुज्जीथा या गृधः कस्य स्विद् धमम्।।''[1]

इस मंत्र में आर्थिक चिन्तन के बारे में बताया गया है। इसके अनुसार किसी पदार्थ का भोग करें तो त्याग पूर्वक करे, मिल बांट कर खाओ, लोभ का त्याग करें।

प्राचीन समय से ही आर्थिक चिन्तन के बारे में विभिन्न ग्रंथों में पढ़ने का मिलता है। जैन आगम तथा महावीर अर्थशास्त्र की व्याख्या करने पर यह मालूम पड़ सकता है कि मनुष्य अपने जीवन को किस प्रकार आनन्दमयी बना सकता है।

अर्थशास्त्र का वास्तविक अर्थ यह है कि–

Economics :- Form the “Greek” work (Oikos) जिसका अर्थ है “House” and (Nomos) जिसका अर्थ है “Rule” यानि “Household management, Social Science that studies the production, distribution, trade and consumption of goods and measurable variable, is broadly divided into two main branches[2]:-

(i) Micro Economics (ii) Marco Economics

Micro शब्द ग्रीक भाषा के Mikros से बना है जिसका अर्थ है सूक्ष्म इसी प्रकार Macro भी ग्रीक भाषा के शब्द “Macros” से बना है, जिसका अर्थ है– व्यापक

(i) Micro Economics :- में प्रो. बोल्डिग कहते हैं कि यह विशिष्ठ फर्मों, विशिष्ठ वस्तुओं का अर्थशास्त्र है।

(ii) Macro Economics :- में प्रो. बोल्डिग के अनुसार Macro Economics व्यक्तिगत मात्राओं से नहीं अपितु इन मात्राओं के समूह से संबंध रखता है। यह व्यक्तिगत आय से नहीं बल्कि राष्ट्रीय आय से, व्यक्तिगत कीमत से नहीं बल्कि कीमत स्तर से, व्यक्तिगत उत्पादन से नहीं बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन से सम्बन्धित है।

वर्तमान में जो आर्थिक चिन्तन का विकास 1936 में जे.एम. कीन्स की प्रकाशित पुस्तक ''दी जनरल थ्योरी'' के बाद से हुआ है।

ifjPNn iFke

ie[k vkfFkd fopkj

भारत का अतीत गौरव पूर्ण रहा है, ब्रिटिश शासन से पहले यहां की अर्थव्यवस्था धन–धान्यपूर्ण, उन्नतशील तथा समृद्ध थी। 17वीं शताब्दी में भारत दुनिया का धनी देश था। कृषि व्यवस्था एवं औद्योगिक विकास की दृष्टि से भारत की गिनती श्रेष्ठ देशों में होती थी। कालान्तर में ब्रिटिश शासन की शोषण एवं दोषपूर्ण आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप आर्थिक शोषण और साधनों के बाहरी रिसाव से भारत आर्थिक पतन की ओर पहुँच गया। परन्तु यदि इतिहास उठाकर देखें तो अर्थशास्त्र का विस्तृत स्वरूप हमारे भारतीय शास्त्रों में विद्यमान है।

euLe'fr e vkfFkd fopkj

कौटिल्य मनु को वेदों के बाद राजनीति, दण्डनीति एवं अर्थशास्त्र का पहला आचार्य मानते हैं। मनुस्मृति का प्रणयन किसने किया, इस पर प्रायः विवाद है। नारद स्मृति के अनुसार मनु ने एक लाख श्लोकों तथा 108 अध्यायों में एक धर्मशास्त्र लिखे उसे नारद को पढ़ाया। वर्तमान स्मृतियों में मनुस्मृति ही ऐसा ग्रंथ है जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरूषार्थों का विशद प्रतिपादन किया गया है।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में धर्मशास्त्र के अन्तर्गत धर्म, राजनीति, संस्कृति एवं अर्थनीति आदि सब कुछ पाया जाता है। अर्थशास्त्र को मुख्यतः राजा के अधिकारों, कार्यों व उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित शास्त्र माना गया है। मनु के अनुसार अर्थ मानव जीवन की मूल आवश्यकता है, उसके बिना मानव शरीर जीवित नहीं रह सकता। अर्थ के बिना धर्म और काम लंगड़ा है। उन्होंने अर्थ की महत्ता के साथ–साथ कार्य के धर्म से नियन्त्रित किया है, क्योकि अर्थ की महत्ता तभी होती है जब तक कि वह अधर्म की ओर प्रवृत्त नहीं होता है। अशुद्ध धन से प्राप्त सुख परमार्थ विरोधी होने के कारण त्याज्य है।

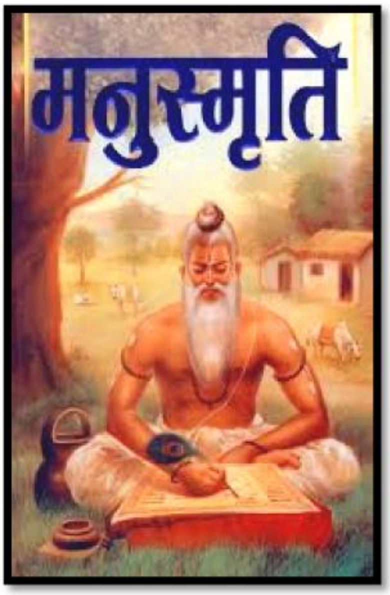

euLefr

'kØuhfr e: vkfFkd fopkj

शुक्रनीति में वर्णित विचारों में मुख्यतः अर्थशास्त्र की परिभाषा धनार्जन, अर्थ की महत्ता, धनार्जन का उपयोग, संयमित उपभोग, उत्पादन व्यवस्था, विनिमय व्यवस्था, मूल्य निर्धारण, व्यापार, मजदूरी, सार्वजनिक आय–व्यय, पर्यटन आदि प्रमुख है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि में जिस ''शुक्र'' का उल्लेख किया गया है वे वही शुक्राचार्य है, जिनका ग्रंथ शुक्रनीति सार है। शुक्रनीति में मुल रूप से चार ही अध्याय हैं। पश्चिम के लोगों का ऐसा दावा है कि अर्थशास्त्र हमने ही प्रारंभ किया। दुनिया में

अन्य किसी ने हमसे पहले अर्थशास्त्र एवं अर्थचिंतन के बारे में विचार नहीं किया। यही कारण है कि एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है, परन्तु हमारे प्राचीन विचारकों ने एड्म स्मिथ से हजारों वर्ष पूर्व ही अर्थशास्त्र को परिभाषित कर दिया, जिनमें शुक्राचार्य प्रमुख थे। इन्होने विद्याओं को चार भागों में बांटा, अन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति।

प्राचीन समय का वार्ताशास्त्र ही आज का अर्थशास्त्र है। वार्ताशास्त्र में कृषि, पशुपालन, उद्योग तथा व्यापार को प्रधानता दी गयी है। जिससे भौतिक उपलब्धियों और सम्पत्ति आदि का अर्जन होता था। शुक्र ने अर्थशास्त्र को ज्ञान की 32 शाखाओं में से एक शाखा के रूप में परिभाषित किया। इस नीति में अर्थ को तीन स्थानों पर परिभाषित किया गया है।

''अर्थानर्थो तु वार्तायांम''

अर्थात् ''अर्थ के उपार्जन और अनर्थ के निवारण के उपाय जिस शास्त्र में बताये जाते हैं वह अर्थशास्त्र है।'' पश्चिमी अर्थशास्त्री अर्थ का तो अर्जन बताते हैं, लेकिन अनर्थ का निवारण नहीं बताते हैं।

कुसीद कृषि वाणिज्यं गोरक्षा वार्तायोच्यते।

सम्पतो वार्ताया साधुर्न वृतेर्भयमृच्छति।।[3]

यानि ऋण पर ब्याज का लेन–देन, कृषि, व्यापार और गौ रक्षा इन विषयों से सम्बन्धित व्यवहार को वार्ता कहते हैं। जिस व्यक्ति को इस वार्ताशास्त्र का भलीभांति ज्ञान है उसे आजीविका का भय नहीं होता है। वह सुख से जीवनयापन करता है। शुक्रनीति में यह भी कहा गया है कि जिस शास्त्र में श्रुति और स्मृति के अनुकूल अर्थात् नैतिक मर्यादा से युक्त सिद्धान्त बनाये जाते है उसे हम अर्थशास्त्र कहते हैं। इसके अलावा इस शास्त्र में अर्थ का अर्जन युक्ति पूर्वक ही नहीं वरन् सुयुक्ति पूर्वक करने को कहा है। शुक्र ने पश्चिमी अर्थशास्त्रियों की तुलना में अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में ज्यादा व्यापक, ज्यादा समन्वित दृष्टिकोण उनसे हजारों वर्ष पूर्व ही शुक्रनीति में स्पष्ट कर दिया। अर्थ से ही धर्म, काम, मोक्ष तीनों प्राप्त होते हैं। शुक्र ने एक कोड़ी से लेकर

रत्नादि को ''द्रव्य'' कहा है। पशु, अन्न, वस्त्र, तृण आदि को 'धन' कहा है। इसके अनुसार मनुष्य को क्षण–क्षण भर प्रतिदिन अभ्यास करके विद्या का तथा कण–कण भर कर संग्रह कर धन का अर्जन करना चाहिए।

dkfVY; d: vFk fopkj

आचार्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रणेता माने गये हैं। कौटिल्य ने समकालीन आर्थिक समस्याओं और अर्थव्यवस्था पर जितना अधिक चिन्तन किया, उतना किसी अन्य आचार्य ने नहीं किया। उन्होंने आर्थिक नियमों के प्रतिपादन में जिन तर्कों का प्रयोग और उल्लेख किया गया है, वे आज की परिस्थितियों में भी लागू किये जा सकते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ में 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 विषय तथा 6000 श्लोक है।

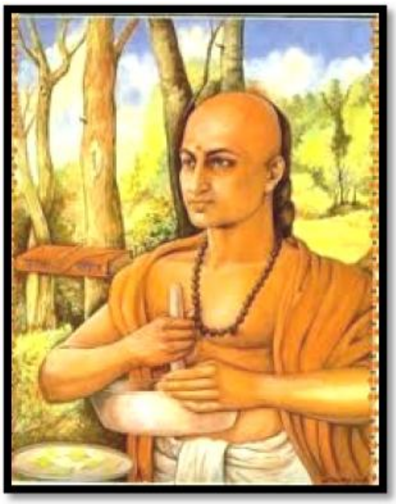

Pkk.kD;

इन्होंने ज्ञान की शाखाओं को विद्या नाम दिया तथा यह स्पष्ट किया है कि जिससे किसी विशेष संदर्भ में उचित–अनुचित, कर्तव्य–अकर्तव्य का ज्ञान होता हो उसे विद्या कहते हैं, उन्होंने ज्ञान की चार शाखाओं का वर्णन किया है–

1. त्रयी
2. वार्ता
3. अन्वीक्षिकी
4. दण्डनीति

कौटिल्य ने अर्थ, धर्म और काम के आधार पर ही मानव जीवन को विभक्त किया है और इन तीनों में से उन्होंने अर्थ को प्रधानता दी है क्योंकि बिना अर्थ के किसी प्रकार की क्रिया सम्भव नहीं हो सकती है। इन्होंने धर्म के अर्थ को प्रधानता दी है। वे कहते है कि ''सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है और अर्थ का मूल राज्य है।'' कौटिल्य के अर्थशास्त्र में धर्म तथा काम दोनों ही क्रियाएं अर्थ पर निर्भर बतायी हैं। इनके अनुसार ''संसार में धर्म ही वस्तु है, धन के अधीन धर्म और काम है।''

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है, ''मनुष्यों के व्यवहार या जीविका को अर्थ कहते हैं, मनुष्यों से युक्त भूमि का नाम ही अर्थ है। ऐसी भूमि को प्राप्त करने, विकसित करने (पालन–पोषण करने) के उपायों को निरूपण करने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र कहलाता है। अर्थशास्त्र की इतनी सटीक और स्पष्ट परिभाषा कौटिल्य से पूर्व विश्व के आज तक किसी भी विद्वान ने नहीं दी।

xk/kh d: vFk fopkj

गाँधी जी मानवतावादी थे तथा जीवन में आध्यात्मिक व नैतिक पक्ष पर अधिक बल देते थे। अर्थशास्त्र व नीतिशास्त्र दोनों ही सामाजिक विज्ञान है तथा दोनों ही समाज कल्याण के साधक है। दोनों को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। अतः आर्थिक अवधारणाओं में नीतिगत विचार स्वतः ही समाहित है। गाँधीजी ने अर्थशास्त्र के उद्देश्य, आवश्यकता सम्बन्धी, ट्रस्टीशिप सिद्धान्त, विकेन्द्रीकरण, खादी का अर्थशास्त्र, मशीनीकरण का विरोध, श्रम अर्थशास्त्र, व्यवसायिक शिक्षा, सर्वोदय आदि विषयों पर अपने विचार विस्तृत रूप से व्यक्त किये हैं।

vko';Drk lEcU/kh fopkj

सादा जीवन उच्च विचार गाँधीजी का जीवन दर्शन है। उनका मत था कि– मानव की आवश्यकताएँ अनन्त हैं, हम उन्हें जितना बढ़ाना चाहेंगे उतनी ही बढ़ती चली जायेंगी। सभ्यताओं का सच्चा अर्थ अपनी इच्छाओं को बढ़ाने में नहीं बल्कि उनको सप्रयास कम करने से है। भौतिक कल्याण ही जीवन में सुख प्राप्ति का साधन नहीं है। गाँधी जी का कहना था कि आवश्यक्ताओं की वृद्धि मानव का व्यक्तित्व कलंकित कर

रही हैं और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बलवाल द्वारा निर्बल के शोषण का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं।

iU;kl fopkj

ट्रस्टीशिप सिद्धान्त गाँधीजी की देन है, अहिंसा व त्याग की भावना पर आधारित इस सिद्धान्त का आधार इशोपनिषद् है। इस श्लोक के प्रथम सूत्र की विस्तृत व्याख्या गाँधीजी ने प्रस्तुत कर प्रन्यास सिद्धान्त प्रतिपादित किया–

ईशावास्यमिंद सर्व यत्किंच जगत्यां जगत।

तेन त्यक्तेन भुर्जाथा। मा गृधः करस्यस्विद धनम्।[1]

यानि अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़ चेतन स्वरूप है वह समस्त ईश्वर में व्याप्त है। इस ईश्वर को साक्षी रखते हुए त्यागपूर्वक इसे भोगते रहे। इसमें आसक्त मत हों क्योंकि धन भोग्य पदार्थ किसका है अर्थात् किसी का भी नहीं है।

इस श्लोक अनुसार गाँधीजी के जो भाव है, में बताया कि वस्तु व्यक्ति के जीवन के लिये आवश्यक है। उस पर ही व्यक्ति का स्वामित्व है। उन्होंने पूंजीपतियों से कहा कि वे अपने को उन लोगों का न्यासी माने, जिन पर वे मन की पूंजी बनाने, धारण करने तथा बढ़ाने पर निर्भर करते हैं। न्यासी के रूप में उसे स्वामित्व धारण करने का अधिकार होगा और धन बढ़ाने के लिऐ वे अपनी वृद्धि वैभव का उपयोग कर सकते हैं। गाँधीजी के प्रन्यास सिद्धान्त में केवल धार्मिक विश्वास ही नहीं था अपितु व्यावहारिकता भी थी वे कहते कि यदि बलपूर्वक मनुष्यों को उनकी सम्पत्ति या वैभव को राज्य छीनेगा तो इसका परिणाम होगा– वर्ग, संघर्ष, घृणा, सर्वहारा, अधिनायक व तंत्र आदि की स्थापना।

गाँधीजी के शब्दों में– सम्पत्ति के वर्तमान स्वामियों को यह अवसर होगा कि वे दो विकल्पों से एक का चयन कर ले या स्वेच्छा से स्वयं को सम्पत्ति का न्यासी बना ले या फिर संघर्ष का सामना करें।

[kknh vFk'kkL=

खादी व चरखा गाँधीजी के विकेन्द्रीकरण का रचनात्मक स्वरूप है। इन्होंने खादी को स्वराज का रहस्य व अकाल तथा सूखे के निराकरण का एकमात्र मार्ग बताया है।

egkRek xk/kh

Lons'kh vFk'kkL=

गाँधीजी ने स्वदेश को ''कामधेनु'' बताया है जो हमारी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करती है तथा हमारी कठिन समस्याओं को दूर करती है। उन्होंने चरखा तथा खादी को स्वदेशी पर आधारित अर्थशास्त्र के दो प्रभावशाली प्रतीक बताये।

i- nhun;ky dk vkfFkd fpUru

पूंजीवादी एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं से त्रस्त विश्व को उन्होंने ''एकात्म मानव दर्शन'' का सिद्धान्त दिया जो न केवल व्यक्ति के जीवन से लेकर सम्पूर्ण मानव जाति का चिन्तन है अपितु मानवोत्तर प्रकृति तथा उससे भी आगे जाकर समग्र रूप से टोह लेने वाला चिन्तन है।

एकात्मक मानव दर्शन का अर्थ है– मानव जीवन तथा सम्पूर्ण प्रकृति के एकात्मक संबंधों का दर्शन। यह एक ऐसा जीवन दर्शन है जो मनुष्य का विचार केवल ''आर्थिक मानव'' के एकांकी दृष्टिकोण से न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओं का

तथा मानव के मानवता सृष्टि के साथ परस्पर पूरक एकात्मक सम्बन्धों को भी ध्यान में रखकर समृद्ध, सुखी, जीवन की दिशा दर्शाता है। एकात्मक मानव दर्शन भारतीय संस्कृति का जीवन दर्शन है जो शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा से युक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चतुर्विध पुरूषार्थों की साधना करने वाले दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। इस चतुर्विध पुरूषार्थों से पूर्ण मानव ही एकात्मक मानव दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। एकात्मक मानव दर्शन में परिवार, संस्था का बहुत महत्व है क्योंकि व्यक्ति को ''अहम्'' से ''वयम्'' की ओर ले जाने अर्थात् समष्टि जीवन को पहला पाठ परिवार में ही दिया जाता है।

i- nhun;ky mik/;k;

उपाध्याय जी के अनुसार पर्याप्त मात्रा में अर्थ का उत्पादन न हो तो समाज का योगक्षेम सुचारू ढंग से नहीं चलेगा। अर्थ का अभाव या प्रभाव जब समष्टिगत होता है तब समष्टि के सामने भी अनेक समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। हमारे यहां व्यक्ति एवं समाज का अस्तित्व सुख–दुख, हित–अहित न केवल एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, अपितु एक दूसरे पर निर्भर भी हैं।

1. अस्तित्व के लिए संघर्ष
2. सर्वोत्तम का अस्तित्व
3. प्रकृति का शोषण
4. व्यक्तिगत अधिकार

इन सभी प्राचीन और समकालीन आर्थिक विचारों से यह सिद्ध होता है कि हिन्दू और जैन अर्थ चिन्तन कोई नया नहीं है, बल्कि अनादिकाल से भारत में जो सांस्कृतिक

धारा बह रही है, जो वर्षों की गुलामी से भी नहीं टूटी जिसमें अनेक अनुपम ग्रंथ सृजित हुए हैं, उनमें अर्थ चिन्तन के सूत्र बिखरे पड़े हैं वही हमारे भारतीय आर्थिक चिन्तन के आधार हैं।

अर्थशास्त्र की भारतीय अवधारणा को उक्त आर्थिक नीतियों के आधार पर भारतीय दृष्टि से परखने का प्रयत्न किया गया, जिसमें यह बताया गया कि भारतीय अर्थशास्त्र बाहुल्यता पर आधारित है और सबकी समृद्धि उसका प्राण तत्व है। जबकि पश्चिमी अर्थशास्त्र या तो कालमार्क्स से प्रभावित था या पूंजीवाद से जिसमें केवल लाभ ही उसका प्राण तत्व था।

ik- t-d- egrk dk vkfFkd fpUru

प्रो. मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो उस मानवीय आचरण का अध्ययन करता है जो आवश्यकता रहित स्थिति के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए किया जाता है।[5]

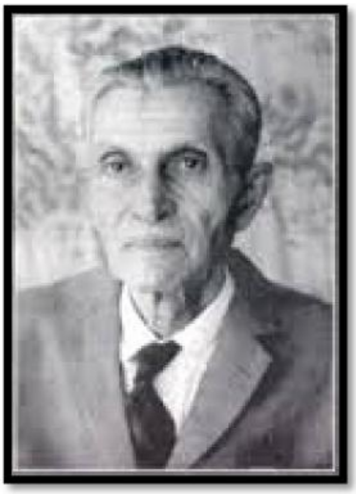

ik- t-d- egrk

एक दूसरे अध्ययन से अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानवीय आचरण का अध्ययन करता है जो दीर्घकाल में दुःख को न्यूनतम करने के प्रयास के रूप में किया जाता है या आवश्यकताओं से मुक्ति पाने और सुख की स्थिति तक पहुंचने के प्रयास के रूप में किया जाता है।[6]

जब तब आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है तब तक हमें कष्ट का अनुभव होता है और उसकी पूर्ति हो जाने पर हमें आनन्द मिलता है। इस प्रकार किसी आवश्यकता की पूर्ति से केवल वह दुःख दूर होता है जिस हम पहले अनुभव कर चुके हैं। यदि आवश्यकताओं को कम कर दिया जाये तो दुःख भी कम हो जायेगा। अतः आवश्यकताओं को निरन्तर कम करते हुए हम वास्तविक सुख की स्थिति में पहुंच सकते हैं। सुख की स्थिति आनन्द या संतोष की स्थिति से भिन्न होती है, क्योंकि आनन्द का अर्थ तो दुःख या कष्ट का दूर होना है, लेकिन सुख का आशय उस स्थिति से जहाँ कोई कष्ट नहीं होता।

प्रो. मेहता का विचार था कि एक आवश्यकता की पूर्ति के बाद दूसरी आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। एक आवश्यकता भी एक बार पूरी हो जाने के बाद पुनः पैदा हो जाती है। इस प्रकार आवश्यकताओं को बढ़ाने से दुःख बढ़ता है। अतः इनको कम करना बहुत आवश्यक है। अतः मानव की आवश्यकताओं को कम करने पर ध्यान देना चाहिए।

आवश्यकता रहित स्थिति में मनुष्य पूर्णतया निष्क्रिय नहीं हो जाता बल्कि वह सन्तुलन की अवस्था प्राप्त कर लेता है जहाँ कष्ट व आनन्द दोनों समाप्त हो जाते हैं और उसे केवल सुख ही मिलता है। अधिकांश ऋषि–महर्षि व साधु संत ऐसा ही आचरण करते आये हैं।

ifjPNsn f}rh;

vk/kqfud vFkZ O;oLFkk

मानव जाति के ज्ञात इतिहास में भौतिक जीवन सम्बन्धी सबसे अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन बीसवीं शताब्दी मे हुए। हालांकि, इन परिवर्तनों की शुरूआत विभिन्न यन्त्रों व मशीनों के आविष्कारों के साथ उन्नीसवीं शताब्दी में हो चुकी थी। इस दौर में तीन बड़ी घटनाएँ हुई— औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक तकनीकी उन्नति और लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था। विज्ञान और उद्योग साथ—साथ चले। विज्ञान की मदद से उद्योगों का आधुनिकीकरण हुआ ओर इससे विज्ञान का व्यवसायीकरण हुआ। विज्ञान और वाणिज्य की दोस्ती से संसार में पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ स्थापित होने लगी। पूंजीवाद की ताकत को देखते हुए राजसत्ताओं ने भी इस व्यवस्था को प्रश्रय देने में अपना भला समझा। पूंजीवाद सत्ता को साथ लेकर साम्राज्यवाद की ओर बढ़ा और संसार के निर्धन देशों और राजसत्ताओं में व्यापार के बहाने राजनीतिक उपनिवेश बनाने लगा। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप विश्व में समाजवाद और लोकतन्त्र के स्वर गूंजने लगे।

iwathokn

पूंजी धनोपार्जन का एक साधन है। मानव की असीम तृष्णा और अति संग्रह की तृप्ति से सम्पत्ति और सत्ता का कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रीयकरण पूंजीवाद है। 19वीं सदी में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप आधुनिक पूंजीवाद जन्म ले चुका था। पूंजीवाद के फलस्वरूप शोषण, सामाजिक—आर्थिक विषमता, साम्राज्यवाद आदि बुराइयों ने अपने पाँव पसारे। निजी स्वामित्व, निजी लाभ, उत्तराधिकार, उद्यम की स्वतन्त्रता आदि इस व्यवस्था की विशेषताएँ होती हैं। वर्तमान में जो पूंजीवाद दिखाई पड़ता है, वह उसके सैद्धान्तिक रूप से काफी भिन्न है। बढ़ता उपभोक्तावाद और बाजारवाद इसी व्यवस्था के नये आयाम है। यह अर्थशास्त्री कीन्स के इस विचार का समर्थन करता है कि भौतिक सम्पन्नता के विकास में अहिंसा आदि नैतिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं है। पूंजीवादी समाज में कला, साहित्य, मानवीय मूल्य (Values) और सम्बन्ध, सभी का अन्तिम मूल्य (Price) बाजारू मूल्य बन जाता है, जिसमें महत्व इस बात का नहीं कि किसी कलाकार और साहित्यकार ने कितनी गहरी अनुभूति या मानवीय सत्य को सफल

अभिव्यक्ति दी है बल्कि यह है कि उसने एक व्यवसायिक समाज की जरूरत के मुताबिक कितना खपत के लायक माल तैयार किया है। ऐसे समाज में आदमी की संवेदनशीलता और सृजनशीलता नष्ट होती चली जाती है। इससे उसका आत्म बोध और अस्मिता बोध समाप्त हो जाता है। व्यक्ति भीतर से रिक्त हो जाता है। आगमों की भाषा में जो व्यक्ति शिल्पी, कलाकार और कारीगर थे, पूंजीवादी व्यवस्था ने उन सबको श्रमिक बना डाला। इस व्यवस्था ने मानव–मानव के बीच के समता और बन्धुत्व के मूल्यों का लोप कर दिया।

संसार के अधिकांश देशों में लोकतन्त्रीय व्यवस्था आ गई तो पूंजीवाद आर्थिक उपनिवेश की ओर बढ़ने को आतुर हैं। पूंजीवाद पूरी तरह भौतिकवाद पर आधारित है। फिर भी, सभ्यता और विकास के अनेक क्षेत्रो में पूजीवादी अर्थव्यवस्था ने दूसरी व्यवस्थाओं के साथ मिलकर योगदान किया है। बेशक, वह योगदान संग्रह के विसर्जन पर ही सम्भव हुआ। असंग्रह और ट्रस्टीशिप की अवधारणाओं से प्रेरित पूंजीवाद परोक्ष रूप से समाजवाद की ओर बढ़ता है। परन्तु बाजार–व्यवस्था पुनः उसे रोक देती है।

lektokn vkj lkE;okn

उन्नीसवीं शताब्दी में कार्लमार्क्स (1818–1883) ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की शोषण प्रवृत्ति के विरूद्ध बिगुल बजा दिया। उन्होंने कहा 'इतिहास का निर्माण राजा–रानियों के किस्सों, सेना–नायकों की जय व पराजय तथा जनसंख्यात्मक कारकों से न होकर, आर्थिक कारकों द्वारा हुआ है।'[7] पूंजीपतियों द्वारा निर्धन और मजदूर वर्ग (सर्वहारा वर्ग) के शोषण को देखकर मार्क्स करूणा और विद्रोह से भर उठे थे। मार्क्स के अनुसार शोषण की व्यवस्था में अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) काम करता है। पूंजीपति को जो अतिरिक्त व अति लाभ होता है, वह श्रमिक के श्रम का अतिरिक्त मूल्य है। जिसे पूंजीपति हड़प जाता है, यही श्रम का शोषण है। शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए उसने द्वन्दात्मक भौतिकवाद के सिद्वान्त की स्थापना की। इस सिद्धान्त के अनुसार बाहरी व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप मनुष्य में होने वाले जैव रासायनिक परिवर्तन ही 'मन' है। इसका अर्थ यह है कि जैसी बाह्य व्यवस्थाएँ होंगी, मानव का मन वैसा ही हो जायेगा। पदार्थ प्राथमिक सत्ता है और मन

उसके आधार पर विकसित चीज है। इसलिए व्यवस्थाएँ बदल देने पर सब ठीक हो जायेगा। व्यवस्था परिवर्तन में मार्क्स साधन सुविधा की परवाह नहीं करते हैं। उनके समाजवाद (Socialism) का उग्र रूप ही साम्यवाद (Communism) है। साम्यवाद का नारा है 'एक सबके लिए और सब एक के लिए' तथा 'प्रत्येक को क्षमतानुसार कार्य करना है और प्रत्येक को आवश्यकता के अनुसार मिलेगा।'

ey e: Hky

पूंजीवादी और मार्क्सवादी, दोनों ही विचारधाराएँ भौतिकवाद पर आधारित है। इसलिए इन विचारधाराओं में प्रकृति और मनुष्य हाशिये पर चले गये और अर्थ केन्द्रिय तत्व बन गया। इसलिए मानव–कल्याण का कोई स्थाई आदर्श स्थापित होने की बजाय विश्व में शोषण, हिंसा, विषमता, वर्ग–संघर्ष, लूटपाट आदि घटनाएँ होती रहीं। मार्क्स का सपना था– समाजवाद। सपना अच्छा था। परन्तु सपने का दर्शन और यथार्थ तक पहुँचने की प्रक्रिया तर्कसंगत नहीं थी। मार्क्स की दो बुनियादी भूलें थी।[8]

1. मानव के संस्थागत रूप पर ऐकान्तिक बल और उसके मानवीय रूप का सम्पूर्ण विस्मरण। मार्क्स की व्यवस्था परिवर्तन से व्यक्ति परिवर्तन की बात सफल नहीं हो पाई। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है स्टालिन का व्यक्तिवादी एकाधिपत्यवाद। जिसने मार्क्स के आदर्शों के बहाने मार्क्स के आदर्शों के बहाने मार्क्स के आदर्शों की अपने जीवन में ही धज्जियाँ उ़ड़ा दी। परिणामस्वरूप नौकरशाही का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया, जिसका मुख्य कार्य लोकसत्ता को मजबूत बनाकर समाजवाद की स्थापना करना था, परन्तु वह आर्थिक–राजनीतिक सत्ताधीश बनकर जनता का उत्पीड़क और शोषक बन गया। बर्नार्ड शॉ को कहना पड़ा कि सत्ता के उपासक उच्च पदाधिकारियों की सामन्तशाही का दूसरा नाम नौकरशाही है।[9]
2. दूसरी भूल मार्क्स ने, विशेषतः उसके उत्तराधिकारियों ने की वह थी– साधन साध्य के विवेक की विस्मृति। मार्क्स द्वारा पूंजीवादियों को दी गई 'संग्राम' की चेतावनी को मार्क्स के उत्तराधिकारियों ने रक्त क्रान्ति का रूप दे दिया। लेनिन ने कहा– राजनीति में कोई नैतिकता नहीं होती, अनिवार्य आवश्यकता ही

प्रयोजनीय वस्तु होती है। हमें धोखाधड़ी, विश्वासघात, कानून–भंग, झूठ बोलने आदि के लिए तैयार रहना चाहिये। जिनसे हमारा मतैक्य नहीं है, उनके प्रति हमारी शब्दावली ऐसी ही होनी चाहिये, जिससे जन साधारण के मन में उनके प्रति घृणा और अरूचि पैदा हो।[10] इस तरह साम्यवाद मूल में ही नकारात्मक दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ा। व्यक्तिवादी पूंजीवाद राजसत्तात्मक पूंजीवाद के रूप में बदला गया। राजसत्तात्मक पूंजीवाद में तानाशाही जुड़ने से मौलिक मानवीय स्वतन्त्राएँ भी छिन गई। मार्क्स के उत्पादन की गुणवत्ता को सुधारने और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की बातें भी विस्मृत कर दी गई।[11] इनके अलावा मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त महज कायिक श्रम को मूल्यांकित करता है और बौद्धिक श्रम व प्रबन्धकीय कौशल की उपेक्षा करता है।

पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों व्यवस्थाओं में संसार में संघर्ष बढ़ा और अशान्ति घटी। मानव के समग्र कल्याण की दिशा में कोई ठोस कार्य नहीं हुआ। जो अर्थशास्त्र संसार में विकसित हुआ, वह इच्छा, आवश्यकता और मांग पर आधारित रहा। इच्छा का क्षेत्र सबसे व्यापक, आवश्यकता का उससे छोटा और मांग का क्षेत्र उससे भी सीमित है। आचार्य महाप्रज्ञ आगमिक अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में आधुनिक अर्थशास्त्र में सुविधा, वासना (आसक्ति या मूर्च्छा) विलासिता और प्रतिष्ठा को और जोड़ देते हैं।[12] क्योंकि ये तत्व मानव की इच्छा, आवश्यकता और मांग को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। विकास की अवधारणा भी इन्हीं तत्वों के इर्द–गिर्द घूमती रही। इसलिए 'अधिक उत्पादन और अधिक उपभोग' जैसी अवधारणाएँ बल पकड़ने लगीं।

Ik;koj.k dh {kfr

डॉ. प्रेम सुमन ने सभ्य मानव के आठ महापाप बताये हैं।[13] आवश्यकता से अधिक जनसंख्या में वृद्धि, प्रकति के सभी क्षेत्रों में प्रदूषण का विस्तार, जीवन के हर क्षेत्र में अति प्रतियोगिता, अतिभोग के प्रति तीव्र लालसा, जीवन की कोशिकाओं का ह्रास, परम्परा से प्राप्त संस्कृति की अवहेलना, एकांतवाद एवं दुराग्रह का प्रचार और अणुशस्त्रों का अन्धा निर्माण, तृष्णा और क्रूरता इन पापों के मूल का कारण है। अधिकाधिक उत्पादन और अधिकतम लाभ की लालसा के चलते पर्यावरण का चिन्ता

किसी ने नहीं की। हालात यह है कि प्राकृतिक आपदाएँ अपने चरम पर पहुँच गई है। लगभग 70 प्रतिशत से अधिक आपदाओं का कारण ही पर्यावरण असंतुलन है। पिछले एक दशक में लगभग 24 अरब लोगों ने अपनी जान प्राकृतिक आपदाओं के कारण गँवाई है। ब्रिटिश अखबार द गार्जियन के अनुसार लगभग 70 लाख लोग हर साल वायु प्रदूषण का शिकार हो जाते हैं। अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखा–तूफान, चक्रवात, भूकम्प, सूखा सुनामी ये सब पर्यावरण को क्षति पहुँचाने की ही नतीजे हैं।

ग्लोबल वार्मिंग की वजह से धरती का तापमान लगातार बढ़ रहा है, ग्लेशियर पिघर रहे हैं, समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है, वहीं नदियाँ सूख रही हैं या प्रदूषित हो रही हैं। जंगल कंक्रीट के शहरों के पीछे कहीं खो गए हैं। जल, थल, नभ किसी को प्रदूषित करने में आधुनिक मनुष्य ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। प्रकृति ओर संस्कृति के क्षरण की भारी कीमत पर जो विकास किया जा रहा है। उस पर अंकुश लगाने के राजनीतिक प्रयास कामयाब होते नजर नहीं आ रहे और 3 दिसम्बर 1984 की रात्रि को हुई भोपाल गैस त्रासदी दुर्घटना में 4000 से अधिक लोग अधिकारिक तौर पर मारे गये। दुनिया का ध्यान फिर इस अन्धाधुन्ध विकास की ओर गया। भारत में भी पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 बना। संसार के हर क्षेत्र में पर्यावरण की तरफ ध्यान दिया जाने लगा। परन्तु मानव अपनी भोगवादी वृत्ति और कई प्रकार के दुराग्रहों के कारण अहिंसा और संयम की निरापद उत्कृष्ट जीवनशैली को सम्यक रूप से अपनाने में परेशानी अनुभव करता है। उसकी यह परेशानी, संसार की कई परेशानियों का कारण बनी हुई है।

egkohj vkSj egkRek xka/kh

महात्मा गांधी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि उनके परिवार का जैन धर्म से दीर्घ सम्बन्ध रहा है। जैन मुनि श्री बेचर स्वामी उनके परिवार के सलाहकार थे। विद्यार्थी जीवन में विदेश जाने से पूर्व उन्होंने बेचर स्वामी से ही मद्यपान, मांसाहार और अनाचार सेवन के निषेध की प्रतिज्ञाएँ की थी, जिनकी बदौलत गांधीजी जीवन में अनेक समस्याओं से बचे।[14]

श्रीमद् राजचन्द्र तो उनके लिए गुरूतुल्य ही थे। गांधीजी ने कहा कि यूरोप के तत्वज्ञानियों में मैं टॉल्सटॉय को पहली श्रेणी और रस्किन को दूसरी श्रेणी का विद्वान समझता हूँ, पर श्रीमद् राजचन्द्र भाई का अनुभव इनसे भी बढ़ा–चढ़ा था। मेरे जीवन पर मुख्यतः श्रीमद् राजचन्द्र की छाप पड़ी है। टॉल्सटॉय और रस्किन की अपेक्षा श्रीमद् राजचन्द्र ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला है। श्रीमद् राजचन्द्र से प्राप्त जैन धर्म और दर्शन सम्बन्धी अनेक पुस्तकों का अध्ययन गांधीजी ने किया। दोनों की बीच पत्र संवाद भी बहुत होता था।[15] दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान भी गांधीजी ने श्रीमद् राजचन्द्र से पुस्तकें मंगवाई थी। उन्होंने जिनभद्रगणि, क्षमाश्रमण, हरिभद्रसूरि, हेमेन्द्राचार्य, अमृतचन्द्रसूरि प्रभृति आचार्यों के विशेषावश्यक भाष्य, पुरूषार्थसिद्धयुपाय आदि ग्रन्थ पढ़े थे, ऐसा अनेक सन्दर्भों से स्पष्ट होता है।[16] श्रीमद् राजचन्द्र ने उन्हें अन्य जैन ग्रन्थों के अलावा उत्तराध्ययन सूत्र भी दिया था। उत्तराध्ययन में जातिवाद का तर्कसंगत ढंग से प्रतिवाद किया गया है। उसमें चाण्डाल कुलोत्पन्न मुनि हरिकेशबल के तपोमय जीवन की महिमा गाई गई है। यह बहुत सम्भव है कि गांधीजी ने मुनि हरिकेशबल के नाम और व्यक्तित्व से प्रभावित और प्रेरित होकर ''हरिजन'' शब्द प्रयोग किया। महात्मा गांधी के चुम्बकीय अहिंसक व्यक्तित्व के निर्माण में जैन धर्म दर्शन की सर्वाधिक प्रभावी भूमिका थी। उनकी आत्मकथा में आहार में द्रव्य–मर्यादा, रात्रि भोजन निषेध और ब्रह्मचर्य का संकल्प जैसे अनेक उत्तम नियम है, जो जैनाचार के मुख्य अंग हैं।

v.kqor vkj xk/khth

महात्मा गांधी के ग्यारह नियम, जिनका आर्थिक–सामाजिक प्रभाव भी कम नहीं है, और आगम की व्रत व्यवस्था में काफी साम्य है। जिसे निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है[17]–

vkxfed or 0;oLFkk	xk/khth dk fu;e
अहिंसा व्रत	अहिंसा व्रत
सत्य व्रत	सत्य व्रत
अचौर्य व्रत	अचौर्य व्रत
ब्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्य
अपरिग्रह	अपरिग्रह
दिशा परिमाण	(शरीर श्रम)
उपभोग परिभोग परिमाण	अस्वाद
अनर्थदण्ड	भय–वर्जन
सामायिक	सर्वधर्म समभाव
देशावकाशिक	(स्पर्श – भावना)
पौषधव्रत	(स्वदेशी)
अतिथि संविभग	(अन्य व्रतों में इसका समावेश)

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अहिंसा और सत्य का प्रयोग पूरे संसार के इतिहास में प्रसिद्ध हो गया। गांधीजी के बाद की दुनिया की अनेक लोकतान्त्रिक, आर्थिक और सामाजिक लडाईयों में अहिंसा का प्रयोग गांधीजी की देन है। स्वातन्त्र्य प्राप्ति में निष्काम कर्मठता की आवश्यकता होती है। यह निष्काम कर्मठता गांधीजी को जैन धर्म

से मिली।[18] उनके सभी व्रत समाज की आर्थिक व्यवस्था से जुड़े हैं। उनकी खादी में अहिंसा, राजकाज और अर्थशास्त्र तीनों का समावेश हो जाता है। अपरिग्रह व्रत को उन्होंने विशेष तौर पर ''ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त'' (न्यास सिद्धान्त) के रूप में निरूपित किया।

dY;k.kdkjh vFkZ'kkL=

ऐसा नहीं है कि अर्थशास्त्रियों ने मानव के विभिन्न प्रकार की गैर आर्थिक सन्तुष्टियों और हितों पर ध्यान नहीं दिया हो। वस्तुतः अर्थ तो साधन मात्र है, जो साध्य है, वह अर्थ नहीं है, परन्तु अर्थ में मापनीय है। इसलिए मार्शल का यह कहना ठीक है कि अर्थशास्त्र एक ओर धन का अध्ययन है, दूसरी ओर जो अधिक महत्वपूर्ण है, वह मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है। अर्थशास्त्री ए.सी.पीगू के अनुसार आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है, जिसे मुद्रा के मापदण्ड से प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः मापा जा सकता है।[19] कल्याणकारी अर्थशास्त्र का कार्य आदर्श अर्थव्यवस्था की स्थापना करना है। इस स्थापना में सैद्धान्तिक अथवा वास्तविक अर्थशास्त्र के नियमों और विश्लेषण उपकरणों (Analytical Tools) को काम में लिया जाता है। ऐसा लगता है कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र पूंजीवाद और समाजवाद के बीच पुल बनाना या बनना चाहता है। परन्तु वह वैसा कर नहीं पाता। इसलिए रोबिन्स और परेटो जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा 'आदर्श अर्थव्यवस्था' की स्थापना में नीतिशास्त्र के हस्तक्षेप को जरूरी नहीं मानना आश्चर्यजनक नहीं लगता है। नीतिशास्त्र को आवश्यक मानने वाले अर्थशास्त्री कल्याणकारी अर्थशास्त्र का 'पुननिर्माण' करते हुए दो सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं[20]—

1- {kfr iwfrZ dk fl)kUr& इस सिद्धान्त के अनुसार कोई आर्थिक परिवर्तन किसी को हानि पहुँचाये बिना कुछ लोगों की स्थिति श्रेष्ठ बना देता है तो इस परिवर्तन को सुधार मान लेना चाहिये। आलोचकों के अनुसार यह सिद्धान्त वित्तरणात्मक पहलू की उपेक्षा करता है।

2- lekt dY;k.k fØ;k& इस नियम के अनुसार मूल्य निर्णयों (नैतिक मापदण्डों) को अर्थशास्त्र से बाहर निकाल दिया जाये तो अर्थशास्त्र का मूल उद्देश्य ही पराजित हो जायेगा। इसमें उत्पादन और विनिमय के साथ–साथ वितरण पर भी ध्यान दिया जाता है। लोकतन्त्रीय मतदान प्रणाली से समाज कल्याण क्रिया का निर्माण किया जाता है।

सीमित साधनों और संसाधनो में सबकी सन्तुष्टि सुनिश्चित करने के लिए कतिपय अर्थशास्त्रियों ने आवश्यकताओं में कमी करने के विचार को भी अर्थशास्त्र में स्थान देने का आग्रह किया। प्रो. जे.के. मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मानवीय आचरण का एक इच्छा रहित अवस्था में पहुँचने के एक साधन के रूप में अध्ययन करता है। अर्थशास्त्रियों में कल्याणकारी अर्थशास्त्र के स्वरूप को लेकर विभिन्न मत हैं। ये मत विभिन्न परिस्थितियों और पूर्वाग्रहों की वजह से है। अनेकान्त उसका सटीक समाधान करता है। इसलिए अर्थशास्त्र के नियमों और विश्लेषण उपकरणों को लागू करने में सापेक्षता का विचार किया जाता है।

ckt kjokn

इक्कीसवीं शताब्दी में 'गांधीजी की आर्थिक व्यवस्था' को छोड़कर किसी भी अर्थव्यवस्था में प्रकृति और संस्कृति का न तो समुचित जिक्र है और न ही कोई फिक्र है। फलस्वरूप व्यवस्था और अर्थव्यवस्था 'मुक्त' रूप से आगे बढ़ती है। चतुर और चालाक व्यक्ति अर्थव्यवस्था की इस मुक्तावस्था को अपने लाभकारी प्रवाह की ओर मोड़ने में सफल होते हैं। इस खुली व्यवस्था में गांधीवाद तो कहीं खो जाता है परन्तु अर्थव्यवस्था को प्रवाहित करने वाली मुद्रा पर गांधी अंकित रहते हैं। उस मुद्रा पर उपनिषद् का अमर वाक्य 'सत्यमेव जयते और अहिंसा के प्रचारक सम्राट अशोक का धर्मचक्र भी अंकित रहता है। सच्! बाजारवादी हर चीज का बाजारीकरण करने में कुशल होते हैं। वे उन अमूर्त चीजों का भी व्यावसायीकरण कर देते हैं, जिन पर सारी मूर्त सत्ता टिकी हुई है। यही बाजारवाद की ताकत और उम्र बढ़ जाती है। वह पूंजीवाद और उपभोक्तावाद की राह चलते जरूरत पड़ने पर समाजवाद अथवा इस जैसे अन्य वाद/वादों की लाठी/लाठियाँ भी थाम लेता है। उसे भूमण्डलीकरण,

उदारीकृत, अर्थव्यवस्था, ढाँचागत समायोजन और वैश्विक ग्राम जैसे नये–नये नाम भी देता है। परन्तु उसकी मूल प्रकृति और संस्कृति में प्रकृति और संस्कृति की रत्ती भर चिन्ता नहीं है। मानव उसके लिए एक संसाधन है और पशु–पक्षी जैसे कोई बेजान वस्तु हो। संवेदना नहीं है, इसलिए वेदना ही वेदना है।

miHkkDrkokn

उपभोगवाद या उपभोक्तावाद बाजारवाद का सशक्त आधार है। इसमें उन तमाम चीजों को मानव जीवन के लिए आवश्यक चीजों के रूप में स्थापित कर दिया जाता है, जिनकी कतई जरूरत नहीं होती है। व्यापक गरीबी के बीच उपभोक्तावाद गैर–जरूरी और खर्चीली चीजों की भूख जगाता है। यह सब करने के लिए वह ऐसे आकर्षक, लुभावने, तड़कीले, भड़कीले और हैरानियत भरे विज्ञापनों का सहारा लेता है, जो सच्चाई से कोसों दूर होते हैं। ये विज्ञापन बच्चों और महिलाओं के बाल–सुलभ और नारी–सुलभ सद्‌गुणों का हरण व हनन कर रहे हैं। इन विज्ञापनों का भारी भरकम खर्च भी अन्ततः उपभोक्ता पर ही पड़ता हैं जिस समाज में अधिसंख्य लोगों को शुद्ध पेयजल नसीब नहीं होता हो, उसमें संसाधित पेय (सॉफ्ट ड्रिंक्स) जैसी नितान्त अनावश्यक चीजों की प्यास जगाना सरासर अन्याय है।

अनावश्यक वस्तुएँ जब आवश्यक बनने लगती है, तो मनुष्य की आवश्यकताएँ भी असीम हो जाती है। इन असीम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव उचित–अनुचित, नैतिक–अनैतिक किसी भी प्रकार का माध्यम अपनाने में संकोच नहीं करता है। समाज मे विचित्र किस्म के अपराध पनपते हैं। उपभोक्तावाद के सहायक के रूप में बैंकिंग व्यवसाय भी क्रेडिट कार्ड और तरह–तरह की ऋण सुविधाएँ मुहैया कराता है। इस प्रकार के अनुबन्धों में निम्न मध्यमवर्गीय आदमी का जीवन बन्दी या बन्धक जैसा बनकर रह जाता है। वह अपने ही भोग और परिग्रह में उसी प्रकार उलझता है, जैसे स्वयं के द्वारा निर्मित जाल में मकड़ी फंसती है। ऐसे में मानव सहज स्वाभाविक जीवन से दूर कृत्रिम जीवन की ओर यानि अन्तहीन और अपरिचित परेशानियों की ओर बढ़ता है। उपभोक्तावाद की अपसंस्कृति से हमारे पारम्परिक, पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। मनोरंजन के साधनों में जो सामूहिक आनन्द था, उसका स्थान एकाकी सुख ने ले लिया। बाजार की भीड़ में व्यक्ति अकेला है। टेलीविजन के समाने परिवार और सम्बन्धियों के बीच भी वह अकेला है। देश–दुनिया की उसे खबर है, परन्तु अपनों और अपने पड़ौसियों से वह बेखबर है। फेसबुक पर उसके हजारों दोस्त हैं, पर सामने बैठे व्यक्ति से बात करने से कतराता है।

ukjh dk phj gj.k

जो नारी हमारी माँ, बहिन, बेटी, भार्या आदि रूपों में श्रद्धा, सम्मान और स्नेह की प्रतिमूर्ति हुआ करती थी, वह अब विज्ञापन और व्यवसाय की वस्तु है, मॉडल है। उम्र और अदाओं के मुताबिक उसके सौन्दर्य और यौवन की विभिन्न बाजारों में अलग–अलग कीमत है। दुखद आश्चर्य तो यह है कि नारी भी अपने वस्तु होने के धुआँधार प्रचार में अपना व्यक्तित्व खो बैठी है। स्त्री–पुरूष समानता की बात करने वालों का भी न जाने क्यों स्त्री और पुरूष के निर्मानवीकरण की ओर ध्यान नहीं जा रहा है। आखिर, मनुष्य मनुष्य है, कोई मशीन या रोबोट तो नहीं। मीडिया भी अपने लाभ के लिए बाजारवाद की तरफदारी करता है। वह उन्हीं खबरों को तवज्जो देता है जो बिकाऊ हो। चाहे उनका असर समाज के चरित्र पर कैसा भी पड़े। मीडिया की खबरों में गरीबी, बेकारी, भूखमरी, पिछड़ापन और विषमता तैसी समस्याओं तथा अहिंसा,

मानवता, दया, त्याग और सहयोग जैसे जीवन मूल्यों का अभाव है। जबकि सेक्स, हिंसा, हत्या, आतंक, रोमांस, ऐश्वर्य और भोग–विलास जैसी चीजों की भरमार है।

ckt kj d: vk/kkj

बाजारोन्मुख अर्थतन्त्र छः आधारों पर टिका हुआ है[21]– 1. एक जैसा माल (Standarisation) 2. मनुष्य का एकांगी विकास (Specilisation) 3. प्रचण्ड व्यवस्था तन्त्र (Synchronisation) 4. केन्द्रीकृत विकास (Consectration) 5. अधिकतम कमाई का ध्येय (Maximisation) और 6. आर्थिक राजनीतिक सत्ताओं का केन्द्रीकरण (Centralisation)। इन आधारों के तीन प्रमुख सूत्र हैं[22]– 1. अधिक उत्पादन 2. अधिक उपभोग और 3. अधिक मुनाफा। इससे आगे या पीछे उसे किसी से कोई मतलब नहीं। उसके लिए तीन तरह के लोग महत्वपूर्ण है– उत्पादक, व्यापारी और उपभोक्ता। यदि आप इन तीनों में से कोई नहीं हैं तो बाजार की नजरों में आपका कोई मूल्य नहीं है। जैसे बाजार व्यक्ति को उपभोक्ता के रूप में देखना चाहता है, उसी प्रकार राजनेता उसे मतदाता के रूप में देखना चाहता है। जब से अर्थव्यवस्था पर बाजारवाद हावी हुआ है, तब से राजनीति भी व्यवसाय में बदल गई प्रतीत होती है। धर्म और धार्मिक पारमार्थिक संगठनों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है।

Hkwe.Myhdj.k

बाजारवाद का वैश्वीकरण अथवा भूमण्डलीकरण होता है। यानि वह देशों की सीमाएँ पार करके अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण करता है। इस दौरान बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने व्यावसायिक शोषण का जाल बिछाती हैं। तीसरी दुनिया के देशों यानि अविकसित, अल्प–विकसित और विकासशील देशों पर इसका कई रूपों फैलाव होता है। प्रेक्षको का कहना है कि ये कम्पनियाँ स्थानीय, क्षेत्रीय और स्वदेशी व्यापार के हितों को सुनियोजित ढंग से नुकसान पहुँचाती हैं। केवल व्यापार ही नहीं, स्थानीय सांस्कृतिक स्वरूप को भी ये व्यावसायिक उपक्रम तहस–नहस कर देते हैं। मानव के चिरकालीन अनुभवों में पके–परखे टिकाऊ जीवन मूल्यों की अवहेलना का एक उदाहरण पर्याप्त है कि नवजात शिशु के भरपूर पोषण के लिए प्रकृत्ति प्रदत्त माँ के स्तनपान की स्वस्थ नैसर्गिक परम्परा के स्थान पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ 'बेबी फूड' को

ले आती है। उपनिवेश काल में जो काम पुलिस फौज के हथियार करते थे, उत्तर उपनिवेश काल में वही काम विश्व बैंक, मुद्रा कोष और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा किया जा रहा है। इन कम्पनियों ने तीसरी दुनिया के देशों की आर्थिक स्वायत्तता को नष्ट करके व्यापक पैमाने पर बेरोजगारी, गैर बराबरी और उपभोक्तावादी अपसंस्कृति फैलाई है। अब तो विकसित देशों में इनके कारण सामाजिक तनाव बढ़ता जा रहा है।[23] ये कम्पनियाँ रोजमर्रा के जीवन में काम आने वाली चीजों से लेकर युद्ध के संहारक अस्त्र–शस्त्र तक बनाती हैं। भूमण्डलीकरण त्याग–तपस्या की महान पावन संस्कृति का नहीं, भोग–उपभोग की अपसंस्कृति का हो रहा है, जो धरती के पर्यावरण और मानव जाति के भविष्य के लिए शुभ संकेत नहीं है।

Hk; vkSj fgalk dk vFkZrU=

भगवान महावीर ने कहा परिग्रह हिंसा का मूल है।[24] संसार में होने वाले युद्धों के लिये यह बात पूरी तरह लागू होती है। युद्ध कभी राजनीतिक कारणों से नहीं बल्कि आर्थिक कारणों से लड़े जाते हैं। प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है। जब आर्थिक हित आपस में टकराते हैं तो उसका दुष्परिणाम पूरी मानव जाति को झेलना पड़ता है। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिका की 23 बड़ी कंपनियों ने नाभिकीय हथियार बनाना शुरू कर दिया। हथियारों के उत्पादन और व्यापार से इन कंपनियों को अनाप–शनाप मुनाफा हुआ। साथ ही विश्व में वियतनाम, कोरिया, इराक–ईरान, अफगानिस्तान आदि युद्धों के अलावा आतंकवाद तेजी से फैला। वर्तमान में दुनिया के 196 देशों में से कम से कम 8 देश परमाणु शक्ति सम्पन्न है। आतंकवाद ने आज सम्पूर्ण विश्व को झकझोर कर रख दिया है। राजनीतिक टकराव, आतंरिक गृहयुद्ध व आतंकवाद विश्व के सामने चुनौती बने है।

2014 के आँकड़ों के मुताबिक सीरिया में 76021, इराक में 21073, अफगानिस्तान में 14638, नाइजीरिया में 11529, मेक्सिको में 7540, सूडान में 6389, पाकिस्तान में 5496, सोमालिया में 4447 से ज्यादा लोग आतंकवादी गतिविधियों के चलते अपनी जान गँवा बैठे। ये आँकड़े तो मात्र नमूने है। ना जाने कितने लोग आज तक इस आतंकवाद के कारण अपनी जान गँवा बैठे हैं। भारत भी इससे अछूता नहीं है। चाहे वे 13 दिसम्बर 2011 का संसद में हमला हो या 24 सितम्बर 2002 को अक्षरधाम में हमला हो, चाहे 26/11 का मुम्बई हमला हो, हजारों निर्दोष लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है। पूरे विश्व में इन सब हिंसक गतिविधियों का ग्राफ ऊपर की ओर बढ़ता ही जा रहा है। हथियार भय और हिंसा के अर्थतंत्र के यार होते हैं। विश्व में प्रतिमिनट 9 करोड़ 40 लाख रूपये हथियारों के उत्पादन पर यानि हिंसा पर खर्च किये जा रहे हैं। हिंसा पर हो रहे खर्चों को विकास के संदर्भ में देखें तो चौकाने वाले तथ्य हासिल होंगे।

ijek.kq vk;q/kksa dk tjh[kk

अमेरिका ने अब तक 35 बार दुनिया के विकासशील देशों को अपने आर्थिक व राजनैतिक निर्णय मनवाने के लिए परमाणु शस्त्र प्रयोग की धमकी दी है और 80 बार

परमाणु अप्रसार सन्धि (एन टी पी) का उल्लंघन किया है। अकेले अमेरिका के पास 10000 से अधिक सामरिक परमाणु हथियार और 1500 से अधिक कूटनीतिक परमाणु हथियार हें। इनके अलावा ना जाने कितने ही हथियार निष्क्रिय शस्त्रागार में पड़े हैं। रूस के पास भी सक्रिय रूप से तैनात 8400 परमाणु हथियार हैं तथा 10000 अन्य परमाणु हथियार सुरक्षित पड़े हैं। यूरोप के नाटो सदस्य देशों के पास 200 गुप्त परमाणु हथियार है। जो एन.टी.पी. का उल्लंघन है। अन्य देशों के पास भी पर्याप्त परमाणु हथियार हैं।[25] उत्पादन, व्यापार और प्रयोग के अलावा के अलावा इन हथियारों की तस्करी का एक अलग अर्थतन्त्र है।

कुछ देश परमाणु शक्ति के बल पर दुनिया की आर्थिक शक्तियों का एक ध्रुवीकरण करना चाहते हैं। हिंसा और भय के बल पर धनी देशों का सामूहिक पूंजीवाद संसार में बढ़ रहा है। ये धनी देश दुनिया के निर्धन देशों को लोकतन्त्र, मानवाधिकार, रोग–मुक्ति और विकास के नाम पर आर्थिक मदद भी देते हैं। परन्तु वह ऊँट के मुँह में जीरा वाली स्थिति ही है। यहाँ एक बार गौरतलब है कि अमीर वर्गों व देशों द्वारा निर्धनों की चिन्ता भी सम्भवतः इसलिए की जाती है कि कहीं वह गरीबी कोई भयानक अनियन्त्रित रूप धारण करके उनके वैभव–विलास को नुकसान नहीं पहुँचा दे। यही बात पर्यावरण और अन्य समस्याओं के सम्बन्ध में समझनी चाहिये। यह दृष्टिकोण स्वार्थपरक होने से अहिंसा, समता, सह–अस्तित्व और सृष्टि की एकात्मता जैसे नियमों के अनुकूल नहीं हो पाता है और दुनिया वांछित परिणामों से वंचित रह जाती है।

परमाणु अस्त्रों की विकिरणें से स्वास्थ्य और पर्यावरण का भारी नुकसान होता है। छोटे से ग्रह धरती पर कोई दो–चार देश, कुछ समुदाय या कुछ व्यक्ति ही रहे, यह विचार मूलतः सही नहीं है और वैसा सम्भव भी नहीं है। सह–अस्तित्व के बगैर दुनिया को बचाना नामुमकिन है। दुनिया परमाणु अस्त्रों से या उनके भय से नहीं, अपितु शुद्ध पर्यावरण, समता, अभय और अहिंसा की दिशा में किये जाने वाले ईमानदार प्रयासों से बचाई जा सकेगी। परमाणु अप्रसार संधि जैसे वैश्विक नियम अहिंसा की महत्ता को उजागर करते है। विश्व राजनीति में भारत की ओर से पंचशील की उद्घोषणा में भी अहिंसा के स्वर हैं। जून 1954 में निम्न पंचशीलों की घोषणा की गई[26]–

1. एक दूसरे राष्ट्र की प्रादेशिक अखण्डता और सार्वभौमिकता का सम्मान।
2. पारस्परिक अनाक्रमण।
3. एक दूसरे राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना।
4. एक दूसरे की समानता को मान्यता देना और परस्पर लाभ पहुँचाना।
5. शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व की नीति को अपनाना।

इन पंचशीलों में भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आवश्यकता है नियमों के निष्ठापूर्वक अनुपालन की। दुनिया की भलाई के लिए पर्यावरण संरक्षण, निर्धनता पर नियन्त्रण के लिए अर्थशास्त्रियों को भी विचार करना चाहिये। भगवान महावीर हथियारों के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सभी व्यापारों का स्पष्ट निषेध करते हैं।[27] उन्होंने विश्व को अनाक्रमण और निःशस्त्रीकरण का सन्देश दिया। उपासक वरूण और महाराजा चेटक ने उनसे अनाक्रमण के संकल्प किये थे।[28] निःशस्त्रीकरण के उन्होंने तीन सूत्र दिये– शस्त्रों का अव्यापार, शस्त्रों का अवितरण और शस्त्रों का अल्पीकरण।[29] ये सूत्र विश्व की शाांति और समृद्धि के सूत्र हैं।

ifjPNsn r`rh;

fo'o 'kkafr vkSj vkfFkZd fodkl esa tSu /keZ dh Hkwfedk

जैन संस्कृति की संसार को सबसे बड़ी देन है महावीर की अहिंसा। अहिंसा का यह महान विचार आज विश्व शांति का सर्वश्रेष्ठ साधन समझा जाने लगा है। जिसकी अमोघ शांति के सम्मुख संहारक शक्तियाँ कुठित दिखाई देने लगी हैं। महावीर ने राष्ट्र के परस्पर होने वाले युद्धों का हल ही अहिंसा को बताया है तथा इसके लिए आत्मबल की आवश्यकता होती है। उदारीकरण के फलस्वरूप उपभोक्ताओं की लालसाएँ बढ़ती ही जा रही है, फलस्वरूप हिंसा में वृद्धि हो रही है, जो कि विश्व शांति के लिए सबसे बड़ी बाधा है। ऐसे समय में जैन दर्शन के अहिंसा, संयम, अपरिग्रह व अनेकान्त सम्बन्धी सिद्धान्त निश्चय ही समाज, राष्ट्र एवं विश्व का नव निर्माण कर सकते हैं।

fo'o fcuk lhekvksa ds ¼mnkjhdj.k ,oa oS'ohdj.k uhfr½

बाजार नियन्त्रित पूंजीवादी प्रणाली में यह माना जाता है कि बाजार में स्वतन्त्र एवं पूर्ण प्रतियोगिता के माध्यम से अधिकतम कल्याण को प्राप्त किया जा सकता है। इस विचार में समर्थकों का मानना है कि इस प्रकार की स्वतंत्र प्रतियोगिता उपभोक्ताओं को न्यूनतम कीमत पर वस्तुएं, श्रमिकों को उचित मजदूरी और उद्यमियों को उचित लाभ दिला सकेगी। किन्तु दुनिया के जिन देशों में इस नीति को अपनाया गया, उनके अनुभव कुछ और रहे हैं। यह नीति अधिकतम समाज कल्याण की बजाय शोषण के दर्शन एवं तंत्र के रूप में ही उजागर कर दिया। इसके विपरीत मार्क्स के दर्शन पर आधारित साम्यवादी प्रणाली ने बाजार की शक्तियों एवं अर्थव्यवस्था पर केन्द्रीय सत्ता के पूर्ण नियंत्रण के दर्शन को सामने रखा। किन्तु इस नई प्रणाली ने भी पहल और प्रेरणा की ऐसी गंभीर समस्याएं खड़ी कर दी है जिनके फलस्वरूप समूचा उत्पादन तंत्र ही चरमराकर टूटने की स्थिति में पहुंच गया। साम्यवादी जगत और विशेष कर सोवियत रूस एवं अन्य पूर्वी यूरोपीय देशों के बिखराव एवं आर्थिक दुर्दशा इसकी साक्षी है। इस प्रकार दुनिया के अनुभवों ने यह साबित कर दिया है कि यह दोनों ही प्रणालियां अपर्याप्त अधूरी एवं अव्यवहारिक हैं।

पण्डित नेहरू द्वारा 1949 की औद्योगिक नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा लागू की गई। इस व्यवस्था के तहत सरकारी क्षेत्र के विस्तार पर पर्याप्त बल दिया गया। 19 जुलाई 1969 को देश के 14 बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की गई। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में सरकारीकरण की लहर दृष्टिगोचर होने लगी। लेकिन 1991 में वित्तीय संकट के पश्चात् बैंकों के राष्ट्रीयकरण के स्थान पर निजीकरण पर बल दिया जाने लगा। नरसिंहराव ने जून 1991 की औद्योगिक नीति में भारतीय अर्थव्यवस्था को खोलते हुए आर्थिक उदारीकरण नीति की घोषणा की।[30]

भारत में उदारीकरण की नीति विगत चौबीस वर्षों से गुंजायमान है। यह विश्वव्यापीकरण की जीवन्तता और उसके विस्तार का द्योतक है। उदारीकरण वस्तुतः अर्थव्यवस्था में सरकार के वैचारिक परिवर्तन का परिणाम है। जिसके अन्तर्गत नियमों व नियंत्रणों, नियंत्रित कीमतों आदि को इस प्रकार से उदार बनाने की चेष्टा की जाती है कि राष्ट्र आर्थिक प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। उदारीकरण की यह प्रक्रिया प्रारंभ में किसी राष्ट्र विशेष के लिए अनेक प्रकार की समस्याओं की जननी सिद्ध हो सकती है। लेकिन उचित प्रकार से उदारीकरण की प्रक्रिया अपनाये जाने पर स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का जन्म होता है और राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो जाता है। उदारीकरण के फलस्वरूप निजी क्षेत्र का प्रभुत्व धीरे–धीरे बढ़ता चला जाता है। वास्तव में उदारीकरण एच्छिक प्रक्रिया है, क्योंकि इसके अन्तर्गत सरकारी आर्थिक नियंत्रण घट जाता है और आर्थिक सक्रियता के मामले में स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है। इससे उपभोक्ताओं को उन्नत तकनीक विश्व में प्रचलित प्रबन्धन कुशलता व मानव व प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग, भारतीय उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का सामान व सेवाओं का लाभ भी मिलता है। उदारीकरण की विभिन्न संस्थानों एवं उत्पादक ईकाईयों को सशक्त एवं सुदृढ़ बनाकर विदेशों में इसके अस्तित्व को स्थापित करना भी इसमें शामिल हैं। निजीकरण का उद्देश्य केवल आय को अधिकतम करना ही नहीं होता, वरन् स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण निर्मित करना एवं उपभोक्ताओं को अच्छी–अच्छी सेवाएं उपलब्ध कराना होता है।

वर्षों की नियंत्रित अर्थव्यवस्था में कार्यकुशलता में कमी आना, उत्पादन का मन्द गति से बढ़ना, सार्वजनिक उपक्रमों का निरंतर घाटे में चलना, बजट पर अत्यधिक भार

बढ़ना तथ देश के ख्याति का दुनिया भर में प्रभाव कम होना पाया गया। ऐसी विकट स्थिति से मुकाबला करने के लिए निजीकरण, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण को अपनाया गया। सहकारी आन्दोलन पर इसका विपरीत असर पड़ना निश्चित था, क्योंकि देश में अब तक सहकारी आन्दोलन सरकार के संरक्षण एवं सहयोग से ही चलाया गया है। इनमें से अधिकांश संस्थाएँ नुकसान में चल रही थी तथा कार्यकुशलता का नितान्त अभाव था। ये सहकारी समितियां प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में बिल्कुल नहीं थी। सरकारी अनुदान सहायता एवं अंशों में सरकार की बड़ी भागीदारी होने की वजह से ही ये संस्थाएँ अपना अस्तित्व बनाये हुए थे।

हमारी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में साफ कहा गया है कि वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की जुड़वा प्रक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों की एक नई प्रणाली को जन्म दे रही है। इससे निवेश, उत्पादन और व्यापार के स्वरूप में बदलाव हो रहे हैं। वित्तीय संसाधनों की दौड़ विश्वव्यापी हो गई तथा प्रोद्योगिकी की भूमिका केन्द्र में आ गई है। वैश्वीकरण अपना लेने के लिए भारत जैसे विकासशील देशों को अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को ढ़ालने में सक्रिय रूप से भाग लेना होगा। भारत विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों और बहुराष्ट्रीय मंचों पर सक्रिय भूमिका निभाते हुए महत्वपूर्ण आर्थिक मुद्दों पर विश्व का ध्यान आकर्षित करता रहेगा।[31]

mnkjhdj.k ls mRiUu leL;k,¡

उदारीकरण के परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि हानि की तुलना में इसके लाभ कम रहे हैं। अमेरिका में मंदी के कारण भारत में सूचना तकनीक पर आधारित अर्थव्यवस्था पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा है। प्रबंधन की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। नवीन आर्थिक दर्शन, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने में नाकाम रही है। सरकारी गोदामों के गेहूँ के पर्याप्त भण्डार हैं, लेकिन निर्धन वर्ग भूखमरी का शिकार है। उदारीकरण के अधिकांश लाभ मध्यम व उच्चवर्ग को प्राप्त हुए हैं। निर्धन वर्ग इनके लाभों से वंचित रहा है। उदारीकरण ने निर्मोह विकास को बढ़ावा दिया है। सार्वजनिक वितरण व्यवस्था की स्थिति बहुत खराब है। कृषि में सार्वजनिक निवेश में निरंतर कमी हो रही है। गाँवों में डॉक्टरों का अभाव है। आर्थिक विषमता में तेजी से

वृद्धि हो रही है। कृषि मानसून के भरोसे चल रही है, आर्थिक उदारीकरण को कुछ विद्वानों ने Home Less growth कहा है, क्योंकि विकास के नाम पर बड़े–बड़े बांधों के निर्माण करने से अनेक व्यक्ति बेघर होते जा रहे हैं। विद्युत का नितान्त अभाव है। जल संकट चारों तरफ दिखाई दे रहा है। उदारीकरण से उत्पन्न मुख्य समस्याएँ निम्न प्रकार हैं–

आर्थिक उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत उन्नत और औद्योगिकी अपनाने पर बल दिया जाता है। देश में उन्नत तकनीक अपनाने के दुष्परिणाम बेरोजगारी में वृद्धि के रूप में परिलक्षित हो रहे हैं। उदारीकरण के अन्तर्गत कम्प्यूटरीकरण के कारण देश का शिक्षित वर्ग बेरोजगारी की चरम सीमा पर है। श्रम व रोजगार मंत्रालय के अनुसार सन् 1983 से लेकर 2011 तक बेरोजगारी की दर 9.4 तक पहुँच गई थी। अब कृषि के क्षेत्र में आधुनिक तकनीकों का अपनाने पर बल दिया जाता है। निःसन्देह इससे देश के कृषक वर्ग पर बेरोजगारी का खतरा उत्पन्न हो गया है।[32]

कुछ बड़ी कम्पनियों के अतिरिक्त देश की अधिकांश कंपनियां उदारीकरण की नीति का शिकार हो चुकी हैं। रतन टाटा के अनुसार – ''उदारीकरण भारतीय उद्योग के लिए एक ऐसा संकट है जिसका मुकाबला करने के लिय यह क्षेत्र तैयार नहीं था। यही कारण है कि शेयर बाजार से लगभग 1000 कंपनियों के भाग जाने से अनिश्चितता का वातावरण निर्मित हुआ। एयरलाईन्स एवं टेलीविजन व टेलीकॉम आदि क्षेत्रों में अनेक नवीन कम्पनियों ने प्रवेश किया और शीघ्र ही समाप्त हो गई। श्रम कानूनों और उत्पादकता में कमी के कारण भारतीय उद्योगों को परेशानी का सामना करना पड़ रहा है। उदारीकरण के कारण उत्पादकता की वृद्धि दर कम रही है। औद्योगिक विकास की दर निरंतर कम रही है। आयातित चीनी सस्ती होने के कारण चीनी उद्योग चौपट हो रहा है। कृषि आधारित उद्योगों की हालत तो वाकई खराब है। आए दिन अखबारों अखबारों में किसानों की आत्महत्या सुर्खियाँ बनी हुई है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार सन् 2012 में 13754 किसानों ने आत्महत्या की और यह आँकड़ा प्रति वर्ष 1.5 से लेकर 1.8 प्रतिशत तक बढ़ रहा है।

आर्थिक उदारीकरण ने आर्थिक विषमता एवं असंतुलित आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया है। आर्थिक सुधारों का प्रभाव सम्पूर्ण भारत में एक समान नहीं रहा। उदारीकरण के दौरान पश्चिम भारत के गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिण के कुछ राज्यों को छोड़कर शेष महत्वपूर्ण राज्यों की विकास दर में कमी आई है। उत्तरप्रदेश और बिहार में निर्धनता की स्थिति यह है कि सम्पूर्ण भारत में लगभग आधे गरीब इन्हीं राज्यों में है। देश के अनेक राज्यों में साक्षरता दर आशानुकूल नहीं बढ़ रही है। सभी को स्वास्थ्य सेवाएँ एवं पेयजल उपलब्ध नहीं है, लगभग एक तिहाई जनसंख्या के पास रहने के लिए मकान नहीं है। उदारीकरण के कारण व्यापारियों एवं उद्योगपतियों को सुविधाएँ प्राप्त हुई है, जबकि सामाजिक विकास पर बल नहीं दिया गया है। ऊर्जा, स्वास्थ्य, जल, रोजगार, परिवहन और शिक्षा आदि क्षेत्रों में आर्थिक सुधार लागू नहीं हुए हैं। इस प्रकार उदारीकरण के कारण देश में विकास की कुछ मीनारें खड़ी हुई तो दूसरी ओर करोड़ों लोगों की पीड़ाओं और आर्थिक कठिनाईयों में वृद्धि हुई है।

भारतीय नेताओं ने आर्थिक उदारीकरण की नीति को प्रायः उधारीकरण के रूप में अपनाया। इस नीति के अन्तर्गत आर्थिक विकास के नाम पर भारी मात्रा में ऋण दिये जा रहे हैं, लेकिन देश में प्रबन्धन व्यवस्था दोषपूर्ण होने के कारण उधार लिए गए धन का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। अतः निर्धारित लक्ष्य एवं उद्देश्यपूर्ण नहीं हो पाते हैं। वस्तुतः उधार लेकर आर्थिक विकास को बढ़ावा देना गलत नहीं, परन्तु उधार लिए गए धन को उचित तरीके से खर्च नहीं करना गलत है। भारत में आर्थिक उदारीकरण के दौरान अधिक मात्रा में उधार लेने से फिजूलखर्ची बढ़ी है। जिन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती, उधार के कारण प्राप्ति राशि में उसे भी खरीद लिया जाता है। अनेक आर्थिक विद्वानों ने आर्थिक उदारीकरण को ''Root less growth'' माना है अर्थात् ऐसा आर्थिक विकास जिसका कोई आधार ना हो।

लघु व कुटीर उद्योग अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाते हैं, इन्हीं को उदारीकरण ने समाप्ति के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। देश के लगभग 10 करोड़ व्यक्तियों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रोजगार प्रदान करने वाले लघु व कुटीर उद्योग आज वैश्विक प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने में अक्षम प्रतीत हो रहे हैं। देश की लगभग 40 लाख लघु औद्योगिक इकाईयों का कुल औद्योगिक उत्पादन और निर्यात में हिस्सा क्रमशः 40

प्रतिशत व 35 प्रतिशत है। लेकिन विश्व व्यापार संगठन की शर्ते इनके विकास में बाधक सिद्ध हो रही हैं। स्वदेशी माल महंगा है, जबकि आयातित माल सस्ता है, अतः लघु उद्योग प्रतिस्पर्धा में न टिक पाने के कारण इनके माल की बिक्री बहुत कम हो रही है। लाभों में कमी के कारण रोजगार में कमी हो रही है तथा अनेक छोटे उद्योग बंद हो गए हैं। खादी ग्रामोद्योग के कारीगरों के समक्ष जीविकोपार्जन की समस्या उत्पन्न हो गई है।

आर्थिक उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत सरकार भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाओं के समकक्ष मानते हुए ऐसे निर्णय ले रही है, जिसमें देश की निर्धन जनता का कोई ध्यान नहीं रखा गया है। उदारीकरण के कारण बढ़ती बेरोजगारी के दौर में व्यक्तियों को दोनों समय का भोजन नहीं मिल पाता है, ऊपर से उदारीकण की नीतिजनित दुष्परिणाम भी उन्हें आघात पहुँचा रहे हैं। उदाहरणार्थ देश में पर्याप्त खाद्यान्न होते हुए भी दोषपूर्ण प्रबन्धन एवं वितरण के कारण निर्धनों को समय पर खाद्यान्न नहीं मिल पाता है। सरकार उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में भी निरन्तर विनिवेश कर रही है, जो प्रत्यक्ष व परोक्षर रूप से लोगो के कल्याण से जुड़े हुए हैं। ऐसी स्थिति में यह नीति भविष्य में संभवतः कल्याणकारी राज्य के उद्देश्य को समाप्त कर दे। उदारीकरण ने –'Voice less growth' को बढ़ावा दिया है। जिसमें जनतंत्र होते हुए भी सम्बन्धित वर्ग की बात नहीं सुनी गई है।

टेलीविजन व मोबाईल की पहुंच गाँवों तक हो गई है तथा इनके उत्पादन और बिक्री में वृद्धि हुई है, लेकिन टीवी संस्कृति ने भारतीयों को विदेशी संस्कृति अपनाने के लिए प्रेरित किया है। देश मे टीवी चैनलों का तेजी से विस्तार हुआ है। औसत भारतीय टीवी देखने में और मोबाईल में अपना अधिकांश समय व्यतीत करने में लगा है तथा टीवी चैनलों के कार्यक्रम भारतीय संस्कृति को विकृत स्वरूप प्रदान करने का पूर्ण प्रयास कर रहे हैं, क्योंकि इन पर सरकारी नियंत्रण अत्यधिक शिथिल है। उदारीकण से डिब्बा संस्कृति का भी अभ्युदय हुआ है। विदेशों के डिब्बाबंद सामान की भारत में बिक्री होने लगी है। भारतीय रहन–सहन, खान–पान और पहनावे में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप वर्तमान में उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। परिग्रह

की लालसा बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप हिंसा की घटनाओं में वृद्धि हो रही है, जो कि विश्व शांति के लिए एक बड़ी बाधा है। ऐसे समय में जैन दर्शन के अपरिग्रह संबंधी सिद्धान्त निश्चय ही सर्वोदयी सन्मार्ग का प्रदर्शन कर स्वस्थ समाज, राष्ट्र एवं विश्व का नवनिर्माण कर सकते हैं।

ubZ fo’o0;oLFkk rFkk vkfFkd vo/kkj.kk

आज नये विश्व की व्यवस्था की मांग है, नयी समाज व्यवस्था और नयी अर्थव्यवस्था की मांग है। यह मांग क्यों है? इसलिए है कि आज अर्थव्यवस्था सर्वाशत माइक्रो इकोनोमिक्स और मेक्रो इकोनोमिक्स इन दो आधारों पर चल रही है। माइक्रो इकोनोमिक्स की व्यवस्था चल रही थी, किन्तु कीन्स ने जब से मेक्रोइकोनोमिक्स का प्रतिपादन किया, आर्थिक क्रान्ति का स्वर प्रखर हुआ, अनेक राष्ट्र उससे प्रभावित हुए। मेक्रो इकोनोमिक्स का मूल है– विशाल पैमाने पर उद्योग लगाओ, उत्पादन करो। यह सब बड़े पैमाने पर करो, जिससे आज की बढ़ती हुई आबादी की भूख को मिटाया जा सके। कोई भी नहीं कहेगा कि उद्देश्य गलत है। यही उद्देश्य सामने रखा– भूखी और पीड़ित जनता की पीड़ा की पीड़ा को दूर किया जा सके, उसको रोटी, कपड़ा, मकान मिल सके, उसकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। उद्योगों का जाल बिछाए ऐसा करना संभव नहीं है।

वर्तमान में दो अर्थनीतियों के प्रति बहुत आकर्षण है। न गांधी की अर्थनीति के प्रति इतना आकर्षण है और दूसरी किसी अर्थनीति के प्रति इतना आकर्षण है। आज आकर्षण है केवल दो प्रणालियों के प्रति और उसमें भी उस राष्ट्रीय नीति के प्रति जो मेक्रो अर्थनीति के आधार पर चल रही है। राष्ट्र अपने संसाधनों को इतना बढ़ाए, जिसमें सब सम्पन्न बन जाए और संसाधनों का प्रचुरतम उपयोग किया जा सके। इसके प्रति आकर्षण है। वर्तमान समाज की चेतना इन्द्रिय स्तर की चेतना है। इन्द्रिय स्तर की चेतना का आर्थिक प्रचुरता में आकर्षण होना स्वाभाविक है, इसीलिए इन प्रणालियों ने जनता को राष्ट्र को बहुत आकर्षित किया है।

प्रश्न है फिर नई अर्थव्यवस्था की मांग क्यों? हर मांग के पीछे कारण होता है। निष्प्रयोजन कोई मांग पैदा नहीं होती। इस प्रश्न का उत्तर सीधा है। हिंसा बहुत बढ़ी

है, तनाव बढ़ा है, मानसिक अशांति बढ़ी है और विश्व शांति के लिए खतरा बढ़ा है। आदमी खतरे में ही जी रहा है। वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन में समस्याएँ बढ़ी हैं। हत्या, आत्महत्या, तलाक आदि सब आम बात हो गए हैं। ऐसी स्थिति में आदमी को सोचने के लिए विवश होना पड़ रहा है। कहीं न कहीं हमारी आर्थिक नीति में अर्थव्यवस्था में कोई त्रुटि अवश्य है, जिससे यह पौध विकसित हो रहा है। मुड़कर देखने का एक अवसर मिला है। स्वर उठ रहा हे– अब एक नई अर्थव्यवस्था लागू होनी चाहिए। अब मेक्रो से भी काम नहीं चलेगा, एक ग्लोबल इकोनोमी की बात भी नहीं उभरती। विकसित राष्ट्रों ने संसाधनों पर बहुत कब्जा किया। बड़े–बड़े उद्योग स्थापित किए और इतना प्रदूषण पैदा किया कि पर्यावरण के लिए खतरा पैदा हो गया। जंगलों की कटाई और धरती का अतिशह दोहन हुआ, प्रकृति का सारा संतुलन गड़बड़ा गया। इस बात पर अब ध्यान गया हे कि शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे के लिए कल्याणकारी कम बन रहे हैं, खतरा ज्यादा बन रहे हैं। वे शोषण करने में लगे हुए हैं। सहायता कम करते हैं, शोषण अधिक करते हैं। आर्थिक साम्राज्य खड़ा करने और उसे मजबूत बनाने की होड़ लगी हुई है।

पुराने जमाने में युद्ध के द्वारा सत्ता का विस्तार होता था और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का पोषण होता था। अब वह बात नहीं रही। आज सत्ता उसकी है जिसका बाजार पर अधिकार है। विकसित राष्ट्रों में यह होड़ लगी हुई है कि कौन सारी दुनिया पर अपना एकाधिकार जमा पाता है। विकसित राष्ट्रों की इस अंधाधुंध दौड से छोटे और अविकसित राष्ट्र भयभीत हैं, उनका शोषण भी हो रहा है। उनके अधिकारों का भी सीमाकरण हो रहा है। विकसित राष्ट्रों का अधिकार व्यापक बन रहा है। छोटे राष्ट्रों का अधिकार सीमित हो रहा है। वे एक प्रकार से निरंतर उनके कब्जे में आते जा रहे हैं। स्वतन्त्रता का भौगोलिक और राजनीतिक अपहरण हुए बिना ही वे गुलाम बनते जा रहे हैं।

आज का आदमी सोचने के लिए विवश है। पश्चिम के अनेक विचारक इस बारे में बहुत चिंतन कर रहे हैं ^^V| g|o vk|j V| c|h** के लेखक ने इस बारे में बहुत चिंतन किया। ^^FkM| o|o n U;| oYM| vk|M|j**, ^^vFk| bu c|y|| l** आदि के लेखक इस बात से चिंतित है कि अगर जागतिक अर्थनीति का विकास नहीं किया गया तो भविष्य की भयावह स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। साम्यवादी अर्थव्यवस्था लड़खड़ा गयी, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था लड़खड़ाने की स्थिति में है। प्रो. कीन्स ने जो बात कही उसमें इस तथ्य पर विचार नहीं किया गया –संसाधन तो सीमित हैं, उनका असीम उपयोग कैसे होगा? यदि संसाधन असीम होते तो रॉ–मैटेरियल असीम होते तो शायद उद्योग बड़े पैमाने पर चल सकते थे। संसाधन की सीमा है, इसलिए यह संभव नहीं है। यही कारण है कि पूंजीवाद भी अब लड़खड़ा रहा है और नई अर्थव्यवस्था की अपेक्षा समाने आ रही है। समस्या यह है कि आज हम केवल ग्राम अर्थव्यवस्था ग्रामोद्योग जैसी प्रणालियों पर चले, ऐसा संभव नहीं लगता। ''कीन्स'' ने ठीक ही कहा था– 'अब इतना आगे बढ़ गये हैं कि पीछे लौटना संभव नहीं और जिस प्रकार आबादी बढ़ गई है उसमें तो अनेकान्त की दृष्टि से कुछ सत्यांश मिल जाए। इस दिशा में सोचे और देखे उनका समन्वय कैसे हो? हम कैसे एक मंच पर महावीर, गांधी, मार्क्स और कीन्स को ला सकें? इस दिशा में नयी सोच और नया चिन्तन आवश्यक लगता है।

केन्द्रीकरण आज की अर्थनीति का मुख्य आधार है। यदि हम महावीर और गाँधी को उस पर लाए तो एक समन्वय करना होगा कि केन्द्रीकरण की व्यवस्था में चले।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण दोनों का योग होगा तभी बात बनेगी, कोरे केन्द्रीकरण ने बेरोजगारी को बहुत बढ़ावा दिया है, समस्याएं पैदा की है। केन्द्रीकरण के साथ विकेन्द्रीकरण भी होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो उसमें महावीर भी खड़े हैं, गांधी भी खड़े हैं। केन्द्रीकरण को सर्वथा मिटाया नहीं जा सकता। उसकी भी संतुलन उपयोग आवश्यक है।

आज संसाधनों पर नियंत्रण अपने–अपने राष्ट्र का है। अगर पेट्रोल अरब देशों के पास है तो उस पर उनका नियंत्रण है। अगर बहुत सारे खनिज अमेरिका में है तो उन पर उसका नियंत्रण है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अब तक जो भूमिका रही है, वह केवल शांति और सामंजस्य बिठाने की भूमिका रही है। अगर संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था को जागतिक अर्थनीति की भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए और वह स्थिति में आए कि अर्थनीति का निर्धारण कर सके और संसाधनों पर नियंत्रण कर सके तो वर्तमान की समस्या का कोई समाधान मिल सकता है।

एरिकफ्रोम ने वर्तमान की व्यवस्था को ठीक करने के लिए उसमें परिवर्तन लाने के लिए कई सूत्र सुझाए हैं, जो वैश्विक अर्थनीति के बड़े उपयोग बन सकते हैं। उनका एक सूत्र है– क्रोध, लोभ, घृणा और मोह को कम किया जाए। ये बात उपदेशक लगती है, पर यह एक बहुत बड़े सत्य का उद्‌घाटन है। संतुलित अर्थव्यवस्था इन आवेगों को संतुलित किए बिना संभव नहीं बनेगी। लोभ का संवेग या भाव प्रबल है तो कोई भी अर्थव्यवस्था संतुलित नहीं बन सकती चाहे कितनी भी नीतियां निर्धारित कर ली जाए।

महावीर ने जिन सत्यों का प्रतिपादन किया उनमें से एक सत्य ये है– जिस समय मनुष्य जाति में क्रोध, अहंकार, माया, छल, लोभ यह सब शांत होते है, समाज व्यवस्था अच्छी चलती है। अर्थव्यवस्था व राज्यव्यवस्था सही रहती है। एक व्यक्ति जिसके हाथ में सत्ता है, का संवेग प्रबल हो जाए तो हर कोई हिटलर बन सकता है। इसलिए यदि हम संतुलित अर्थव्यवस्था और जागतिक अर्थव्यवस्था की बात करते हैं तो हमें दोनों आयामों चलना होगा– बाहर से व्यवस्था का सीमाकरण रहे और भीतर से संवेगों का सीमाकरण या संतुलन। हम केवल बाह्य व्यवस्था को ठीक करना चाहे और भीतर के संवेग हमारे प्रबल रहे तो यह कभी संभव नहीं है। आज यह एक व्यवस्था

बनेगी, पांच–दस वर्ष बाद अगर कोई शक्तिशाली व्यक्ति आएगा तो उसे ध्वस्त कर देगा।[33]

मार्क्स और कीन्स ने जिस अर्थव्यवस्था के परिवर्तन पर ध्यान किया वह केवल संसाधन, उत्पादन और विनिमय की व्यवस्था थी। व्यक्ति को बदलने की व्यवस्था पर ध्यान नहीं किया, इसलिए मार्क्स की व्यवस्था का परिणाम यह आया कि अधिनायकवादी व्यवस्था ने सारी व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया। कीन्स की व्यवस्था का परिणाम यह आ रहा है– उत्पादन शांति के लिए, भूख मिटाने के लिए कम हो रहा है, संहार के लिए अधिक हो रहा है। यदि संहार में इतनी शक्ति नहीं लगती तो आज गरीबी और बेरोजगारी की समस्या इतनी जटिल नहीं रहती। जब मनुष्य के भीतर भय और लोभ का संवेग है तो वह भूख मिटाने की चिंता क्यों करेगा? उसे चिंता होगी शक्ति के निर्माण की। जहां शक्ति का निर्माण होगा, वहां शस्त्र निर्माण एक अनिवार्य शर्त है।

यदि हम नयी अर्थव्यवस्था के बारे में सोचे तो इस भूल का परिष्कार करे, जो अतीत में हमसे होती रही और वह है पदार्थव्यवस्था तथा बाह्य व्यवस्था पर सारा ध्यान केन्द्रित करना। आंतरिक व्यवस्था पर हमारा कभी ध्यान भी नहीं गया। जब तक मनुष्य भीतर से नहीं बदलेगा, केवल व्यवस्था के बदलाव से क्या होगा? व्यक्ति कितनी ही अच्छी मोटरकार बना ले, ड्राइवर कुशल नहीं है तो वह विश्वसनीय नहीं होगा, उससे खतरा बना रहेगा।

हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, वहां हमारी सारी प्रवृत्ति, सारा व्यवहार द्वन्द से शुरू होता है। जहां द्वन्दात्मक स्थिति है वहां कोई अकेला काम नहीं कर सकता। वर्तमान की अर्थव्यवस्था को बदलने के लिए और नयी अर्थव्यवस्था के निर्माण की हमारी कोई मनोवृत्ति है तो भूल का परिष्कार करना होगा। इसका परिष्कार किए बिना कुछ नहीं होगा। नयी अर्थव्यवस्था के प्रवर्तन के लिए हमें कुछ पेरामीटर भी सामने रखने होंगे। नई अर्थव्यवस्था वह हो जो–

1. विश्व शांति के लिए खतरा ना बने।
2. अपराध में कमी लाए।
3. हिंसा को प्रोत्साहन ना दे।

4. पदार्थ में अत्राण की अनुभूति जगाए।

प्रथम शर्त है कि ऐसी अर्थव्यवस्था हो जो विश्वशांति के लिए खतरा न बने। हमारा कोई भी चिंतन विश्व को छोड़कर केवल व्यक्ति के संदर्भ में न हो और व्यक्ति को छोड़कर विश्व के संदर्भ में न हो। व्यक्ति और विश्व दोनों के संदर्भ में हमारा चिंतन, विचार और नीति का निर्धारण हो। ग्लोबल इकोनॉमी की नीति का निर्धारण करें तो हमें सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना होगा– यह अर्थनीति विश्व के लिए खतरा ना बने। जो व्यक्ति की शांति को खतरा बनेगी, उसे खंडित करेगी वह विश्व शांति को खण्डित करेगी, वह व्यक्ति को खण्डित करेगी। व्यक्ति और विश्व दोनों की शांति के लिए खतरा न बने, यह नई अर्थनीति का पहला पेरामीटर है।

दूसरा पेरामीटर अर्थनीति और हिंसा का प्रोत्साहन न दे। हिंसा जीवन के साथ जुड़ी हुई है। प्राचीन आचार्यों ने कहा– 'जीवों जीवस्य जीवनम्' जीव जीव का जीवन है।[34] यह भी सत्यांश है।

आज विचार के क्षेत्र में एक भ्रांति काम कर रही है। महाभारत में वेद व्यास ने लिखा है– ^u ekuqir J"Brj fg fdfprA* मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नही है। महावीर ने भी कहा है– ^ek.kLl l g fcXxg [ky nYy g* किन्तु जहां यह कहना ठीक है कि मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं। वहां यह कहना भी सही रहेगा कि मनुष्य से गलत भी कोई नहीं। दोनों को मिलाए तो सही समग्र सत्य बनेगा। मनुष्य से श्रेष्ठ कोई और नहीं है। यह कहने का अर्थ है कि विकास की दृष्टि से मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं।

एरिकफ्रोम ने एक सूत्र सुझाया जिसे महावीर सूत्र का अनुवाद माना जा सकता है– नयी अर्थनीति में यह भावना जागृत करनी चाहिऐ– पदार्थ हमारे लिए त्राण नहीं है। इस भावना का विकास करना चाहिए। अब अनित्य अशरण आदि–आदि अनुप्रेक्षाओं का विकास होगा तब हमारा आंतरिक परिवर्तन होगा। संवेगों पर नियंत्रण करने की हमारी क्षमता बढ़ेगी। इससे अनुकूल जागतिक अर्थनीति का निर्धारण होगा तो राष्ट्रीय अहं और कम होगा, उसका संतुलन बनेगा।

नई अर्थनीति का एक पेरामीटर यह होना चाहिए– अर्थव्यवस्था अपराध में कमी लाए। यह नहीं माना जा सकता, आज भी अपराध बढ़े हुए हैं। आज की आर्थिक

अवधारणा ने व्यक्ति में इतनी लालसा पैदा कर दी कि इतना विकास होना चाहिए। एक आधुनिक व्यक्ति अपने जीवन का एक स्टेण्डर्ड बनाता है, आधुनिक कहलाता है। इस ''स्टेण्डर्ड ऑफ लिविंग'' के साधन जिन्हें सुलभ हैं, वे बड़े अपराधों में जीते हैं– छोटे में नहीं। वे शोषण और व्यवसायिक अपराध बरते हैं या फिर राजनीतिक अपराध करते हैं, परन्तु जो गरीब आदमी है वे छोटे अपराध में जाते हैं।

दो विद्यार्थी साथ में पढ़े। एक के घर सारे आधुनिक साधन है– मोबाईल, टी.वी., फ्रिज आदि। दूसरे विद्यार्थी को साइकिल जैसा मामूली साधन भी उपलब्ध नहीं है। साधनहीन विद्यार्थी के मन में सम्पन्न को देखकर यह भावना जागती है कि हम गरीब हैं। फिर उसके नम में येन–केन–प्रकारेण उन साधनों को प्राप्त करने की भावना जागती है। यह एक मनोवृत्ति इसलिए पनपी है कि साधन शुद्धि और नैतिक मूल्यों पर अर्थनीति में कोई विचार नहीं हुआ। यह व्यवस्था का दोष है। अगर केवल मध्यम वर्ग होता तो शायद इतने अपराध नहीं होते।

आज ये तीन वर्ग हुए है– उच्च, मध्यम, निम्न। इसमें अपराध और हिंसा को प्रोत्साहन मिला है। गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जीने वाले वर्ग के मन में आकांक्षा जाग गयी, किन्तु प्राप्ति के साधनों से वह वंचित रहा। ऐसी स्थिति में नैतिकता, प्रामाणिकता, आध्यात्म ये सब उसके लिए बेकार की बातें साबित होती है, इन्हें वह मात्र ढ़कोसला मानने लगता है। इन्हें वे बुजुर्ग वर्ग द्वारा अपने स्वार्थ के लिए बनाई गई ढ़ाल मानता हैं सबको अस्वीकार करके वह अपराध की दुनिया में प्रवेश कर लेता है। यह अर्थव्यवस्था के साथ पनपने वाली मनोवृत्ति है। यदि हमने व्यवस्था के साथ समाज की मनोवृत्ति पर ध्यान नहीं दिया तो पूरा आर्थिक विकास हो जाने पर भी समाधान नहीं होगा।

अर्थव्यवस्था ऐसी हो जिसमें एक राष्ट्र का शोषण न कर सके और किसी पर अपनी व्यावसायिक या वैचारिक प्रभु सत्ता स्थापित न कर सके। अगर इस प्रकार की अर्थव्यवस्था बनती है तो आज की मांग को कुछ समाधान मिलेगा। यह नहीं कहा जा सकता कि कोई व्यवस्था शास्वत बन जाएगी। शाश्वत तो कुछ है ही नहीं किन्तु जो कुछ मनुष्यकृत है उसे अवश्य समाधान मिल सकता हैं यदि हम व्यवस्थाओं को

समन्वित कर सके। महावीर गांधी, मार्क्स व कीन्स को मिला सके। जहां कीन्स कहते हैं– खूब विकास करो, खूब उत्पादन करो। संसाधनों का विकास करो, वहां महावीर का यह स्वर भी सुनाई देता है–

''कल्याणं अहं अप्प वा बहुं वा परिग्गहं परिच्चइस्सामि''

वह दिन धन्य होगा जब मैं अल्प बहु परिग्रह का परित्याग करूंगा।

एक ओर परिग्रह की भावना विसर्जन की, दूसरी ओर अर्जन की भावना। हमें दोनों सत्यांशों को मिलाना पडेगा ताकि दोनों एक साथ हमारे कानों में गूंजते रहें तो न संपदा के साथ उन्माद बढ़ेगा और न गरीबी और भूखमरी रहेगी। एक नई व्यवस्था में आदमी सुख की सांस ले सकेगा।

fo'o 'kkfr ,o vkfFkd fodkl e tu n'ku dh Hkfedk

मनुष्य अपने जीवन को सही ढंग से जीना चाहता है। जीवन सही है या नहीं? इस जिज्ञासा को समाहित करने के लिए चार मानक निर्धारित हैं–

''शांति, तुष्टि, पवित्रता और आनन्द''

भारतवर्ष की संस्कृति में अर्थ, भोग, विलास, सत्ता और संघर्ष को जीवन का आदर्श नहीं माना गया।

प्रश्न एक ही है कि शांति और तुष्टि मिले कैसे? पवित्रता आए कहां से? आनंद का उत्सव कहां है? खोजने वाले को समाधान की कमी नहीं रहती। जो चलता है वह मंजिल तक पहुंच जाता है।

संतोषज्जायते शांति स्तोषहेतुः स्वतंत्रता।

हेतशुद्धया पवित्रत्वं स्वस्थ आनन्दमर्हति।।[35]

शांति की चाह है तो सन्तोष करो अन्यथा अरबों, खरबों की सम्पदा के बीच रहकर भी शांति उपलब्ध नहीं हो सकेगी। तुष्टि की चाह है तो स्वतन्त्र बनो, आत्म अनुशासित बनो, अन्यथा बाह्य नियंत्रण की परवशता में तुष्टि की संभावना ही समाप्त

हो जाएगी। पवित्रता की आकांक्षा है तो साधनशुद्धि का ध्यान रखो। धतूरे के पेड़ पर आम नहीं लग सकते। इसी प्रकार अशुद्ध साधनों से पवित्रता नहीं आ सकती। आनंद की आकांक्षा है तो स्वस्थ रहो, अपने आप में रहने का अभ्यास करो, पर में आनन्द खोजने वाला व्यक्ति भटक जाता है। पदार्थ पर है। मनुष्य की सहज मनोवृत्ति यह है कि वह पदार्थ में आनन्द का अनुभव करता है। वह आनन्दभ्रम है। वह अनुभूति क्षणिक है। आत्मस्थ होने में जैसा आनंद मिलता है, वह एक बार भी मिल जाए तो पदार्थजनित आनंद की तुच्छता समझ में आ जाएगी।

जैन साहित्य अर्थशास्त्र में आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को बढाने का नहीं, प्राप्त साधन सामग्री में संतोष करने का निर्देश है। उसमें विवशता से गरीबी का अभिशाप झेलने की नहीं, स्ववशता में अर्थ को सीमित करने की बात कही। अर्थ में अर्जन का निषेध नहीं किया गया, परन्तु साधन शुद्धि पर पूरा बल दिया। चोरी को तो त्याज्य माना है, चोर की चोरी करने में सहयोग देने को भी उचित नहीं माना।

महावीर की दृष्टि में तात्कालिक लाभ का नहीं दीर्घकालिक लाभ का महत्व था। ईमानदारी को गिरवी रखकर व्यवसाय के क्षेत्र में अपनी साख खोकर तात्कालिक लाभ चाहने वाले व्यक्ति स्वस्थ नहीं हो सकते। अस्वस्थता शरीर की हो या मन की, वह आनन्द में बाधक है।

पिछले दो विश्वयुद्धों में मानवता के संहार का जो भयावह रूप प्रस्तुत किया है, उससे यह अनायास ही सोचना पड़ता है कि मानवता को यदि सुरक्षित रखना है तो अनिवार्य रूप से युद्ध के संकट से बचाना होगा। सम्पूर्ण विश्व एक बंधुत्व के सूत्र में बंधे और प्रत्येक भौगोलिक, देशीय, जातीय, धार्मिक आदि अनेक सीमित मान्यताओं से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति सद्भाव रखे, तब ही विश्व शांति स्थापित हो सकती है। विश्वशांति व विश्व नागरिकता की आवश्यकता इसलिए भी है कि आज का विश्व अत्यधिक सीमित होता जा रहा है। आवागमन के साधन, संचार की सुविधा, आर्थिक अन्तर्निभरता, तकनीकी आदान–प्रदान आदि विश्व नागरिकों तथा राष्ट्रों को एक दूसरे के निकट ला रहे हैं।

भारतीय चिंतन ने सदैव सम्पूर्ण चर–अचर को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने और विश्व बंधुत्व की मान्यता को आगे बढ़ाने का ध्येय सदा से ही भारतीय दर्शन का आधार रहा है। इस मान्यता के पीछे सम्पूर्ण जीवों की आत्मा की उभयनिष्ठता प्रधान रही है। इस अर्थ में सभी मानव चाहे वे किसी देश के हो, जाति के हो, धर्म के हो, उनमें मतभेद नहीं बल्कि उनमें सह–अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। परन्तु आज विश्व समाजों में जो कठोर व संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना ने जन्म ले लिया, वह समाजों और व्यक्तियों को अलग–अलग सीमाओं में बांट देता है। संकीर्ण राष्ट्रीयता की अनिवार्य परिणिति युद्ध है। अतः विश्व का विकास होना ही चाहिए। रोमा रोला के शब्दों में – भयंकर विनाशकारी दो युद्धों से कम इस तथ्य को स्थगित कर ही दिया है कि प्रचण्ड आक्रमणकारी राष्ट्रीयता को समाप्त कर देना चाहिए व दीवाररहित, वर्ग विहीन मानवता का संघ बनाना चाहिए ताकि प्रेम, दया और सहानुभूति की भूमि पर मानवीय सम्बन्धों का विकास किया जा सके।

इस तरह की संकल्पना का विकास सर्वप्रथम जेरॉम बेन्थन ने किया। उन्होंने राष्ट्र के सार्वभौमिक रूप से मतभेदों व झगड़ों को सुलझाने हेतु न्यायालय की संकल्पना की। कोमेनियस दूसरा विचारक था, जिसने सम्पूर्ण विश्व में न्याय और शांति की स्थापना के लिए सभी के लिए शिक्षा तथा विश्व सरकार की बात रखी। कांट ने विश्वशांति के लिए सभी देशों के एक संघ की आवाज उठाई। कोपरनिकस, गैलीलियो, केवलर, न्यूटन आदि वैज्ञानिकों की खोजों ने राष्ट्रीयता की सीमाएं लांघ ली। इससे देश, जाति, धर्म और अनेक सीमाओं का खण्डल हुआ और मानवता को एक सूत्र में बांधने का क्रम शुरू हुआ। इसके पश्चात् डार्विन ने यह सिद्ध कर दिया कि सभी मनुष्य चाहे काले हो या गोरे सभी का उद्गम एप्स जाति का बंदर है। इसी आधार पर उन्होंने सभी मनुष्यों में एक सी क्षमता और संभावनाओं को स्वीकार किया। मार्क्स का वर्गविहीन समाज का नारा विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था की भावना को आगे बढ़ाने में मील का पत्थर साबित हुआ और वर्तमान में परमाणु अस्त्र–शस्त्रों के और शांतिपूर्ण विश्व के विचार को आवश्यक बना दिया है।

भारत में विश्व नागरिकता की संकल्पना बहुत पहले से ही रही है। ^^ol|/ko d|V|Ecde** सारा विश्व परिवार है। ^^lo Hkou r| l|f[ku%** सारा विश्व सुखमय हो आदि सूत्र भारतीय दृष्टिकोण व चिन्तन को स्पष्ट करते हैं।[36]

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था के लिए इन मान्यताओं का होना ही पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्तियों में उदारता, संवेदनशीलता, सहयोग आदि की भावना विकसित हो। यह एक संकल्पना विश्व मैत्री और बंधुत्व पर आधारित है। गोल्ड स्मिथ ने कहा– 'अन्तर्राष्ट्रीयता एक भावना है, जो व्यक्ति को यह बताती है कि वह अपने राज्य का ही सदस्य नहीं बल्कि विश्व का नागरिक भी है।'' अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव हेतु दो आवश्यक शर्त होगी–

1. सभी व्यक्तियों में यह इच्छा और अभिलाषा उत्पन्न करना है कि वे एक जैसे विश्व समाजों में साथ–साथ रहेंगे। जहां सभी को समान न्याय बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता, वर्ग, धर्म और रंग की मान्यताओं के आधार पर प्राप्त होगा।
2. सामान्य हितों और आपसी समझ द्वारा स्थापित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सम्मिलित प्रयासों की ओर प्रत्येक को तत्पर और प्रेरित करना होगा।

संकुचित राष्ट्रीयता ने विश्व के दो विश्व युद्ध देखे हैं। सरकार की आर्थिक और राजनैतिक धारणाओं पर आधारित शांति दीर्घकालिक व सर्वमान्य नहीं होती। यदि विश्वशांति सह–अस्तित्व के प्रयासों को स्थायी बनाना है तो इसे मानवता की बौद्धिकता और नैतिक सुदृढ़ता पर आधारित करना होगा। अज्ञानता को दूर कर और परस्पर

समझ को विकसित कर अन्तर्राष्ट्रीय शांति का वातावरण बनाया जा सकता है। यह भार निर्विवाद रूप से शिक्षा पर है।

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था के विकास के लिए शिक्षा के निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये जा सकते हैं–

1. निःस्वार्थता का विकास– शिक्षा द्वारा छात्रों में निजी हितों को सामान्य के लिए त्याग की भावना जागृत करनी चाहिएं
2. छात्रों में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास हो जिससे वे पूर्व धारणाओं या अभिमतों के शिकार न हो तथा दूसरे मतों व दृष्टिकोणों के प्रति वे उदार व सहिष्णु हो।
3. छात्रों में संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना न भरी जाए। उन्हें यह बोध देना आवश्यक है कि वर्तमान समय में अपने देश का संसार से अलग होकर अस्तित्व संभव नहीं है।
4. मनुष्यों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को स्पष्ट करना चाहिए। संसार के प्रत्येक प्राणी एक–दूसरे पर आश्रित होकर परस्परोग्रही जीवनाम् सभी प्रणी एक दूसरे को उपकृत करते हैं।
5. मानवता में विश्वास उत्पन्न किया जाए जिससे व्यक्ति एक दूसरे को छोटा बड़ा नहीं समझे तथा सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।
6. अन्य राष्ट्रों की संस्कृतियों का ज्ञान एवं उनका आदर करें।

हमारे पाठ्यक्रम में कुछ विषय ऐसे होते है जो स्वाभावतः ही अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास व शिक्षण के लिए प्रचुर सामग्री व संभावनाएं रखते हैं। जैसा इतिहास, भूगोल, राजनीतिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, साहित्य, समाज शास्त्र आदि। इन विषयों में निम्नलिखित बिन्दुओं पर भी ध्यान देना अपेक्षित है–

1. सम्पूर्ण पृथ्वी का ज्ञान।
2. सभी नागरिकों का रहन–सहन।
3. विश्व संस्कृतियों का ज्ञान
4. जीवन शैली का परिचय

5. विश्व के प्रमुख धर्मों की जानकारी
6. विश्व के बिखरे ग्रन्थों का ज्ञान।
7. मानव के शांति स्थापित करने के अब तक के प्रयास आदि।

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था के विकास की संभावनाएं पाठ्येत्तर क्रियाओं में अधिक होती है। दूसरा प्रमुख कारण है कि इन क्रियाकलापों में छात्रों की सहभागिता स्वेच्छा पर निर्भर होती है।

संयुक्त राष्ट्र दिवस, मानवाधिकार दिवस, साक्षरता दिवस आदि अनेक अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के समारोहों का आयोजन विश्व नागरिकता के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के समारोहों का आयोजन विश्व नागरिकता के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय ज्वलन्त समस्याओं जैसे रंगभेद की नीति, आतंकवाद की समस्या, निशस्त्रीकरण, पर्यावरणीय प्रदूषण आदि को लेकर वाद–विवाद, नाटकीय रचना द्वारा इन समस्याओं से परिचित कराया जा सकता है तथा उन्हें इससे निष्पक्ष मत बनाने में भी सुविधा मिलती है तथा नई विश्व व्यवस्था के निर्माण में भी सहयोग मिलता है। प्राकृतिक प्रकोपों के समय कार्य, विकलांगों आदि की सहायता से परस्पर उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, दया, सहानुभूति आदि मूल्यों के विकास से भी विश्वशांति के विचारों को बल मिलता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने युनेस्को की स्थापना कर विश्व नागरिकता और नये विश्व के निर्माण का दृष्टिकोण विकसित किया है। युनेस्को के अनुसार– चूंकि युद्ध का प्रारंभ मनुष्य के मस्तिष्क में होता है इसलिए मनुष्य के मस्तिष्क में शांति स्थापित करनी चाहिए।'' यूनेस्कों ने इस दृष्टि से तीन उद्देश्यों को पूर्ण करने का प्रयत्न किया है–

1. विश्व राष्ट्रों में पारस्परिक ज्ञान तथा अवबोध उत्पन्न करना।
2. संस्कृति तथा शिक्षा का प्रसार करना।
3. ज्ञान की सुरक्षा, बुद्धि और प्रसार करना।

मनुष्य के दो विश्व युद्धों के परिणामों को भोगने के बाद तीसरे विश्व युद्ध को नहीं चाहता। वह शांति चाहता है। शांतिकाल में ही उच्च कोटि की कला व संस्कृति का निर्माण होता है। युद्ध तो कला व संस्कृति का संहारक है। अब युद्ध का खतरा

मोल लेना है। मानवता का कल्याण विश्वशांति में ही है। हिंसा की समग्रता तथा आर्थिक, वैज्ञानिक व तकनीकी, राजनैतिक व सामाजिक घटकों ने विश्व को करीब लाने और सहयोग व सद्भाव को विकसित करने में अहम् भूमिका निभायी है। शिक्षा ही है जो विश्व नागरिकता व नई विश्व व्यवस्था को साकार कर सकती है।

I UnHk

1. अर्हत वचन पत्रिका 12/1, संपादक अनुपम जैन, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर पृ.–39
2. इकोनोमिक एनालिसिस प्रो. कीन्थ ई बोल्डिंग हार्पर एंड ब्रदर्स, 1942, पृ. 4
3. प्राचीन जैन साहित्य में वर्णित आर्थिक जीवन, कमल जैन पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी, पृ.–86
4. मोहनदास करमचंद गांधी, सत्य के प्रयोग, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ.–40
5. जे.के. मेहता, एडवांस इकोनोमिक्स थ्योरी, 1957, पृ.–10
6. जे.के. मेहता, लेक्चर्स ऑफ मॉर्डन इकोनोमिक्स थ्योरी, 1967
7. गुप्ता एम.एल. और शर्मा डी.डी. (डॉ.) 'सामाजिक विचारक' पृ. 141 एवं प्रगति प्रकाशन–मास्को द्वारा प्रकाशित 'मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त के मूल तत्व' के पृष्ठ 122 पर आर्थिक वृद्धि के कारक– विस्तृत (Extensive) तथा गहन (Intensive)
8. रूपचन्द्र, मुनि 'अपरिग्रह के सम्बन्ध में मार्क्स और महावीर' 'जिनवाणी' जून, जुलाई, अगस्त, 1986 अपरिग्रह विशेषांक पृ.–298
9. गुप्ता, एम.एल. और शर्मा डी.डी. (डॉ.) 'सामाजिक विचारक' पृ.–116
10. रूपचन्द मुनि 'अपरिग्रह के सम्बन्ध में मार्क्स और महावीर' 'जिनवाणी' जून–अगस्त, 1986, अपरिग्रह विशेषांक, पृ.–299–300 एवं शर्म, रामविलास 'मार्क्सवाद : जातियों के आत्मनिर्णय का अधिकार और बहुजातीय राष्ट्र का निर्माण' ओम प्रकाशन, आगरा
11. 'मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त के मूल तत्व' पृष्ठ– 225,227
12. महाप्रज्ञ, आचार्य, महावीर का अर्थशास्त्र, पृष्ठ–18
13. जैन, प्रेम सुमन (डॉ.) पर्यावरण और धर्म (अ.भा. जैन विद्वत परिषद्, जयपुर द्वारा प्रकाशित) पृष्ठ–15
14. गांधी, मोहनदास कर्मचन्द, सत्य के प्रयोग, पृ.–32
15. गोवर्धनदास (ब्रह्मचारी), 'महात्मा गांधी एवं कवि राजचन्दजी प्रश्नोत्तर' पुस्तक की भूमिका में महात्मा गांधी के विचार। आत्मकथा का 'रायचन्दभाई' अध्याय। हंसराज जैन की 'श्रीमद् राजचन्द्र' पुस्तक पृ.–431–439 एवं डॉ. सरोज कुमार वर्मा का लेख महावीर गांधी, अणुव्रत, अहिंसा विशेषांक अप्रेल 2002, पृ.–34
16. नगराज, मुनि (डॉ.) अहिंसा पर्यवेक्षण, पृ.–112–113
17. जैन, सागरमल (डॉ.)– जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन– पृष्ठ–309
18. भट्ट, गौरीशंकर 'भारतीय संस्कृति एक समाजशास्त्रीय समीक्षा' भगवान महावीर आधुनिक संदर्भ में – डॉ. नरेन्द्र भानावत सम्पादित पुस्तक के पृ.– 58–59 पर उद्धृत।
19. पीगू, ए.सी. 'दि इकोनोमिक्स ऑफ वेलफेयर' 1932, पृ.–10
20. सेठ, एम.एल. 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' पृ.–630
21. जोशी, नन्दिनी के विचार डॉ. नेमी चन्द की पुस्तक 'अहिंसा का अर्थशास्त्र' पृ.–31 से उद्धृत।
22. पण्डित, सुरेश का लेख 'खतरे लेखकीय प्रतिबद्धता को ताकत देते हैं' 'महावीर समता सन्देश' (नवम्बर 2002), पृष्ठ–26
23. शर्मा, बनवारी लाल (डॉ.) (निदेशक– गांधी विचार एवं अध्ययन संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) 'बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मकड़जाल' पुस्तक की प्रस्तावना।
24. 'संगनिमित्तं मारइ' – भाव पाहुड़ 132
25. व्यास, वेद का लेख 'असुरक्षित दुनिया के विकल्प' 'महावीर समता सन्देश' (दिसम्बर 2014) पृष्ठ– 20

26. शास्त्री, गणेश मुनि, आधुनिक विज्ञान और अहिंसा पृ.—120
27. आवश्यक सूत्र के सातवें और आठवें व्रतों में शस्त्रास्त्रों के व्यापार का निषेध है।
28. भगवई, 7/194—202
29. मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ), श्रमण महावीर, पृ.—164
30. A decade of Econimic Reforms ASC Ipr. Page 52
31. योजना 46/10 प्रधान सम्पादक—दीपिका कच्छल, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस नई दिल्ली पृ.—28—29
32. योजना 47/2 प्रधान सम्पादक—दीपिका कच्छल, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाऊस, पृ. 9—12
33. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ सम्पादक मुनि धनंजय कुमार, आदर्श साहित्य संघ, चुरू पृ.—91
34. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ सम्पादक मुनि धनंजय कुमार, आदर्श साहित्य संघ, चुरू पृ.—90
35. अणुव्रत पत्रिका 39/22 सम्पादक धर्मचंद चौपड़ा, नई दिल्ली, पृ.—11
36. संस्कार सागर पत्रिका 4/38 सम्पादक जिनेश मलैया, ए.बी. रोड़, इन्दौर, पृ.—21

llre v/;k;

lexz eY;kdu

lIre v/;k;

lex eY;kdu

जैन साहित्य अर्थात् आगमों में प्रतिपादित आर्थिक चिन्तन के अन्तर्गत कई दृष्टियों पर विचार किया गया है। इनमें तीन दृष्टियाँ मुख्य रही हैं– आगम साहित्य में वर्णित आर्थिक जीवन, आगमिक सिद्धान्तों व आचार दर्शनों का आर्थिक चिन्तन और वर्तमान परिपेक्ष्य में आगमिक अर्थतन्त्र और जैनाचार का विवेचन। यह सार वृतांत जितना रोचक है, उससे कई गुना अधिक मार्गदर्शक है। एक के बाद एक अनेक नये आयाम हमारे समक्ष प्रकट होते चले जाते हैं जो वर्तमान मानव और विश्व के अनेक अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर देते हैं और अनेक अनसुलझी समस्याओं का समाधान करते हैं।

vkxe lkfgR; dk egRo

जैन आगम ग्रन्थ विश्व साहित्य की अनमोल निधि है। शताब्दियाँ बीत जाने के बावजूद भी आगम साहित्य का महत्व न सिर्फ कायम है, अपितु निरन्तर बढ़ ही रहा है। वर्तमान में जब विश्व ना जाने कितनी ही समस्याओं से जूझता हुआ अपनी बदहाली पर आंसू बहा रहा है, वहाँ आगम इन समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

oKkfud vu|l/kku

ज्यों–ज्यों विज्ञान और तकनीक का विकास होता गया आगम–साहित्य का महत्व बढ़ता गया। कितने ही उपयोगी तथ्य, जिन्हें प्रायः नकार दिया जाता था, अब उन्हें बहुत आदर के साथ स्वीकार किया जा रहा है। ऐसे तथ्य दार्शनिक, तत्व ज्ञान सम्बन्धी और जीवन शैली से जुड़े हुए हैं। अपने मौलिक दर्शन, व्यावहारिक सिद्धान्तों, स्व पर हितकारी जीवन शैली और आडम्बर मुक्त उपासना पद्धतियों की वजह से जैन धर्म आज विश्व में एक सर्वाधिक वैज्ञानिक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित है।

जो बातें विज्ञानियों द्वारा आज कही जा रही है, आगम साहित्य में उनके स्पष्ट निर्देश मिलते हैं और जैन परम्परा में सदियों से उनका अनुपालन होता रहा है। एक उदाहरण इसके लिए पर्याप्त है। चार दशक पूर्व राजस्थान में नारू–बाला रोग बहुत फैल गया था। इस विशेष कृमि से होने वाले इस रोग से मरीज को असह्य पीड़ा से गुजरना पड़ता था। इससे कितने ही रोगियों को अपनी जान भी गँवानी पड़ी थी। शासन की ओर से रोग और रोगियों के बारे में सांख्यिकीय आँकड़े जुटाये गये। एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि जैन समाज में नारू बाला रोग के मरीज नगण्य संख्या में पाये गये। पता चला कि जैनी पानी छानकर पीते और तप आदि की विशेष परिस्थितियों में छानने के अलावा उसे उबाल कर भी पीते हैं। यह रोग जिस कृमि से होता था, वह अनछने पानी के माध्यम से मानव शरीर में पहुँच जाती थी। तब जाकर सरकार की ओर से यह धुँआधार प्रचार किया गया कि पानी छान कर पिया जाये। स्मरण रहे, आर्थिक उन्नति सहित जीवन की सभी उन्नतियों का मूल बेहतर स्वास्थ्य है।

vkxe vuqla/kku

पिछली अर्द्ध शताब्दी के आगम साहित्य और जैन विृद्या के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। आगमों के विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन, शोध और अनुसंधान से नित नये तथ्य प्रकाश में आये। इन अनुसंधानों के फलस्वरूप जैन धर्म की प्राचीनता, ऐतिहासिकता, मौलिकता आदि के बारे में अनेक भ्रम टूटे। अब यह तथ्य दिन के उजाले की तरह सुस्पष्ट है कि जैन धर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। इसका अपना स्वतन्त्र और मौलिक दर्शन है। साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ है कि प्राकृत भी प्राचीनतम बोली है और भाषा है। इन सबके अलावा प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विषय में भी आगम साहित्य से ऐसी विपुल उपयोगी जानकारी मिलती है, जो अन्यत्र अनुपलब्ध या दुर्लभ है।

izklafxdrk

बढ़ते भौतिकवाद और बिगड़ते पर्यावरण के साथ–साथ संसार को एक के बाद एक अनेक नई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। एक तरफा विकास के आश्चर्यजनक

प्रतिमान स्थापित किये गये और किये जा रहे हैं, दूसरी ओर युद्ध, आतंक, हिंसा, हत्या, भ्रष्टाचार, दुराचार, शोषण, भूखमरी जैसी समस्याएँ समाप्त होने का नाम नहीं ले रही हैं। यह स्थिति विकास की अवधारणा को एकपक्षीय सिद्ध करती है। आगम ग्रन्थ समस्याविहीन सर्वांगीण विकास की राह सुझाते हैं। ऐसे अनेक कारणों से आगम–साहित्य की प्रासंगिकता और उपयोगिता बढ़ती जा रही है। निःसन्देह आगे भी यह बढ़ती रहेगी।

जैन आगमों में इसी महत्व के कारण हमने शोध कार्य के लिए इस विषय का चयन किया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के iFke v/;k; में प्रमुख जैन आगम ग्रंथों का एक विशेष दृष्टि से समीक्षात्मक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस अध्याय के iFke ifjPNsn में प्राचीन भारत वाग्मय में आर्थिक चिन्तन का विकास क्रम देखा जा सकता है। जिसमें कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रतिनिधि ग्रंथ है। यह विडम्बना ही कही जाएगी कि वर्तमान विश्व परिदृश्य में पाश्चात्य आर्थिक चिन्तन इतना सर्वव्यापी है कि भारतीय आर्थिक चिन्तन को उसकी अपेक्षित प्रतिष्ठा ही प्राप्त नहीं है। उसमें भी यदि भारतीय अर्थचिन्तन की दृष्टि से देखा जाए तो जैन अर्थ चिन्तन तो लगभग मूक ही है। इसकी एक प्रमुख वजह है इसका प्राकृत भाषा में निगूढ़ प्राचीन आगम ग्रंथों में प्रच्छन्न होना तथा वर्तमान काल के आध्यात्मोन्मुख आगमवेत्ताओं की अर्थ–चिन्तन के प्रति उदासीनता।

इन सबके बावजूद अर्थ के महत्व को नकारा नही जा सकता। 'अथेण स्वपनः सिद्धा' के अनुसार अर्थ से ही जीवनयापन सहित सभी सांसारिक संकल्प सिद्ध होते हैं। अतः समाज में एक स्वस्थ आर्थिक चिन्तन का होना अति आवश्यक है। इसे ध्यान में रखते हुए आगमिक सिद्धान्त और दर्शन के अर्थशास्त्रीय पक्ष को अभिनव ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। इस परिच्छेद में आगम की परिभाषा, अंग प्रविष्ठ, अंग बाह्यआगम, मूल सूत्र, छेद सूत्र, प्रकीर्णक, व्याख्या व शौरसेनी आगम साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्रदान किया गया है।

इस अध्याय के f}rh; ifjPNsn में अर्थ संबंधी अवधारणाओं पर विचार किया गया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव श्रमण संस्कृति के ही आदि संस्थापक नहीं थे, वे श्रम

और कर्म की महान संस्कृति के सूत्रधार थे। असि (प्रजातंत्र), मसि (अर्थतंत्र), कृषि (प्रजातंत्र), विद्या (ज्ञान–विज्ञान) वाणिज्य (व्यापार–व्यवसाय) और शिल्प (कला संस्कृति) का प्रायोगिक व सर्व उपयोगी ज्ञान प्रदान करने वाले आद्य संस्थापक भी थे। आगम युग में अर्थशास्त्र होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। अर्थ के महत्व को रेखांकित करने वाले उदाहरण और उद्धरण प्रचुर हैं।

प्रत्येक तीर्थंकर की माँ तीर्थंकर के च्यवन–कल्याणक के समय धन और समृद्धि की देवी लक्ष्मी और रत्नराशि के स्वप्न देखती है। आगम–ग्रन्थों में बताया गया है कि आत्म विकास और व्यक्तित्व विकास के लिए जिन साधनाओं की आवश्यकता होती है, उनकी शुरूआत सम्यग्दर्शन से होती है तथा उनकी पूर्णता कैवल्य और मुक्ति (मोक्ष) की उपलब्धि पर होती है। यह तथ्य गौरतलब है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में अर्थ विसर्जन (सुपात्र दान) मुख्य निमित्त के रूप में बताया गया है और केवल्य (मुक्ति) के लिए वज्रऋषभनाराच का शारीरिक सहन होना अनिवार्य है। अतुल शारीरिक बल (भौतिक सामर्थ्य) की शर्त एक अर्थपरक बात है। इससे यह फलित होता है कि साधना ओर आत्म विकास में भी आदि से अन्त तक अर्थ की भूमिका होती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अर्थ का अर्थ केवल वित्त या मुद्रा से ही नहीं है वरन् उन सभी निमित्तों और उपादानों से है जो हमारे जीवन की बेहतरीन व्यवस्थाओं के लिए आवश्यक है।

इस अध्याय के r'rh; ifjPNn में पुरूषार्थ चतुष्ट्य और अर्थोपार्जन की दृष्टियों की चर्चा की है। भारतीय संस्कृति में चार पुरूषार्थ बताये है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें अर्थ की अपनी महत्ता है और जीवन के संतुलन के लिए चारों में सामंजस्य आवश्यक है और यह सामंजस्य इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति अर्थ का उपार्जन और सम्यक् उपयोग कैसे करता हैं आगम ग्रंथ हमें धन के सम्यक् उपार्जन और सम्यक् उपयोग की अनेक दृष्टियाँ और विधियाँ बताते हैं। मँहगाई दिन प्रतिदिन बढ़ रही है, वहीं मुद्रा का मूल्य निम्न स्तर पर आ रहा है। ऐसे में व्यक्ति का ध्यान सिर्फ अधिकाधिक धन अर्जन पर लगा है जिसके लिए उसने अपनी नैतिकता तक दाँव पर लगा दी है। नैतिकता जिस स्तर पर आ गई है उसे देखकर सहज ही कहा जा सकता है कि मानवीय मूल्यों के दृष्टिकोण से आज समाज का नैतिक स्तर निम्नमत

स्तर पर आ गया है। भ्रष्टाचार, संचय की दूषित प्रवृत्ति व अनैतिकता जीवन का अंग बनती जा रही है। सट्टा और लॉटरियों के प्रचार–प्रसार ने मनुष्य को पुरूषार्थवादी बनने की अपेक्षा निष्क्रिय और भाग्यवादी बनाने में योगदान किया है। धन अर्जन करना ही अब प्राथमिकता हो गई है। धनोपार्जन करना सभी जानते है, परन्तु दूसरों के हितों को आहत किये बगैर धनोपार्जन कैसे करना, यह कला कम व्यक्ति जानते हैं। आगमिक दृष्टि दूसरों के हितों की रक्षा करने के साथ दूसरों के हितों में सहायक बनने की है। तत्वार्थ सूत्र का अमर वाक्य 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' अहिंसा, समता और समृद्धि के अर्थशास्त्र का प्रेरक उद्घोष है। पारस्परिक सहयोग और पारस्परिक निर्भरता पर पूरा संसार गतिमान है। धनोपार्जन से अधिक कठिन है– धन का सम्यक् उपयोग करना। आगम ग्रन्थ मनुष्य को वह सद्–विवेक भी प्रदान करते हैं कि धन का अधिकतम सदुपयोग और सद्व्यय कैसे किया जाये। भगवान महावीर के अनुयायियों ने धन के सम्यक् उपार्जन और सम्यक् उपयोग के अनेक उदाहरण समय–समय पर प्रस्तुत किये हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के f}rh; v/;k; tSu ijEijk esa vFkksZiktZu के iFke ifjPNsn में आगमों में वर्णित अर्थोपार्जन के साधनों पर विचार किया गया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भूमि, श्रम, पूंजी और प्रबंध को अर्थोपार्जन के साधनों के रूप में बताया है।

इन्हें आधार मानते हुए यह विवरण प्रस्तुत किया गया है कि आगम ग्रन्थों में कहाँ क्या है? भूमि के अन्तर्गत वन सम्पदा, खनिज सम्पदा और जल सम्पदा को लिया गया है। मूलतः धर्म शास्त्र होने से इन ग्रन्थों में इन सम्पदाओं का अर्थशास्त्रीय विवेचन भले ही न हो, परन्तु जो विवरण मिलता है, उसके अर्थशास्त्रीय निष्कर्ष हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। भूमि, जल और वन प्रदूषण मुक्त थे। वे सभी जीवों के प्राकृतिक आवास के लिए सर्वथा अनुकूल थे। इसलिए सभी जीव–जन्तुओं और पशु पक्षियों की सभी जातियाँ और प्रजातियाँ उस समय विद्यमान थी। मनुष्य और मनुष्येत्तर प्राणियों के बीच एक सह–अस्तित्वपूर्ण जीवन शैली थी। प्रकृति से मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

प्रकृति की सुरम्य गोद में तीर्थंकर, ऋषि–मुनि, योगी और अन्य साधक साधनाएँ करते थे। भगवान महावीर ने वनो में साढ़े बारह वर्षों तक कठोर साधनाएँ की। साधना काल में सम्पूर्ण प्रकृति से वे एकाकार हो गये थे। वे सम्पूर्ण प्रकृति से मौन–संवाद करते थे। मैत्री उनके रोम–रोम में थी, इसलिए वे अभय थे और निर्वेर का सन्देश दे रहे थे। चण्डकौशिक नाग के उद्धार के माध्यम से उन्होंने मानव जाति को सन्देश दिया कि प्रकृति में प्रत्येक प्राणी की महत्ता और उपयोगिता है। इसलिए किसी भी प्राणी के प्राणों का न तो हरण करना चाहिये और न ही किसी प्राणी की स्वतन्त्रता का बाधक बनना चाहिये। चण्डकौशिक जैसा जहरीला प्राणी भी रूपान्तरित हो सकता है। मानव में तो रूपान्तरण और उच्चतम विकास की सारी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। उनका साधना काल प्रकृति और प्रकृति में निवास करने वाले प्राणियों तथा वनवासी बन्धुओं के साथ सह–अस्तित्वपूर्ण जीवन का जीवन्त उदाहरण है। कैवल्य के पश्चात् भगवान महावीर उद्यानों में ठहरते थे। अध्यात्म समाज व्यवस्था का आधार था। हरे–भरे सघन वन और खिलते महकते उपवन उस समय के वरदान थे। उस समय का मानव शुद्ध स्वच्छ हवा में सांस लेता था और शुद्ध स्वच्छ जल उसे उपलब्ध था। इन सम माध्यमों का वह व्यावसायिक उपयोग भी करता था। आज जल, जंगल और जमीन पर अधिकार के लिए आन्दोलन हो रहे हैं। उस समय ये साधन सबके लिए सहज उपलब्ध थे।

इस अध्याय के f}rh; ifjPNn में उस समय की मुद्रा एवं विनिमय की स्थिति का वर्णन किया है। यह ज्ञातव्य है कि आगम युग में अर्थशास्त्र था तो अर्थशास्त्र को सुगमता से संचालित करने वाली वस्तु मुद्रा भी थी। हिरण्य या सुवर्ण मुख्य सिक्के थे, जो स्वर्ण और रजत के होते थे। इनके अलावा निम्न प्रकार के सिक्के प्रचलित थे–

1. सुवर्ण माष : उत्तराध्ययन में इसका उल्लेख मिलता है। यह सोने का होता था।
2. कार्षापण (काहावण) : बिम्बसार (श्रेणिक) के समय राजगृह में इसका प्रचलन था। यह स्वर्ण, रजत और ताम्र तीनों धातुओं का होता था।
3. माषक (मास) और अर्ध माषक (आधा माषा) : इसका उल्लेख सूत्रकृतांग और उत्तराध्ययन में मिलता है।

4. रूवग (रूप्यक) : आवश्यक चूर्णि में यह शब्द आया है। वर्तमान में प्रचलित रूपया इसी शब्द से बना है।
5. पन्निक (पण) : यह शब्द पण्य से बना है, जिसका अर्थ है– बिक्री योग्य वस्तुएँ। व्यवहार भाष्य में इसका उल्लेख मिलता है।
6. काकिणी : यह ताम्बे का छोटा सिक्का होता था तथा दक्षिणापथ में प्रचलित था। उत्तराध्ययन टीका में इसका उल्लेख मिलता है।

इनके अलावा पायंकक, कवडुग (कौड़ी) द्रम, दीनार, केवडिग, सामरक आदि विभिन्न प्रकार की मुद्रओं के उल्लेख व्यवस्थित विनिमय प्रणाली और विकसित अर्थव्यवस्था की सूचना देते हैं। समय–समय पर अनेक राजाओं ने अपने राज्य की मुद्राओं पर आगम और जैन धर्म से सम्बन्धित प्रतीकों का अंकन करके अहिंसा के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की। मुद्रा की भांति माप–तौल के माध्यम भी पर्याप्त थे। जिनमें मान, उन्मान, अवमान, गणिम और प्रतिमान मुख्य हैं। विनिमय के इन माध्यमों की सुगमता से बैंकिग प्रणाली भी विकसित हो रही थी।

इस अध्याय के r'rh; ifjPNsn में राजस्व एवं कर प्रणालियों का उल्लेख किया गया है। व्यापार, वाणिज्य और उद्योगों का संचालन प्रजा हित के लिए होता रहे तथा शासन के द्वारा उनका नियन्त्रण और नियमन होता रहे, इसके लिए राजस्व और कर प्रणालियों की विद्यमानता के उल्लेख भी आगम ग्रन्थों में मिलते हैं। खुशी और उत्सव के अवसरों पर राज्य द्वारा प्रजा को करों से मुक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। भगवान महावीर के जन्मोत्सव पर राज्य की ओर से कर माफ कर दिये थे। ज्ञाताधर्मकथांग में करारोपण और कर मुक्ति के अनेक प्रसंग हैं। करारोपण और अन्य माध्यमों से प्राप्त आय का राज्य लोक हितकारी कार्यो में व्यय करता था। शासन व्यवस्था और सैन्य व्यवस्था पर काफी धन खर्च किया जाता था। आगम सूत्रों में कल्याणकारी राज्य की स्थापना के अनेक निर्देश दिये गये हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के r'rh; v/;k; 0;kikj] okf.kT; m|ksXk% tSu /keZ esa के izFke ifjPNsn में जैन आगमों में वर्णित आर्थिक जीवन पर अनेक दृष्टियों से विवेचन किया है। कृषि और पशुपालन उस समय के मुख्य धन्धे थे। भारतवर्ष कृषि

प्रधान देश है। कृषि अहिंसा की आधारशिला है। मांसाहर से विरत होने और सात्विक भोजन की व्यवस्था के लिए कृषि ही एकमात्र आधार है। जैन ग्रन्थों के अनुसार भगवान ऋषभदेव कृषि के प्रथम उपदेष्टा रहे हैं। कृषि को आर्य कर्म और अल्पारम्भी माना गया है। ग्रन्थों में प्रायः सभी प्रकार की फसलों और कृषि उपजों का उल्लेख है। मानव का कृषि ज्ञान बहुत उन्नत था। कृषि के साथ ही कृषि के सहायक के रूप में पशुपालन किया जाता था। समाज व्यवस्था और प्राथमिक उद्योग के रूप में ये व्यवसाय प्रतिष्ठित थे। भगवान महावीर के मुख्य श्रावक आनन्द आदि भी इन व्यवसायों से जुड़े थे। दुग्ध और दुग्ध उत्पादों के व्यवसाय के रूप में पशुपालन का महत्व था। साथ ही खेती–बाड़ी, यातायात और सवारी के रूप में भी पशु–पालन की बहुत उपयोगिता थी। पशु परिवार के सदस्यों की भांति होते थे। आगमों का आचार–दर्शन पशुओं के प्रति संवेदना की प्रबल प्रेरणाएँ देता है। वहाँ मांस–प्राप्ति के लिए पशुपालन का स्पष्ट निषेध है। आगमों में अठारह प्रकार के करों का वर्णन है। वे मुख्यतः कृषि से सम्बन्धित होते और गावों में लगाये जाते थे। इससे खेती–बाड़ी और गाँवो की विकसित अवस्था का पता चलता है। क्योंकि जहाँ आय है, सामर्थ्य है, वहीं करारोपण किया जाता है।

कृषि के अलावा उद्यानिकी (बागवानी) का व्यवसाय भी था। फूल और इत्र इससे प्राप्त होते थे। उत्सवों के समय पुष्प और पुष्पाहार के उपयोग के उदाहरण मिलते हैं। वर्धमान महावीर दीक्षा के समय जिस शिविका में आरूढ़ होकर महाभिनिष्क्रमण करते हैं, उसमें पुष्प्–सज्जा भी की गई थी। व्यवसाय के लिए उपयोगी वृक्ष भी उगाये जाते थे। वनों में सहज उगे वृक्षों से लकड़ी, फल, फूल, पत्ते, जड़ी बूँटियाँ, गोंद आदि अनेक वनोत्पाद लोगों की जीविका के आधार थे। श्रावक को निर्देश दिया गया कि वह वनों को नुकसान पहुँचाने वाले धन्धे नहीं करे। खनन व्यवसाय भी प्राथमिक उद्योग के रूप में स्थापित था। उससे साधारण और मूल्यवान पत्थर, रत्न–मणियाँ, विभिन्न प्रकार की धातुएँ आदि प्राप्त होते थे। इन सब चीजों का व्यवसाय होता था।

इस अध्याय के f}rh; ifjPNsn में f}rh;d m|kxks का वर्णन है। द्वितीयक उद्योगों के अन्तर्गत प्राथमिक उद्योगों पर आधारित उद्योगों को परिगणित किया जाता है। पुरूषों को बहत्तर और महिलाओं की चौसठ कलाओं के अन्तर्गत अनेक ऐसी कलाएँ और शिल्प विद्याएँ है, जो प्राथमिक उद्योगों पर अवलम्बित थी। ये कलाएँ तत्कालीन

शिक्षा पद्धति की बहुआयामिता और उपयोगिता के साथ–साथ व्यापार–वाणिज्य के बहुआयामी विकास का प्रमाण भी है। लगभग सभी प्रकार के उद्योग धन्धें की सूचना किसी न किसी रूप में रूप में आगम–साहित्य में मिलती है। वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था में था। अनेक प्रकार और कीमत के वस्त्रों का उत्पादन होता था। वस्त्रों पर कशीदाकारी होती थी और उन्हें रंगा भी जाता था। महाभिनिष्क्रमण के समय वर्धमान महावीर को अल्प भार का एक लाख सुवर्ण मुद्राओं के मूल्य पर वस्त्र धारण करवाया गया।

धातु उद्योग के अन्तर्गत लौह उद्योग था। यह उद्योग कृषि उपकरण, अस्त्र–शस्त्र, गाड़ियाँ तथा जीवन व्यवहार में काम आने वाली अनेक वस्तुओं की पूर्ति करता था। कितनी ही चीजें अनेक उत्पादों से मिलकर बनती है। लौह उद्योग के साथ काष्ठ उद्योग का महत्व था और वास्तु उद्योग का भी। लोहे की तरह लकड़ी की स्वतंत्र रूप से अनेक चीजें बनती थीं। गृह–निर्माण में लकड़ी, लोहा, पत्थर और अन्य अनेक वस्तुएँ काम में आती थीं। ग्रन्थों में बड़े–बड़े भव्य भवनों और बहुमंजिले प्रासादों का वर्णन उत्तम गृह निर्माण विद्या का प्रमाण है। इन भवनों की बाहरी और भीतरी सज्जा के लिए अनेक वस्तुएँ काम आती थी और उनके व्यवसाय भी थे। जैसे मकानों की दीवारों पर चित्र बनाये जाते थे। मकानों के शिखरों, झरोखें, रथों, सिंहासनों आदि को मणि–रत्नों से जड़ा जाता था। अनेक व्यवसाय एक दूसरे व्यवसाय से जुड़े हुए थे। स्वर्ण–रजत व्यवसाय और रत्न व्यवसाय भी एक दूसरे से जुड़े हुए थे। रत्नों का खूब व्यापार होता था। विदेशी भी यहाँ रत्न खरीदने आते थे। राजाओं और सेठों के भण्डार सोने, चाँदी और रत्नों से भरे हुए होते थे। स्वर्ण–रजत और रत्नों का हर देश और काल में परिवर्तनीयता रहती है, इसलिए बचत और संग्रह के रूप में इनका प्रयोग किया जाता था। गुड़, शक्कर, तेल, दवाइयाँ, नमक, चर्म आदि अनेक प्रकार के उद्योग–धन्धे आगम युग में विद्यमान थे। प्रज्ञापना सूत्र में अहिंसक और अल्प आरम्भ वाले शिल्प और व्यवसायों को आर्य (उत्तम और अनिन्दित) माना गया है।

जैन आगमों से ज्ञात होता है कि सभी स्तरों पर और सभी क्षेत्रों में व्यापार, व्यवसाय और वाणिज्य फैला हुआ था। स्थानीय व्यापार करने वाले छोटे व्यापारी वणिक कहलाते थे और बड़े व्यवसासियों को गाथापति कहा गया है। आनन्द श्रावक भी

गाथापति था। धन–सम्पन्न व्यापारी को इब्भ कहा गया है। व्यापारिक काफिले को सार्थ कहा जाता था। सार्थवाह सार्थ का संचालक होता था। वह उस समय का बहुत महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित व्यक्ति होता था। जो संयुक्त विदेशी व्यापार में पराक्रम करने वाला होता था। विदेशी व्यापार के कारण वह एक नहीं, अनेक देशों की अर्थव्यवस्था के उत्थान में योगदान करता था। लोगों के व्यापार में प्रत्यक्ष रूप से सहायक बनता था। राज्य और समाज में उसका बहुत मान–सम्मान होता था। ग्रन्थों में तीर्थकर महावीर को महासार्थवाह की उपमा दी गई है। सार्थवाह के योगदान और महत्व का अनुमान इससे लगाया जा सकता है। महिलाओं के द्वारा व्यवसाय करने की सूचनाएँ मिलती है। व्यापारियों के संगठन भी होते थे। अनेक नगर व्यापार केन्द्र और व्यापारिक मण्डियों के रूप में विख्यात थे। जहाँ अनेक प्रकार के माल का आवागमन, विपणन और क्रय–विक्रय होता था।

इस अध्याय के r'rh; ifjPNn में देश–विदेश में व्यापार के लिए प्रसिद्ध व्यापारिक मार्गों का वर्णन दिया हुआ है। स्थल, जल और समुद्री मार्गो से व्यापार होता था। इन मार्गों से आयात–निर्यात होता था। अर्थोपार्जन के लिए लोग कठिन से कठिन मार्गों से भी व्यापार करने का साहस कर लेते थे। स्थल मार्गों की यात्राएँ स्थल वाहनों से की जाती थी, जिनमें गाड़ियाँ, शकट, रथ आदि का उपयोग होता था। जल वाहनों में नौकाएँ, जहाज, पोत आदि के उल्लेख प्राप्त होते है। ग्रन्थों में वायु मार्ग से आवागमन के उल्लेख भी मिलते हैं। वाहनों के निर्माण और मरम्मत का व्यवसाय भी होता था। आगम ग्रन्थों में उज्जवल और साहसी आर्थिक चरित्रों के अनेक आख्यान मिलते हैं। तत्कालीन भारतवर्ष की वाणिज्यिक गतिविधियों के बहुमूल्य दस्तावेज के रूप में उनका जीवन आगम में स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित है। उपासकदशांग के दस श्रावकों के अलावा रोहिणी ज्ञात, माकन्दी सार्थवाह, धन्य सार्थवाह, समुद्रपालीय आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के prFk v/;k; tu lkfgR; e eY;ijd vFk0;oLFkk vo/kkj.kk के iFke ifjPNn e बताया गया हैं कि अहिंसा सभी सिद्धान्तों का केन्द्रीय बिन्दु है। आगमों के संदर्भ में अहिंसा की चर्चा के अनेकानेक आयाम हैं। शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में प्राणी रक्षा और शाकाहार का अर्थशास्त्रीय अध्ययन किया

गया है। माँसाहार की बेतहाशा बढ़ती प्रवृत्ति और बूचड़खानों की रक्त रंजित आर्थिकी से संसार अनेक संकटों से घिरा हुआ है। शाकाहार आरोग्यदायक और पर्यावरण का मित्र है। धरती पर छाई जल संकट और भूखमरी की समस्याओं शाकाहार अपनाकर दूर किया जा सकता है। युद्ध और आतंक की समाप्ति में भी शाकाहार एक कारगर उपाय है। यांत्रिक बूचड़खानों ने तो हमारे अर्थतंत्र को तार–तार कर दिया है। अहिंसा ही एक ऐसा साधन है जो इस बिखरते अर्थतंत्र को संवार सकता है।

अहिंसा का दर्शन अतिसूक्ष्म है। अतएव शाकाहार जिसमें वनस्पति की हिंसा और माँसाहार जिसमें प्राणियों की हिंसा अनिवार्य है, इन दोनों की तारतम्यता समझने के लिए दर्शन की गइराई में उतरना आवश्यक है। परन्तु Ecology और Environmental Science के सिद्धान्तों को जानने वालों के लिए यह समझना आसान है कि निश्चित रूप से अभिषाहार मनुष्य के लिए अधिक खतरनाक है। माँसाहार का अर्थशास्त्र हिंसा, रक्तपात, क्रूरता, अपव्यय, अपराध और अमानवीयता का अर्थशास्त्र है। शोध से यह तथ्य उजागर हुआ है कि माँसाहारी अगर माँसाहार का त्याग कर दे तो हर वर्ष दो करोड़ लोगों को भूखमरी से बचाया जा सकता है।

शाकाहार संतुलित पर्यावरण हेतु एक अपरिहार्य शर्त है क्योंकि इससे प्राकृतिक संसाधनों का अपव्यय रूकता है। जहाँ एक किलो गेहूँ के लिए 50 गैलन जल की जरूरत पड़ती है वहीं एक किलो गौ माँस के लिए 10000 गैलन जल की जरूरत होती है। इसी प्रकार जहाँ एक शाकाहारी 0.72 एकड़ भूमि से अपना जीवन यापन कर लेता है, वहीं माँसाहारी के लिए 1.63 एकड़ जमीन की आवश्यकता पड़ती है। यदि अकेले अमेरिका के लोग अपने माँसाहार में दस फीसदी कटौती कर दे ंतो सालाना 120 लाख टन अनाज की बचत होगी जिससे 6 करोड़ लोगों का पेट भरा जा सकता है, अन्यथा वे प्रतिवर्ष भूख से मर जाते हैं। अतः माँसाहार पूर्ण रूप से पर्यावरण विरोधी आहार है।

हिंसा नहीं बल्कि अहिंसा परम धर्म है। अधिकांश धर्मों ने विस्तारपूर्वक माँसाहार के दोष बताते हुए उसे पतनोन्मुख आयुष्कारी आहार प्रकट किया है। कम से कम निरीह प्राणी की हत्या का निषेध तो सभी धर्मों ने किया है। जैन साहित्य में मन वचन काया से कृत, कारित व अनुमेदित तीनों कोटियों को ही हिंसा माना है। माँसाहार

करना, करवाना या अनुमोदन तीनों ही हिंसा है। जहाँ प्राणी मात्र को कष्ट पहुँचाना ही पाप है, वहाँ वध का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार अहिंसा प्रधान धर्म में हिंसा को पूर्णतः त्याज्य बताया है।

जियो और जीने दो' अर्थात् सह अस्तित्व अहिंसावाद का मूल मंत्र है। सह अस्तित्व स्वर्गीय पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रसारित पंचशीलों में एक है, जिसका मूलाधार जैन धर्म के पंचअणुव्रतों एवं बौद्धों की पंच प्रतिपदाओं में विद्यमान है। भगवान महावीर ने कहा था– सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, सभी को अपना जीवन प्रिय है। महावीर का अहिंसा सिद्धान्त बड़ा ही सूक्ष्म और गहन है। उन्होंने किसी प्राणी की हत्या करने को ही हिंसा नहीं माना, उनकी दृष्टि में तो मन में किए गए हिंसक कार्यों का समर्थन देना भी हिंसा है। आज यदि दो राष्ट्र लड़ाई करते हैं तो ये लड़ाई केवल उन्हीं दो राष्ट्रों तक सीमित नहीं रहती बल्कि विश्व के सभी राष्ट्रों को उसका प्रभाव झेलना पड़ता है। भगवान महावीर ने वैयक्तिक, समाजिक और राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भय–मुक्ति के लिए अहिंसा सिद्धान्त का उद्घोष किया।

इस अध्याय के f}rh; ifjPNsn में अणुव्रत का अर्थशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। गृहस्थ जीवन का संचालन मुख्यतः व्यवसाय और वाणिज्य पर आधारित है। गृहस्थाचार के अधिकांश नियमों, व्रतों और अतिचारों और पन्द्रह कर्मादानों का आर्थिक विवेचन किया गया है। साठ अतिचारों का निषेध व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। मानवीय, सामाजिक हितों को ध्यान रखते हुए, राजकीय नियमों का पालन करते हुए व्यक्ति की प्रतिष्ठा की सुरक्षा के सााथ अर्थोपार्जन करने की पुनीत व्यवस्था गृहस्थाचार में विद्यमान है। गृहस्थाचार के बारह व्रतों में पाँच अणुव्रत, तीन गुण व्रत और चार शिक्षाव्रत हैं। अणुव्रत यानि छोटे–छोटे व्रत, जो जीवन निर्माण में सहायक बनते हैं। अणुव्रतों की ताकत इतनी है कि वे अणुबम की शक्ति को भी परास्त कर सकते हैं। वे व्यक्ति के पुनीत संकल्पों और प्रशस्त उद्देश्यों के साथ जुड़े हैं। उनमें सर्वत्र त्याग विद्यमान है, जो समतावाद की आधारशिला है। अहिंसा में समता की अनुभूति है, सत्य में समता का व्यवहार है, अचौर्य में समता की वेदना है, ब्रह्मचर्य में समता का विकास है और अपरिग्रह में समता का संघटक–संस्थान है। गरीबी में इच्छाओं और अनावश्यक इच्छाओं की व्यथा है और अमीरी में अतृप्ति का दुःख है।

सन्तुष्टि और वृत्ति–सन्तुलन त्याग पर निर्भर है। अणुव्रत मानव को भीतर से तृप्त करते हैं। वे समाज और देश में उच्चतर नैतिक मूल्यों के द्वारा समृद्धि, सन्तुष्टि और समता के आर्थिक चरित्र की स्थापना करते हैं। अणुव्रतों के माध्यम से भगवान महावीर मानव को धार्मिक बनाने से पहले नैतिक बनाते हैं।

अणुव्रत मानव धर्म की व्याख्या है। यदि मनुष्य उसका समुचित रीति से समाचरण कर लेता है तो वह सही मायने में मानव बन जाता है। ऐसी स्थिति ने वह मानव शोषण, मिलावट, रिश्वत व धोखाधड़ी से अर्थ संग्रह नहीं कर सकता है और न सहज संग्रहित अर्थ जो समाज का है, राष्ट्र का है को अपना ही मान सकता है। वह मानवीय मर्यादाओं का अंकन करते हुए अति मात्रा में अर्थ संग्रह नहीं करता। यदि हो भी जाए तो मानव हित में तत्काल उसका विसर्जन कर देता है। इससे फलित होगा कि न कहीं अर्थ का अतिभाव होगा और न कहीं अभाव। मानव–मानव से घृणा न कर एक दूसरे को समान मानेंगे, भाईचारे के विकास से समाज व विश्व का भी कल्याण होगा।

इस अध्याय के r'rh; ifjPNn में संयम की चर्चा है। संयम की कई दृष्टियों से चर्चा की गई। भगवान महावीर महत्व की बात कहते हैं कि जो चीजें निर्जीव है, उनके उपयोग में भी संयम और विवेक होना चाहिये। इसके बाद आत्म संयम (ब्रह्मचर्य) और जनसंख्या के सिद्धान्त का विवेचन है कि किस प्रकार जनसंख्या नियन्त्रण और परिवार नियोजन के लिए आत्म संयम एक निरापद उपाय के रूप में भटकती मानवता को नई राह दिखाता है। ब्रह्मचर्य समाज में सदाचार की स्थापना करता है। स्त्री पुरूषों को वह अनेक परेशानियों से बचाता है। अर्थशास्त्र में जिसे मानव संसाधन कहा जाता है, सदाचार से वह समर्थ और बलशाली होता है। स्त्री–स्वतन्त्रता और स्त्री पुरूष समानता में भी ब्रह्मचर्य की अनूठी भूमिका है।

इसी वजह से जैन धर्म में संयम व तप को बहुत प्रधानता दी है। इन्द्रियों और मन पर विजय प्राप्त करना संयम है और इच्छाओं का विरोध करना ही तप है। मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित हैं, परन्तु उसकी इच्छाओं की कोई सीमा नहीं वे आकाश के समान अनन्त हो गई हैं। जो व्यक्ति लखपति है वह करोड़पति बनना चाहता है,

करोड़पति है वह अरबपति बनना चाहता है। कहीं पर भी सन्तुष्टि नहीं, यही वजह है कि विश्व में आर्थिक असमानता की खाई और ज्यादा बढ़ती जा रही है। अमीर और अमीर हो रहा है, गरीब और गरीब। ताकतवर राष्ट्र कमजोर राष्ट्रों का शोषण कर रहे हैं और मुनाफा कमाने की उनकी प्रवृत्ति हिंसक होती जा रही है। यदि मनुष्य अपनी अनावश्यक इच्छाओं पर लगाम कसे, अपने आचरण को संयमित रखे तो विश्व का स्वरूप ही बदल जाएगा।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के ipe v/;k; में vkxfed o vk/kfud vFkZ'kkL=h; fopkjk e lg lEcU/k का उल्लेख किया है। साथ ही जैन परम्परा की दृष्टि से आर्थिक सामाजिक विचारों और विचारकों पर चर्चा भी की गई है। इस अध्याय के iFke ifjPNn में भगवान महावीर के अर्थशास्त्रीय व्यक्तित्व में उनके जीवन की उन घटनाओं पर विचार किया गया है, जिनका आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व है। किसी भी व्यवस्था के पीछे कोई न कोई सिद्धान्त, दर्शन या मान्यता काम करती है। सुप्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री व दार्शनिक ओसवाल्ड स्पेगलर ने अपनी पुस्तक 'डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट' में लिखा है कि जो विचार हमारे जीवन के प्रश्नों के, हमारी समस्याओं के समाधान नहीं देते, उनका मूल्य कौड़ी के बराबर है। महावीर के संदर्भ में यदि विचार करें तो उनकी दृष्टि आज भी उतनी ही सार्थक है। उनका बतलाया मार्ग आज विश्व की समस्याओं के समाधान का मार्ग है, विकास और उन्नति का मार्ग है। व्यक्ति के लिये, समाज के लिये और सम्पूर्ण मानव जाति के लिये आज चारों तरफ हिंसा फैली हुई है और व्यक्ति हर स्तर पर जीवन की अनेकानेक समस्याओं से घिरा हुआ है। अमीरी–गरीबी की खाई पट नहीं रही है। अमीर और अधिक अमीर हो रहा है और गरीब और अधिक गरीब। ऐसे में महावीर का अहिंसा व समानता का सिद्धान्त सभी समस्याओं के द्वारा खोलने में सहायक सिद्ध हो सकता है। महावीर की विचारधारा प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक क्षेत्र में हो, सहायक बन सकती है। शर्त केवल इतनी है कि उसे बदलते संदर्भों के अनुसार देखा जाये। महावीर ने स्वयं कहा था – युग के संदर्भ में देश और काल के परिवेश में तथ्यों पर नये ढ़ंग से सोचना अपेक्षित है।

महावीर ने अपने व्रती समाज के लिए व्यक्तिगत सीमाकरण और उपभोग का सीमाकरण ये दोनों दर्शन दिए। इन्हीं दोनों के आधार पर समाज का निर्माण किया। फलतः वह समाज सुखी और शान्त जीवन जीता था। आज अपेक्षा है हमारे वर्तमान के अर्थशास्त्री और वर्तमान के उपभोक्तावादी लोग उस सत्य का साक्षात करें, केवल सम्मोहन में ना जाएँ। आज का उपभोक्तावादी दृष्टिकोण एक प्रकार का सम्मोहन बन गया है, हिस्टीरिया की बीमारी बन गया है। सम्मोहन करने वाला जैसा नचाएगा, उपभोक्ता वैसे ही नाचेगा। आज का उपभोक्ता बाजार और विज्ञापनों के हाथ के कठपुतली है। इस मोह पाश से छूटने की आवश्यकता है तभी सुखी और शान्तिपूर्वक जीवन जीने वाला समाज बन सकता है।

इस अध्याय के f}rh; ifjPNsn में अपरिग्रह की चर्चा है। अपरिग्रह आगमिक अर्थशास्त्र का मूल व्रत है। अचौर्य इसका सहवर्ती है। अपरिग्रह और अचौर्य की मूल भावना पर आधारित समाज व्यवस्था से आधुनिक आर्थिक सामाजिक विचारक भी आकर्षित हुए हैं। अपरिग्रह का व्रत व्यक्ति की आन्तरिक रिक्तता को भरता है। उपभोग–परिभोग परिमाण और इच्छा परिमाण इनके संचालन में सहायक बनते हैं। हिंसा की मुख्य वजह परिग्रह है, इसलिए अपरिग्रह अहिंसा और अहिंसक तथा समतामय समाज व्यवस्था का आधार है। आगम ग्रन्थों में परिग्रह के तीस नाम बताकर उसे हर कोण और हर स्तर पर छोड़ने की सलाह दी गई है। अपरिग्रह अप्रमाद और कर्तव्यनिष्ठा का प्रेरक तत्व है, इसलिए वह विकास का कारण है। यह व्रत व्यक्तित्व रूपान्तरण से व्यवस्था परिवर्तन में सहायक बनता है।

विश्व में जो भी लड़ाईयाँ होती है उसका मूल कारण ही मनुष्य की परिग्रह प्रवृत्ति है। आर्थिक विषमता का एक मात्र कारण मनुष्य की अनावश्यक संचय प्रवृत्ति एवं लोभ है। यदि मनुष्य सिर्फ अपने आवश्यकता मात्र की वस्तुओं का संग्रह कर अनावश्यक वस्तुओं को दूसरों के उपयोग के लिए छोड़ दे तो विश्व में अभाव व अशांति अवश्य दूर हो जायेगी।

इस अध्याय के r'rh; ifjPNsn में जैन और समकालीन आर्थिक चिन्तन पर चर्चा की गई है। आधुनिक अर्थशास्त्र भौतिकवाद के आधार पर विकसित हुआ है जो

एकांगी दृष्टिकोण लिये हुए है, यदि यह एकांगी दृष्टिकोण नहीं होता तो वर्तमान में इतनी अपराध की स्थितियाँ नहीं बनती, इतनी आर्थिक स्पर्धा विषमता पैदा नहीं होती। कीन्स व मार्क्स ने साम्यवाद की अवधारणा प्रस्तुत की परन्तु उनका सारा चिन्तन धन को केन्द्र मानकर रहा। एडम् स्मिथ ने अर्थशास्त्र को ऐसा शास्त्र बताया जो कि निजी व्यक्तियों एवं राष्ट्रों को धन कमाने अथवा धन में वृद्धि करने की विधियों से अवगत करवता है। अर्थशास्त्र केवल धनोपार्जन करने का साधन बनकर रह गया। जैन दर्शन की अवधारणा और आधुनिक अर्थशास्त्र की अवधारणा में इस दृष्टि से बहुत अन्तर दिखाई देता है। जैन अर्थशास्त्र में मूल्यों का ह्रास ना हो, यह अनिवार्य शर्त रही है। जैन दर्शन ने भौतिकवाद और आध्यात्मवाद दोनों को स्वीकारा है। महावीर के अर्थशास्त्र का यही लक्ष्य है– मनुष्य शांति के साथ सुख के साथ जीवन बिताए क्योंकि शांति के बिना सुख नहीं मिलता। सुख शांतिपूर्वक होता है। गीता में भी यही कहा गया है– u pkHkko;r% 'kkfUr% v'kkUrL; dqr% lq[ke~ अर्थात् भावना के बिना शांति नही होती और शांति के बिना सुख का सपना भी नहीं देखा जा सकता।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के "k"Be~ v/;k; tSu lkfgR; esa vkfFkZd fopkj rFkk oS'ohdj.k dh vko';drk में आधुनिक अर्थव्यवस्था के कई स्वरूपों पर विचार किया गया है। वर्तमान युग को प्रायः आर्थिक युग कहा जाता है। आर्थिक क्रियाओं और व्यवहारों ने आधुनिक मानव समाज पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है। इस अध्याय के iFke ifjPNsn में भारतीय चिन्तकों के विचार प्रस्तुत किए हैं। अर्थ को मनुष्य के चार पुरूषार्थों में से एक बताया गया है परन्तु वर्तमान मनुष्य के लिए तो यह एकमात्र पुरूषार्थ बन गया है। अर्थ के अर्जन के नये–नये साधन खोजे जा रहे है, आर्थिक समृद्धि भी बढ़ती हुई दिखाई दे रही है परन्तु फिर भी मानव अपने पूर्वजों की तुलना में अधिक शांत और सुखी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आर्थिक प्रगति ने मानव जीवन को भौतिक समृद्धि भले ही प्रदान की हो मानसिक सन्तुष्टि देने में यह विफल ही सिद्ध हुई है। इस परिदृश्य में मन में कई जिज्ञासाएँ उठती है कि अर्थ वास्तव में है क्या? इसी क्रम में विभिन्न प्राचीन और अर्वाचीन अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों का अध्ययन कर उन पर विचार किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, जैन आगम, विदुर नीति, रामायण, महाभारत, याज्ञवल्क्य नीति, मनुस्मृति इन सभी ने भारत के आर्थिक चिन्तन पर विचार

किया गया है। प्राचीन समय से ही आर्थिक चिन्तन के बारे मे विभिन्न ग्रंथों में पढ़ने को मिलता है। कौटिल्य मनु को अर्थशास्त्र का पहला आचार्य मानते थे, मनुस्मृति पहला ऐसा ग्रंथ है जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरूषार्थों का विशद् प्रतिपादन किया गया है, वही शुक्रनीति में अर्थशास्त्र की परिभाषा के साथ धनार्जन, अर्थ की महत्ता, धनार्जन का उपयोग, संयमित उपभोग, उत्पादन व्यवस्था, विनिमय, व्यवस्था, मूल्य निर्धारण, व्यापार, मजदूरी, सार्वजनिक आय–व्यय, पर्यटन का भी उल्लेख किया गया है। वही अर्थशास्त्र के प्रणेता आचार्य कौटिल्य ने समकालीन आर्थिक समस्याओं पर जितना चिन्तन किया शायद उतना किसी अन्य आचार्य ने नहीं किया। इसके साथ ही कौटिल्य ने स्वयं अपनी पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है कि मेरे पूर्व के अर्थ, चिन्तकों के विचारों से वह सहमत नहीं है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि भारत में अति प्राचीन काल से ही अर्थ चिन्तन के बारे में विभिन्न ग्रंथों में पढ़ने को मिलता है। बीसवीं सदी में महात्मा गांधी सादगी, संयम, अहिंसा, अपरिग्रह आदि पर आधारित व्यवस्था पर जोर देते हैं। सक्षम ग्राम तंत्र का विचार भी इससे जुड़ा है। गांधीजी के विचार आगमिक जीवन व्यवस्था के बहुत निकट हैं। उनके आश्रम व्रत, सर्वोदय और ट्रस्टीशिप मे अणुव्रतों का आदर्श प्रकट होता है। वहीं पण्डित दीनदयाल ने पूंजीवादी एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं से त्रस्त विश्व को 'एकात्मक मानव दर्शन' का सिद्धान्त दिया। जो न केवल व्यक्ति के जीवन से लेकर संपूर्ण मानव जाति का चिन्तन था। अपितु मानवोत्तरत प्रकृति तथा उससे भी आगे जाकर समग्र रूप से टोह लेने वाला चिन्तन है। प्रो. जे.के. मेहता ने अर्थशास्त्र को विज्ञान की संज्ञा दी जो मानवीय आचरण का अध्ययन करके उसे लक्ष्य पर पहुंचने के लिए प्रेरित करता है। आधुनिक युग में भगवान महावीर के विचारों का पालन करके विश्व को शांति व अहिंसा के मार्ग की तरफ प्रेरित किया जा सकता है। महावीर का अहिंसा परमो धर्म का सिद्धान्त पच्चीस सौ वर्षों में पूरे विश्व में व्याप्त हो गया।

इस अध्याय के f}rh; ifjPNn के आधुनिक अर्थव्यवस्था के कई स्वरूपों पर विचार किया गया है। औद्योगिक क्रांति और वैज्ञानिक तकनीकी विकास के बीच विश्व की आर्थिक सामाजिक व्यवस्थाओं में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए। कहीं पूंजीवाद को ठीक समझा गया तो कहीं समाजवाद और साम्यवाद को ठीक समझा गया। दोनों के

अपने–अपने गुण दोष है। जैन दर्शन व्यवस्थाओं के सापेक्षिक मूल्यांकन और श्रेष्ठ के समन्वय पर बल देता है। परन्तु आज मानव की भौतिक इच्छाओं के अनन्त आकाश ने सन्तुष्टि, संयम, अपरिग्रह जैसी मूल्यवान बातों को बहुत चतुराई से उपेक्षित कर दिया है। आर्थिक व्यवस्थाएँ बाजार के स्वरूप में अपना जाल फैलाकर प्रचुर भोग, उपभोग व परिभोग के माध्यम से उपभोक्तावाद को स्थापित करने का प्रयास करती है। इसके लिए वह तरह–तरह के प्रलोभनकारी विज्ञापनों का सहारा लेती है। बाजारवादी व्यवस्था की गतिशीलता में औरत एक बहुत बड़े औजार का काम करती है। आश्चर्य यह हे कि नारी–मुक्ति की जोश–खरोश से बाते करने वाले इस पर चुप्पी साधे हुए हैं। उपभोक्तावाद को विश्वव्यापी बनाने के लिए वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण जैसे नये नाम और नारे गढ़े जाते हैं। इस बीच विकसित और धनी देश परमाणु शक्ति का डर बताकर विश्व में भय और हिंसा का माहौल पैदा कर रहे हैं। आधुनिक अर्थव्यवस्था में मनुष्य ने अपने तत्कालिक स्वार्थ के लिए त्रैकालिक मूल्यों की उपेक्षा करते हुए विकास के ऐसे तरीके ईजाद कर लिए जिसमें सर्वोदय के सारे सपने चूर–चूर हो गए हैं। सन् 1979 से 2014 की 35 वर्ष की अवधि में भारत में कृषि क्षेत्र में लगे लोगों की संख्या 64 प्रतिशत से घटकर 53 प्रतिशत रह गई। देश में करीब 4 करोड़ युवा बेरोजगार है और करोड़ों बस जैसे तैसे अपना काम चला रहे हैं। स्वतन्त्रता के समय 1947 में देश में जितनी आबादी थी, उतने यानि करीब 35 करोड़ लोग आजादी के सातवें दशक में भी आज भूखे सोने पर मजबूर है।

तेज आर्थिक रफ्तार और क्रांतिकारी तकनीकी विकास के बीच करोड़ों लोगों के लिए पर्याप्त भोजन का ना होना बेरोजगार रहना चिन्ता व चिन्तन का विषय है। जनसंख्या बढ़ रही है, पर्यावरण पर खतरा और गहराता जा रहा है। धरती पर से, वन्य जीवों की व समुद्री जीव जन्तुओं की सैंकड़ों प्रजातियाँ लुप्त हो गई है या लुप्त होने के कगार पर है। प्रदूषण ने करोड़ों लोगों का जीवन दुभर कर दिया है। अधिकाधिक लाभ कमाने की चाह ने मनुष्य की विकृत प्रवृत्ति को इतना भ्रष्ट कर दिया है कि उसने जीवनदायिनी ऑक्सीजन प्रदान करने वाले पेड़ों को जंगलों सहित काट दिया है। पर्यावरण असन्तुलन चरम पर है। वहीं दूसरी ओर बढ़ता हुआ आतंकवाद और उग्रवाद दुनिया के अमन–चैन में बाधक है, जिनके समाधान के लिए विचार विमर्श तो बहुत हो

रहे हैं, पर समस्याओं के मूल में जाने को कोई तैयार नहीं। भगवान महावीर का अहिंसा और समता का सिद्धान्त विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना करता है। वह सह अस्तित्व पर आधारित है। उसमें सबका हित सन्निहित है।

इस अध्याय के r'rh; ifjPNsn में विश्व शांति और आर्थिक विकास में जैन दर्शन की भूमिका पर चर्चा की गई है। आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप वर्तमान में उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। परिग्रह की लालसा बढ़ती जा रही है, फलस्वरूप हिंसा आदि घटनाओं में वृद्धि हो रही है जो कि विश्व शांति के लिए एक बड़ी बाधा है। ऐसे समय में जैन दर्शन के अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकांत संबंधी सिद्धान्त निश्चय ही सर्वोदयी सन्मार्ग का प्रदर्शन कर स्वस्थ समाज, राष्ट्र एवं विश्व का नव–निर्माण कर सकते हैं। संसार में अनेक अर्थशास्त्री हैं। वे अपनी दृष्टि से अर्थशास्त्रीय अवधारणा को व्यापारी एवं उपभोक्ता वर्ग तक पहुँचा रहे हैं। अर्थ के प्रति आकर्षण इतना बढ़ गया है कि कभी–कभी लगता है अर्थ मनुष्य के जीवन से भी अधिक मूल्यवान बन गया है। अर्थ का आवश्यकता से अधिक अर्जन, संग्रह, संरक्षण व भोग संपूर्ण विश्व में सन्ताप का कारण बन रहे हैं। ऐसे में जैन दर्शन अहिंसा, अस्तेय, अचौर्य, अपरिग्रह व अनेकान्त के सिद्धान्तों के द्वारा सुख व शांति का मार्ग दिखा रहा है। जहाँ उसके जीवन का लक्ष्य केवल अर्थ अर्जन न होकर शांति के साथ सुख व अर्थ अर्जन होना चाहिए जिसमें साध्य और साधन की पवित्रता को आधार बनाना चाहिये।

वर्तमान अर्थशास्त्रीय अवधारणा ने मनुष्य को अर्थ सम्पन्न तो बनाया है किन्तु सुखी कम बनाया है। सुविधा, शांति और सुख–यह त्रिपुटी है। सुविधा मिले, आवश्यकताओं की पूर्ति हो, मानसिक शांति और सुख भी मिले, ये तीनों हो तो पूरी बात होती है। इन तीनों को उपलब्ध करवाने वाला अर्थशास्त्र ही आज अपेक्षित है, ऐसा अर्थशास्त्र जो दूसरों के हितों को खण्डित करें, जिससे अनेक सुविधाएँ मिल जाए, आवश्यकता की पूर्ति खूब हो जाए, किन्तु मन की शान्ति भंग हो जाए, ऐसा अर्थशास्त्र किस काम का।

आधुनिक अर्थशास्त्र ने सम्पन्ता का सिद्धान्त रखा है और सम्पन्नता की अंधाधुंध दौड़ चल रही है। वर्तमान अर्थशास्त्र की जो संकल्पजा दृष्टि में है, उसकी कुछ संतानें हैं– उद्योग, यंत्रीकरण और शहरीकरण। जितना उद्योग बढ़ेगा उतनी सम्पन्नता बढ़ेगी। फलस्वरूप औद्योगिक दौड़ शुरू हो गई, अनेक राष्ट्र आज औद्योगिक राष्ट्र बन गए हैं, अमीर बन गए हैं, बहुत सम्पन्नता अर्जित कर ली है पर इस औद्योगिकरण की कीमत को हमने पर्यावरण की बलि देकर चुकाया है। भूमि, जल और वायु सब दूषित हो रहे हैं। बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी में भूमि का जितना उत्खनन हुआ है उतना अतीत में कभी नहीं हुआ। क्या हम यह एक बार भी नहीं सोचेंगे कि वर्तमान पीढ़ी भूमि का इतना दोहन कर लेगी तो आने वाली पीढ़ी क्या करेगी? वह पीढ़ी तो यही कहेगी कि हमारे पूर्वज बिल्कुल नासमझ थे उन्होंने हमें दरिद्र बना कर छोड़ दिया। स्वयं सुविधा भोगते रहे और हमें विपन्नता के वातावरण में जीने को विवश कर दिया।

उद्योग के साथ यंत्रीकरण बढ़ा और यंत्रीकरण के साथ शहरीकरण बढ़ा। उद्योग के साथ आजीविका जुड़ी और लोग गाँवों से शहर में जाने लगे। शहर फैलते गए, गाँव सिकुड़ते गए और जंगल कटते गए। आज हर बड़े शहर में गगनचुम्बी इमारते हैं तो उनके पार्श्व में झुग्गी–झौंपड़ियों की लंबी कतारें हैं। स्वर्ग और नरक दोनों एक साथ हैं। इस धरती पर स्वर्ग देखना है तो स्वर्ग का दृश्य तैयार है और नरक का देखना है तो झुग्गी–झौपडियों के रूप में वह भी तैयार है।

इन सारी समस्याओं के संदर्भ में हम आधुनिक अर्थशास्त्र की अवधारणाओं को पढ़े तो लगेगा– रोटी, पानी और आवश्यक संसाधनों को जुटाने का जो संकल्प लिया था, वह पूरा नहीं हो रहा है, दूसरी दिशा में जा रहा है। यदि सारा धन मनुष्य की भूख को मिटाने में लगता तो आज कोई भूखा न रहता। वह स्वप्न पूर्ण नहीं हुआ क्योंकि उसके साथ मानसिक समस्याओं का अध्ययन नहीं किया गया। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अपनी प्रभुत्ता स्थापित करना चाहता है, अपना अधिकार बनाए रखना चाहता है। उसके लिए किस तरह गुप्तचरी का जाल बिछाया जाता है, किस प्रकार प्रतिद्वन्दी राष्ट्र के सामने समस्याएँ पैदा की जाती है और किस प्रकार दूसरे पर आक्रमण किया जाता है। विकसित राष्ट्र गरीब या अविकसित, विकासशील राष्ट्रों पर किस प्रकार आर्थिक प्रतिबंध लगाते हैं, ये सारी मानसिक समस्याएँ है। अगर भौतिक समस्याओं के समाधान

के साथ–साथ मानसिक समस्याओं को भी देखा जाता, इन पर ध्यान दिया जाता कि भौतिक संपदा के साथ–साथ मानसिक समस्याएँ कितनी बढ़ेगी तो शायद अर्थशास्त्र का स्वरूप बदलता, उसकी अवधारणा भी बदलती।

आधुनिक अर्थशास्त्र, भौतिकवाद के आधार पर विकसित हुआ है, उसकी कठिनाई ही यह एकांगी दृष्टिकोण है। अगर यह एकांगी दृष्टिकोण ना होता तो वर्तमान में इतनी आर्थिक अपराध की स्थितियाँ ही ना बनती, आर्थिक स्पर्धा ना होती, अमीरी–गरीबी का भेद ना होता, उत्पादन और वितरण में इतनी असमानता ना होती। आधुनिक अर्थशास्त्री कीन्स ने कहा था– 'हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है, सबको धनी बनाना है, इस रास्ते में नैतिक विचारों का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है।' उनका बहुत स्पष्ट कथन है कि– 'यह नैतिकता का विचार न केवल अप्रासंगिक है, बल्कि हमारे मार्ग में भी बाधक है।'

आज ज्वलन्त प्रश्न है भ्रष्टाचार का। बहुत सारे लोग भ्रष्टाचार की बातें करते हैं, कहते हैं– आज भ्रष्टाचार बढ़ा है। जब अर्थशास्त्र की मूल धारणा यह है कि नैतिकता हमारे मार्ग में बाधक है तो फिर भ्रष्टाचार का रोना किस बात का? वर्तमान की अर्थशास्त्रीय अवधारणा के बीच यदि भ्रष्टाचार बढ़ता है, आर्थिक अपराध बढ़ते है, अप्रमाणिकता और बेईमानी बढ़ती है तो स्वाभाविक है। भ्रष्टाचार ना बढ़े तो आश्चर्य की बात है।

आधुनिक अर्थशास्त्र के तीन प्रमुख आधार है– इच्छा, आवश्यकता और माँग। इच्छाओं को बढ़ाओ, आवश्यकता को बढ़ाओ और माँग को बढ़ाओ। तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो इच्छा का क्षेत्र व्यापक है, आवश्यकता का क्षेत्र उससे छोटा है और माँग का उससे भी छोटा है। इन तीनों पर आधुनिक अर्थशास्त्र का ढ़ाँचा खड़ा है।

महावीर ने इच्छा को अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने स्वयं कहा– bPNk g| vkxkle;k v.kr;k– इच्छा आकाश के समान अनन्त है। उन्होंने यह नहीं कहा कि आवश्यकताओं को समाप्त कर दो, उनका प्रयोग मत करो, इसके स्थान पर उन्होंने 'संयम' शब्द का प्रयोग किया। इच्छा का संयम करो, आवश्यकता का संयम या सीमाकरण करो। महावीर की भाषा में सुविधा की सीमा का विवेक यह है जो सुविधा

शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को हानि पहुँचाये, वह सुविधा अवांछनीय है। वास्तव में देखा जाए तो हमारी वास्तविक आवश्यकताएँ बहुत सीमित होती है व काल्पनिक बहुत अधिक। इसीलिए महावीर ने कहा कि तुम काल्पनिक आवश्यकता की सीमा करो, संयम करो। महावीर ने इस संदर्भ में 2500 वर्ष पूर्व ही इस स्थिति की परिकल्पना कर ली।

जैन साहित्य में आज की समस्याओं का समाधान छिपा हुआ है। विश्व को जैन दर्शन की प्रमुख देन है– vfgalkokn] vifjxzgokn] lerkokn o vusdkarokn। आज वैज्ञानिक प्रगति और विकास ने समय और स्थान की दूरी पर विजय प्राप्त कर दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है। परिणामस्वरूप दुनिया के किसी भी भाग में घटित साधारण घटना का प्रभाव भी संपूर्ण विश्व पर पड़ता है। आज दो राष्ट्रों की लड़ाई केवल उन्हीं तक सीमित नहीं रहती, विश्व के सभी राष्ट्र आन्दोलित हो उठते हैं और जन मानस अशांत और भयभीत हुए बिना नहीं रहता। भगवान महावीर ने वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भय मुक्ति के लिए vfgalk ds fl)kUr का उद्‌घोष किया। उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा– सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सबको अपना जीवन प्रिय है। मनुष्य तो क्या उन्होंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीवों की रक्षा करने की पहल की। अखण्ड सृष्टि के प्रति यह प्रेममार्ग ही विश्व शांति का मूल है।

महावीर ने उत्पादन के संदर्भ में तीन निर्देश दिए–

1- vfgalli;k.k& हिंसक शस्त्रों का निर्माण न करना।

2- vlarlÙkkfgdj.k& शस्त्रों का संयोजन न करना।

3- vikodEekonsl& पाप कर्म का, हिंसा का प्रशिक्षण न देना।

ये तीनों निर्देश अर्थशास्त्र की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

पहला निर्देश है कि हिंसक अस्त्रों का निर्माण उत्पादन की सूची से हटना चाहिए। व्रती समाज के लिए तो यह अनिवार्य था कि वह शस्त्रोत्पादन नहीं कर सकता था। वह केवल निर्माण ही नहीं, हिंसक शस्त्र का विक्रय भी नहीं कर सकता था। आज

तो यह बहुत बड़ा व्यवसाय बन चुका है। अरबों–खरबों डॉलर के शस्त्रों का क्रय–विक्रय हो रहा है। इसके निर्माण में बहुत बड़ी प्रतिस्पर्द्धा चल रही है। आधुनिक अर्थशास्त्र में शोषण की जो बात कही जाती है, उसका यह बड़ा रूप है, खुला बाजार। यह फ्री मार्केट आज शोषण का अड्डा बन गया है। जब चाहें हथियार खरीद लें। लाइसेंस प्रणाली भी कारगर सिद्ध नहीं हो रही है। फलस्वरूप आतंकवाद को और बढ़ावा मिला है। यह शस्त्र निर्माण और शस्त्र विक्रय व्रती समाज का सदस्य नहीं कर सकता।

दूसरा निर्देश है– शस्त्र के पुर्जों का संयोजन न करना। व्रती समाज का सदस्य शस्त्रों के पुर्जों का आयात–निर्यात न करे, उन्हें जोड़कर तैयार भी न करे।

तीसरा निर्देश है– पाप कर्म का उपदेश न देना। हिंसा का, युद्ध का प्रशिक्षण देना भी एक व्रती के लिए वर्जित था। आज हालात यह है कि हिंसा का प्रशिक्षण देने के लिए ऐसे स्कूल खोले गए है, जहाँ आतंकवाद का प्रशिक्षण दिया जाता है। उसकी सूक्ष्म तकनीक सिखाई जाती है। कैसे आतंक के द्वारा पूरे समाज और राष्ट्र को भयभीत किया जा सकता है, इसकी ट्रेनिंग दी जाती है।

इस संदर्भ में जैन आगमों में व्रती समाज के लिए विधान दिए गए हैं, वे अहिंसा और शांति के अर्थशास्त्र की दृष्टि से बहुत महत्वूर्ण है।

आज व्यक्तिगत शांति से भी अधिक महत्व है–विश्वशांति का। इस सामूहिक शांति की प्राप्ति के लिए मानव ने अनेक साधन ढूँढ निकाले हैं, लेकिन उसे अब तक शांति नहीं मिल पाई है। इसका मूल कारण है– आर्थिक वैषम्य।

जैन शास्त्रों में इस विषमता को दूर करने का जो सूत्र दिया है वह आज भी उतना ही प्रभावकारी है। यह सिद्धान्त vifjxg के नाम से जाना जाता है। अपरिग्रहवाद से तात्पर्य है ममत्व को कम करना, अनावश्यक संग्रह न करना। संसार में झूठ, चोरी, अन्याय, हिंसा, छल–कपट आदि जो पाप हैं, उनके मूल में व्यक्ति की परिग्रह की भावना अधिकधिक उपार्जन की प्रबल इच्छा ही है। इस इच्छा को सीमित रखना ही अपरिग्रह है।

इन इच्छाओं पर अंकुश लगाने का सरल उपाय जैन ग्रंथों में है। भगवान महावीर ने कहा– आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो, अपनी आवश्यकताओं को सीमित बनाओ। यदि व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ सीमित कर लेगा तो उसकी इच्छाएँ स्वयं ही सीमित हो जाएँगी।

विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास के फलस्वरूप आज वस्तुओं का उत्पादन कई गुना बढ़ गया है। फिर भी जहाँ देखो अभाव ही नजर आता है। करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनके पास खाने को अन्न नहीं और पहनने को वस्त्र नहीं हैं। इसका कारण है कि मानव, समाज और राष्ट्र की संग्रह वृत्ति के कृत्रिम अभाव पैदा कर दिया है। आज का व्यक्ति बहुत लोभी है। वह वस्तुओं का संग्रह कर बाजार में उनका अभाव देखना चाहता है।

भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा अशांति का मूल कारण वस्तुओं के प्रति ममत्व व आसक्ति का होना है। संग्रहित वस्तु पर किसी प्रकार की आँच ना आए, इसे कोई लेकर ना चला जाए, इस चिन्ता से उसके संरक्षण और संवर्द्धन की भावना पैदा होगी। अन्य व्यक्ति उस वस्तु को लेना चाहेगा तो संघर्ष होगा। फलस्वरूप युद्ध होगा, रक्तपात होगा और अशांति बढ़ेगी।

हमें यह समझने की जरूरत है कि संसार में कोई भी व्यक्ति अपने साथ कुछ लेकर नहीं आया है और ना ही लेकर जाने वाला है। फिर अर्जित वस्तुओं को लेकर इतनी हाय–तौबा मचाने का क्या फायदा। अतः हमें ममत्व भाव को छोड़कर समभाव अपनाना चाहिये। यही समत्व का भाव अपरिग्रहवाद है। जब हम अपरिग्रह के सिद्धान्त को अपनायेंगे तो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने की कोशिश नहीं करेगा, कोई तानाशाह नहीं होगा, कोई किसी के अधीन नहीं होगा। सब स्वतंत्र होंगे। वे स्वतंत्रतापूर्वक अपने व्यक्तित्व का विकास करें। ऐसी सर्वहितकारी भावना से विश्व शांति को बल मिलेगा।

दुनिया में कोई छोटा–बड़ा नहीं है, सभी समान हैं। lerkokn के इस सिद्धान्त द्वारा महावीर ने जातिवाद, वर्णवाद और रंगभेद का खण्डन किया और बताया कि व्यक्ति जन्म या जाति से बड़ा नहीं है। उसे बड़ा बनाते हैं, उसके गुण व कर्म। वे स्वयं

क्षत्रिय थे, परन्तु उनके अनुयायियों में ब्राह्मण, वैश्य, शुद्र सभी शामिल थे। जैन धर्म के इस समता सिद्धान्त की पूरे विश्व को जरूरत है। आज भी भारत वर्ष में जातिवाद जब तब देखो अपना फन उठाता रहता है। दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका में काले–गोरे का भेद आज भी विद्यमान है। नीग्रो लोगों को आज भी वहाँ हीन दृष्टि से देखा जाता है। धर्म, संप्रदाय और जाति के नाम पर तनाव व भेद–भाव आज भी व्याप्त है जिसका असर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। अर्थव्यवस्था ऐसी हो, जिसमें एक राष्ट्र दूसरे का शोषण ना करे, उसे अपने समान समझ उस पर किसी तरह की व्यावसायिक या वैचारिक प्रभुसत्ता स्थापित ना करे। यदि आज समतावाद के सिद्धान्त को अपनाया जाता है तो यह विश्व सबके लिए आनन्दस्थली और शांतिधाम बन सकता है।

विज्ञान के विकास ने व्यक्ति को अधिक बौद्धिक और तार्किक बना दिया है। वह अपने प्रत्येक तर्क को सही मानने का दंभ भरता है व दूसरों का दृष्टिकोण समझने का प्रयास नहीं करता। इस अहंभाव और एकांत दृष्टिकोण से आज व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र सभी पीड़ित है इसीलिए उनमें संघर्ष है, सौहार्द्र का अभाव है।

जैन साहित्य में इस स्थिति से उबरने के लिए vusdkarokn का प्रतिपादन किया। प्रत्येक वस्तु के अनन्त पक्ष है। किसी भी पदार्थ को अनेक दृष्टियों से देखना, किसी भी वस्तु तत्व का भिन्न–भिन्न अपेक्षाओं से पर्यालोचन करना अनेकांतवाद है। हाथी को खंभे जैसा बतलाने वाला अपनी दृष्टि से सच्चा है, परन्तु हाथी को रस्सी कहने वाली दृष्टि में वह सच्चा नहीं है। अतः हाथी का समग्र ज्ञान करने के लिए समूचे हाथी का ज्ञान करवाने वाली सभी दृष्टियों की अपेक्षा रहती है। अनेकांतवाद कहता है कि यह वस्तु ऐसी ही है, ऐसा मत कहो। 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करो। इस कथन से संघर्ष नहीं बढ़ेगा व सौहार्द्र के मधुर वतावरण का निर्माण होगा।

अर्थव्यवस्था ऐसी हो जो विश्व शांति के लिए खतरा न बने। अकेला जो भी बढ़ना चाहे, वह व्यक्ति हो, समाज या राष्ट्र खतरा पैदा करेगा। इस संदर्भ में महावीर का महत्वूपर्ण सूत्र है–

जे लोयं अब्भाइक्खई से लायं अब्भाइक्खई,

हे अताणं अब्भाईक्खई से लायं अब्भाइक्खई।

जो लोक को, जगत को अस्वीकार करता है अपने अस्तित्व को अस्वीकार करता है। वह जगत के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। महावीर ने कहा– 'जगत के अस्तित्व को अस्वीकार मत करो।' संसार का यह सबसे बड़ा सच है– 'तुम अकेले नहीं हो। तुम अपने अकेले के लिए कुछ करो तो सोचो कि मेरे इस कार्य का विश्व पर क्या प्रभाव पड़ेगा? हम अकेले नहीं है, सारे संसार से जुड़े हुए है, इसीलिए अनेकांत का सूत्र बना। हम व्यक्ति और लोक दोनों के संदर्भ में चिन्तन करें। हमारा कोई भी चिन्तन विश्व को छोड़कर केवल व्यक्ति के संदर्भ में न हो और व्यक्ति को छोड़कर केवल विश्व के संदर्भ में न हो। व्यक्ति और विश्व दोनों के संदर्भ में हमारा चिन्तन विचार और नीति का निर्धारण हो। ग्लोबल इकोनोमी का नीति का निर्धारण करें तो हमें सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा– यह अर्थनीति विश्व शांति के लिए खतरा न बने, व्यक्ति की शांति के लिए खतरा न बने। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन ने अपने सापेक्षवाद सिद्धान्त को इसी भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है। व्यक्ति ही नहीं, आज के तथाकथित राष्ट्र भी दुराग्रह और हठवादिता को छोड़कर यदि विश्व की समस्याओं को सभी दृष्टियों से देख कर उन्हें हल करना चाहें तो अनेकांत दृष्टि से ससम्मान हल कर सकते हैं।

आज सहयोग की बात चल रही है। विकसित राष्ट्र विकासशील देशों को सहयोग दे रहे हैं। व्यवहार में तो यह बात अच्छी लगती है, उदारीकरण की बात लगती है किन्तु आखिर इस बात का सच सब जानते हें कि दाता और याचक का भेद बराबर ना रहेगा। संस्कृत के कवि ने बहुत सुंदर लिखा है–

दातृयाचक योः भेदः कराभ्यामेव सूचितम्

लेने वाले का हाथ सदैव नीचे रहेगा और देने वाले का ऊपर। इस स्थिति को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके साथ कितने प्रतिबन्ध व शर्ते जुड़ जाती हैं, बिल्कुल आर्थिक गुलामी सी स्थिति बन जाती है। इन सारी समस्याओं के संदर्भ में आज एक मध्यम मार्ग का अनुसरण बहुत जरूरी है।

सबसे बड़ी बात है मानवीय अस्तित्व और मानवीय स्वतन्त्रता की। इस पर आँच न आए और आवश्यकताओं की भी पूर्ति हो जाए। ऐसे अर्थशास्त्र की परिकल्पना

आवश्यक है। रोटी और आजादी, रोटी और आस्था दोनों एक दूसरे का विखण्डन ना करें, दोनो साथ–साथ चलें। पुराने जमाने में कहा जाता था कि लक्ष्मी और सरस्वती साथ–साथ नहीं रहती। आज यह धारणा बदल गई है। दोनों साथ चल रही हैं। फिर ऐसा क्यों नहीं हो सकता? रोटी और आजादी साथ क्यों नहीं रह सकती? रोटी और आस्था दोनों का योग क्यों नहीं बन सकता? ऐसे अर्थशास्त्र की आज बड़ी आवश्यकता है। इसी विचार को केन्द्र में रखकर इस शोध प्रबन्ध द्वारा जैन साहित्य के आर्थिक चिन्तन का एक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

lUnHk xUFk lph

LkUnHkZ xzUFk lwph

¼d½ ikphu vkxe vkfn xzUFk

1 अंगसुत्ताणी (भाग 1–3) : (मुनि नथमल) जैन विश्वभारती, लाडनूं, 1981

2 अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम् : (आचार्य आत्माराम) आत्म ज्ञान श्रमण शिव प्रकाशन, लुधियाना, तेरहवाँ संस्करण 2013

3 अनुयोगद्वारा सूत्र (आर्यरक्षित) : (युवाचार्य मधुकर मुनि) आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर 1987

4 अन्तगडदसाओ : (आचार्य नानेश) श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, 1985

5 आचारांग : आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1989

6 आचारांग निर्युक्ति (भद्रबाहु) : सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई, 1935

7 आवश्यक सूत्र : अ.भा.सा. जैन संघ, बीकानेर 1966

8 आवश्यक चूर्णि : जिनदासगणि, धारणीवाई, जामनगर वि.स. 2018

9 आवश्यक निर्युक्ति : भद्रबाहु, आगमोदय समिति, मुम्बई, 1993

10 आदिपुराण : जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1963

11 इसिभासियाइं सुत्ताइं : महोपाध्याय विनयसागर, प्राकृत भारती, जयपुर 1988

12 उपासकाध्ययन : (सोमदेसूरि) सं.– कैलाश चन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, वि.सं. 2021

13 उत्तराध्ययन सूत्र : (आचार्य आत्माराम) भ. महावीर मेडिटेशन एंड रिसर्च सेन्टर, दिल्ली पंचम संस्करण 2010 अनुवाद

14 उपासकदशांग : आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर 1980

15 औपपातिक सूत्र : आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1982

16 कल्पसूत्र : पद्म प्रकाशन, दिल्ली 1995

17	कषाय पाहुड	:	जयधवला टीका सहित, अ. भा. दिगम्बर जैन गन्थमाला, मथुरा 1987
18	कुवलयमालाकहा	:	उद्योतन सूरि, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, मुम्बई 1975
19	गोम्मटसार (जीवकाण्ड)	:	नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1972
20	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	:	जैन शास्त्रोद्धार मुद्रणालय, हैदराबार 2003, अनुवाद
21	जीवाजीवाभिगम	:	जैन शास्त्रोद्धार मुद्रणालय, हैदाराबाद 2003, अनुवाद
22	ठाणं	:	जैन विश्वभारती, लाडनूं, 1976
23	तत्वार्थ सूत्र (उमास्वाति)	:	(संघवी सुखलाल), पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी वि.सं. 2031
24	दशवैकालिक	:	आगम प्रकाशन, ब्यावर 1985
25	दशाश्रुतस्कंध	:	जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट 1960
26	धवला	:	आचार्य वीरसेन, सीतावराय, लखमीचन्द जैन सा. फण्ड, अमरावती 1982
27	निरावलिया	:	जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट 2003 अनुवाद
28	नियमसार (कुन्दकुन्द)	:	जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई 1916
29	नन्दीसूत्र	:	आचार्य आत्माराम, जैन प्रकाशन समिति लुधियाना, 1966
30	निशीथ सूत्र	:	सन्मति ज्ञानपीठ आगरा 1967
31	नीतिवाक्यमृत (सोमदेवसूरि)	:	महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी वि.सं. 2014 अनुवाद
32	पद्म– पुराण (रविषेणाचार्य)	:	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, वि.सं. 2016
33	पउमचरिउं (विमलसूरि)	:	प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद वि. सं. 2018
34	प्रश्नव्याकरण	:	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1983
35	पुरूषार्थसिद्ध्युपाय	:	अमृतचन्द्र, टोडरमल स्मारक भवन ट्रस्ट,

			बनारस, वि.सं. 2034
36	प्रज्ञापना	:	आगम प्रकाशन, ब्यावर 1983
37	बृहत्कल्पभाष्य	:	श्री जैन आनन्दसभा, भावनगर, 1933
38	भगवती सूत्र	:	श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई 1974
39	राजप्रश्नीय सूत्र	:	आगम प्रकाशन, ब्यावर 1982
40	रत्नकरण्ड श्रवकाचार	:	दिगम्बर जैन महासमिति, धर्मपुरा, दिल्ली अनुवादित 2008
41	व्यवहार भाष्य	:	आगमोदय समिति, अहमदाबाद वि.सं. 2028
42	वसुनन्दि श्रवकाचार	:	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी 1952
43	सूत्रकृतांग	:	श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर 1982
44	समयसार कलश (अमृतचन्द्र)	:	पं. फलचन्द्र, दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ वि.स. 2031
45	समवायांग	:	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1982
46	समराइच्चकहा (1—2)	:	हरिभद्रसूरि, श्री रतिराम शास्त्री साहित्य भण्डार, रतलाम अनुवाद 2006
47	सगारधर्मांमृत	:	पं. आशाधर, सरस जैन ग्रन्थ भण्डार, जबलपुर, वि.सं. 2012
48	षट्खण्डागम (धवला टीका सहित)	:	भूतबलि व पुष्पदन्त, जैन साहित्योद्धारक फण्ड, अमरावती, 1939
49	सन्मति तर्क प्रकरण (सिद्धसेन दिवाकर)	:	सम्पादक : पं. सुखलाल संघवी ज्ञानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद, 1995
50	समणसुत्तं	:	सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1975
51	हरिवंश पुराण	:	जिनसेनाचार्य भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1962
52	ज्ञाताधर्मकथांग	:	श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर 1981
53	कौटिलीय अर्थशास्त्र	:	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1977

¼[k½ vk/kfud ’kks/k xFk

1.	अमर मुनि, उपाध्याय	:	1. अपरिग्रह दर्शन, सन्मति ज्ञानपीठ,

			आगरा 1994
			2. अहिंसा दर्शन, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा 1976
			3. अस्तेय दर्शन सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1994
2	अमोलक ऋषि आचार्य	:	जैन तत्व प्रकाश, अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया, 18वीं आवृत्ति 2004
3	उपाध्याय, भगवत शरण	:	कालिदास का भारत, ज्ञारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, 1998
4	उपाध्याय, वासुदेव	:	प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, प्रज्ञा प्रकाशन, पटना 2012
5	उपाध्ये, ए.एन.	:	महावीर एंड हिस फिलोसोफी ऑफ लाइफ, दि इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, बैंगलोर, 1956
6	कन्हैयालाल, उपाध्याय मुनि	:	जैनागम निर्देशिका आगम अनुयोग प्रकाशन, दिल्ली, 1966
7	कोठारी, मदनलाल	:	आचार्य नानेश का जैन धर्म को योगदान, जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग सुविवि, उदयपुर, 1999
8	कोठारी, सुभाष	:	उपासकदशांग और उसका श्रावकाचार आगम संस्थान, उदयपुर, 1988
9	गांधी मोहनदास करमचन्द	:	आत्मकथा अथवा सत्य के प्रयोग, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पुनर्मुद्रण 1996
10	गोपाल, लल्लनजी	:	इकोनोमिक लाइफ ऑन नॉर्थर्न इण्डिया मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2001
11	घिड़ियाल, अच्युता नन्द	:	प्राचीन भारतीय अर्थ विचारक विवेक घड़ियाल बंधु, आगरा 1992
12	जालान, विमल	:	भारत की अर्थनीति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1998
13	जैन, उदयचन्द	:	हेम–प्राकृत–व्याकरण–शिक्षक, प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर, 1983

14 जैन, कमल : 1. प्राचीन जैन साहित्य में वर्णित आर्थिक जीवन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1988

2. वसुदेवहिण्डी एक अध्ययन पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1988

15 जैन, के.सी. : लॉर्ड महावीर एण्ड हिज टाइम्स, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2009

16 जैन, जिनेन्द्र : दसवीं शताब्दी के जैन काव्यों का दार्शनिक मूल्यांकन, दिल्ली 2006

17 जैन, जगदीशचन्द्र : 1. प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961

2. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1965

3. जैन कथा साहित्य प्राकृत भारती, जयपुर 1994

18 जैन, ज्योति प्रसाद : प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरूष और महिलाएँ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1975

19 जैन, परमेष्ठीदास : आचारांग सूत्र एक अध्ययन पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी 1987

20 जैन पी.सी. : नागौर शास्त्र भण्डार की पाण्डुलिपियाँ, जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर 1985

21 जैन, प्रेम सुमन : 1. कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली (बिहार) 1975

2. जैन धर्म और जीवन मूल्य संघी प्रकाशन, उदयपुर 1990

22 जैन, पुरूषोत्त्म चन्द्र : लेबर इन एंश्येण्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी 2001

23 जैन, दुलीचन्द : जिनवाणी के मोती पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी द्वि. आवृत्ति, 2008

24 जैन, दिनेश चन्द्र : इकोनोमिक लाइफ इन एंश्येण्ट इण्डिया एज डेपिक्टेड इन जैन कैनानिकल लिटरेचर, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली 1980

25 जैन, धर्मचन्द्र : बौद्ध प्रमाण मीमांसा की जैन दृष्टि से समीक्षा, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1995

26 जैन, नेमीचन्द :
1. अहिंसा का अर्थशास्त्र हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर, 1996
2. शाकाहार मानव सभ्यता की सुबह पी. सी. जैन फाउण्डेशन, दिल्ली 1993

27 जैन, राजाराम : शौरसेनी प्राकृत भाषा और उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली 2001

28 जैन, सागरमल :
1. जैन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग–2 प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर 1982
2. प्रकीर्णक साहित्य मनन और मीमांसा आगम संस्थान, उदयपुर 1995

29 जैन, सुदर्शन लाल : उत्तराध्ययन सूत्रः एक परिशीलन सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति अमृतसर 1970

30 जैन, हीरालाल : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल वि.सं. 2032

31 जोशी, सलोनी : सुंदसणा चरियं, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबार, 2002

32 त्रिपाठी, राम नरेश : प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार, बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद 2010

33 देवेन्द्र मुनि, आचार्य :
1. जैन आचार : स्वरूप और विश्लेषण श्री तारक गुरू जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, 1982
2. ऋषभदेव एक परिशीलन श्री तारक

गुरू जैन ग्रन्थालय, 1967

3. जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, श्री तारक गुरू जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, 1977

34 दीपांकर, आचार्य : कौटिल्यकालीन भारत, हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ, 1994

35 दोशी, बेचरदास : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग–1, पार्श्वनाथा विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1966

36 नगराज, मुनि : आगम त्रिपिटक एक अनुशीलन कंसेप्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1987

37 नगोरी, एस.एल. : मध्यकालीन भारत, सरस्वती भवन, नई दिल्ली, 1992

38 नाथूरामका, लक्ष्मीनारायण : भारतीय अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 1999

39 नानेश, आचार्य : समता दर्शन और व्यवहार, अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, 1985

40 पाण्डेय, हरिशंकर : प्राकृत एवं जैनागम साहित्य श्री पब्लिकेशंस, कतिरा, आरा 2011

41 पुष्कर मुनि, उपाध्याय : 1. जैन कथाएँ (भाग 1 से 111) श्री तारक गुरू जैन ग्रन्थालय, उदयपुर 1976

2. जैन धर्म में दान एक अनुशीलन श्री तारक गुरू जैन ग्रंथालय, 1977

42 बया, दलपतसिंह : जैन धर्म : जीवन धर्म आगम संस्थान, उदयपुर 2004

43 भानावत, नरेन्द्र : भगवान महावीर आधुनिक सन्दर्भ में, अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर 1974

44 भार्गव, दयानन्द : जैन एथिक्स, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1968

45 भारिल्ल, शोभाचन्द्र : गृहस्थ धर्म, अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, वि.सं. 2033

46 महाप्रज्ञ, आचार्य : 1. महावीर का अर्थशास्त्र, आदर्श साहित्य

संघ प्रकाशन, चुरू. 1994

2. श्रमण महावीर, जैन विश्व भारती, लाडनूं 1974

47 मालवणियां, दलसुख : 1. जैन दर्शन का आदिकाल, एल.डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद, वि.सं. 2037

2. आगम युग का जैन दर्शन, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1966

48 मुनि, राजेन्द्र : जैन धर्म श्री तारक गुरू जैन ग्रन्थालय, उदयपुर वि.सं. 2038

49 मेहता, मोहनलाल : 1. जैन कल्चर, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1969

2. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 3–4, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी, 1967– 1968

50 मोतीचन्द्र : सार्थवाह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2005

51 लोढ़ा, कन्हैयालाल : पुण्य और पाप तत्व

52 लोढ़ा, कल्याणमल : अहिंसा निउणा दिट्ठा, सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर 2000

53 वर्मा, सुरेन्द्र : भारतीय जीवन मूल्य, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, 1996

54 विद्यासागर, आचार्य : मूकमाटी (महाकाव्य), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1988

55 वैश्य, एम.सी. एवं सुदामा सिंह : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, आई.वी.एच. पब्लिशिंग कं. प्रा.लि., नई दिल्ली 2011

56 वंद्योपाध्याय, नारायण चन्द्र : इकोनोमिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एंश्येण्ट इण्डिया, आर.एन.सील, कलकत्ता, 1998

57 शास्त्री, इन्द्रचन्द्र : जैन दृष्टि, मुनि हजारीमल प्रकाशन, ब्यावर, 1968

58 शास्त्री, गणेश मुनि : आधुनिक विज्ञान और अहिंसा, अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर 2004

59 शास्त्री, नेमीचन्द्र : 1. भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वांगमय का योगदान, अ.भा. दिगम्बर विद्वत परिषद्, 1983

2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी 1988

60 शाह अम्बालाल . : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग–5, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1969

61 शिव मुनि, आचार्य : भारतीय धर्मों में मुक्ति विचार प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, द्वि. आवृत्ति, 2001

62 संगल, ओमप्रकाश : कार्लमार्क्स 'पूंजी' प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली 1987

63 संघवी, सुखलाल : जैन संस्कृति का हृदय, जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, बनारस, 1951

64 सिंह, परमानन्द : बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, हलधर प्रकाशन, वाराणसी, 1996

65 सिसोदिया, सुरेश : जैन धर्म के सम्प्रदाय, आगम संस्थान, उदयपुर 1994

66 सेन, अमर्त्य : आर्थिक विषमताएँ, राजपाल एंड संस, दिल्ली 1999

67 सोगानी, के.सी. : इथिकल डाक्ट्रिन्स ऑफ जैनिज्म, जैन संस्कृति सुरक्षा संघ, शोलापुर वि.सं. 2024

68 हस्तीमल जी, आचार्य : जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग 1–4) जैन इतिहास समिति, जयपुर 1971, 174, 1983 व 1987

¼x½ 'kCn dk"k

1. अभिधान राजेन्द्र कोष : लोगोस प्रेस, नई दिल्ली, 1995

2 अर्धमागधी कोश : मुनि रतनचन्द्र, अमर पब्लिकेशंस, वाराणसी, 1988

3 आगम शब्द कोष : आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती, लाडनूं

			1980
4	जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष (भाग 1–4)	:	जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी 1970–72
5	पइअ–सद्द–महण्णवो	:	पं. हरगोविन्ददास त्रिविक्रमचन्द्र सेठ, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, 1963
6	हिन्दी विश्व कोश	:	नागेन्द्रनाथ वसु, बी.आर. पब्लिकेशन कॉर्पोरेशन, दिल्ली 1986
7	संस्कृत हिन्दी कोश	:	वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 1966

¼?k½ 'kk/k i=&if=dk,¡

1	अनेकान्त (त्रैमासिक)	: वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
2	अर्हंतवचन (त्रैमासिक)	: कुन्दकुन्द, ज्ञानपीठ, इन्दौर
3	जिनवाणी (मासिक)	: सम्यक्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर
4	जैन जर्नल (अंग्रेजी)	: जैन भवन, कोलकाता
5	अहिंसा वॉयस	: यशवन्त कुंज, नई दिल्ली
6	अणुविभा रिपोर्टर (अंग्रेजी)	: विश्वशांति निलयम, राजसमन्द
7	अणुव्रत पत्रिका	: सम्पादक धर्मचंद चौपड़ा, नई दिल्ली
8	जैन भारती	: सम्पादक शुभु पटवा, बीकानेर
9	कल्याण (मासिक)	: गीताप्रेस, गोरखपुर
10	तुलसी प्रज्ञा (त्रैमासिक)	: जैन विश्वभारती, लाडनूं
11	श्रमण (मासिक)	: पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी
12	श्रमणोपासक (पाक्षिक)	: श्री अ.भा. जैन साधुमार्गी संघ, बीकानेर
13	आगम आलोक (मासिक)	: सम्पादक श्रीचंद सुराणा, आगरा
14	अरिहन्द जैन टाइम्स (मासिक)	: अहिंसा भवन, नई दिल्ली
15	युवादृष्टि (मासिक)	: जैन विश्व भारती, लाडनूं
16	सम्यक् दर्शन (मासिक)	: संपादक पारसमल चांडलिया, रतलाम
17	सम्बोधि	: एल.डी. इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद
18	दि हिन्दू (दैनिक)	: नई दिल्ली
19	टाइम्स ऑफ इण्डिया (दैनिक)	: नई दिल्ली
20	दि इकोनोमिक्स टाइम्स (दैनिक)	: नई दिल्ली
21	राजस्थान पत्रिका (दैनिक)	: जयपुर
22	दैनिक भास्कर (दैनिक)	: जयपुर
23	जैन पथ प्रदर्शक	: टोडरमल भवन, जयपुर
24	दि चार्टेड एकाउण्टेण्ट्स	: नई दिल्ली

	(मासिक)		
25	दि इकोनॉमिस्ट	:	नई दिल्ली
26	इकोनॉमिक सर्वे	:	नई दिल्ली
27	योजना एवं प्रगति	:	सम्पादक जिनेश मलैया, इन्दौर
28	योजना	:	प्रधान सम्पादक दीपिका कच्छल, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली।

WEBSITES

1. www.jainsite.com
2. www.digamberjain.com
3. www.jaindharmonline.com
4. www.jaijinendra.com
5. www.jainvidhi.com
6. www.jainacharya.com
7. www.jainstuti.com
8. www.jainmonthly.com
9. www.jainarticles.com
10. www.jainstavan.com
11. www.jaingod.com
12. www.jainstory.com
13. www.jainimages.com
14. www.wikipedia.org
15. www.thegurdian.com
16. www.polgeonow.com
17. www.censusindia.gov.in
18. www.google.co.in
19. www.economist.com